जैन विश्वभारती संस्थान

¼eku; fo'ofo|ky;½

ykMuw & 341 306 ¼jkt LFkku½

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

स्नातकोत्तर (एम.ए.) उत्तरार्द्ध

विषय–अहिंसा एवं शांति

सप्तम पत्र

पर्यावरणीय आचार एवं सतत विकास

विशेषज्ञ समिति

1. प्रो. राधाकृष्णन
चेन्नई

2. प्रो. जयप्रकाशम
मदुरई

3. प्रो. जे.एन. शर्मा
चण्डीगढ़

4. प्रो. बच्छराज दूगड़
विभागाध्यक्ष, अहिंसा एवं शान्ति विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ (राज)

5. डॉ. वी. अरुण कुमार
कोटा

6. डॉ. अनिलधर
सह–आचार्य, अहिंसा एवं शान्ति विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ (राज)

7. डॉ. समणी सत्यप्रज्ञा
सह–आचार्य, अहिंसा एवं शान्ति विभाग
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ (राज.)

7. डॉ. अनिलदत्त मिश्रा
सहायक निदेशक, गांधी संग्रहालय
दिल्ली

कॉपीराइट :
जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूँ - 341 306 (राजस्थान)

लेखक :
प्रो. बच्छराज दूगड़

संस्करण : 2015

मुद्रित प्रतियाँ : 100

मुद्रक :

अनुक्रमणिका

पर्यावरणीय नीतिशास्त्र एवं सतत विकास

इकाई – 1 : वैश्विक पर्यावरण : एक परिचय 1–46

1. जनसंख्या–वृद्धि और बढ़ता उपभोग
2. जीवन रक्षक पारिस्थितिकी तंत्र का ह्रास
3. वैश्विक पर्यावरण
4. जैव विविधता एवं संरक्षण
5. पर्यावरणीय समस्याएं और तृतीय विश्व

इकाई – 2 : मानव पारिस्थैतिकी 47–70

1. मानव पारिस्थैतिकी की अवधारणा
2. मानव–पर्यावरण सम्बन्ध : ऐतिहासिक परिवेश
3. मनुष्य पर्यावरण अंतर्सम्बन्ध
4. पर्यावरण पर मनुष्य का प्रभाव

इकाई – 3 : पर्यावरण अवनयन के कारक 71–133

1. औद्योगिकीकरण
2. वन विनाश
3. शहरीकरण / नगरीकरण
4. जनसंख्या वृद्धि
5. प्रदूषण
6. गरीबी
7. ऊर्जा संकट

इकाई – 4 : पर्यावरणीय नीतिशास्त्र 134–161

1. भारतीय परम्परा में पर्यावरणीय नीतिशास्त्र
2. गांधी दर्शन में पर्यावरण
3. नीतिशास्त्र और पर्यावरण
4. जीवन के प्रति सम्मान
5. पारिस्थितिकी दर्शन का धर्म
6. पारिस्थिकी कर्म (Ecological Karma)

इकाई – 5 : सतत विकास और पर्यावरण प्रबन्धन 162–204

1. सतत विकास की अवधारणा
2. प्राकृतिक संसाधनों का षोशण एवं उनका पर्यावरण तथा अर्थव्यवस्था पर प्रभाव
3. पर्यावरण प्रबन्धन
4. पारिस्थैतिकी संतुलन
5. उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण

bdkbi & 1
oSf'od i;koj.k % ,d ifjp;

mís';

1. पारिस्थितिकी तंत्र के ह्रास को जानना।
2. जैव विविधता की हानि के स्वरूप को जानना।
3. वैश्विक स्तर पर व्याप्त पर्यावरणीय समाधान को समझना।

lajpuk

1. जनसंख्या–वृद्धि और बढ़ता उपभोग
    - 1.1 संसाधनों की रिक्तता
    - 1.2 वृक्षों की कटाई
    - 1.3 प्रदूषण
    - 1.4 जलवायु में परिवर्तन
2. जीवन रक्षक पारिस्थितिकी तंत्र का ह्रास
3. वैश्विक पर्यावरण
    - 3.1 जनसंख्या वृद्धि व प्रतिव्यक्ति बढ़ता उपभोग
    - 3.2 जीवन तंत्र पर प्रभाव
    - 3.3 वैश्विक वातावरण परिवर्तन
4. जैव विविधता एवं संरक्षण
    - 4.1 भारत का जैव भौगोलिक वर्गीकरण
        - 4.1.1 दक्षिणी पठार के वन
        - 4.1.2 गंगा के मैदान
        - 4.1.3 मालाबार के तटीय वन
        - 4.1.4 पूर्वी हिमालय
        - 4.1.5 पश्चिमी हिमालय
        - 4.1.6 सिन्धु के मैदान
    - 4.2 भारत के जीव भौगोलिक प्रदेश
        - 4.2.1. हिमालय प्रदेश
        - 4.2.2. उत्तर के मैदानी क्षेत्र
        - 4.2.3. रेगिस्तान का मरूक्षेत्र

4.2.4. पठारी क्षेत्र

4.2.5. मालाबार क्षेत्र

4.2.6. नीलगिरी क्षेत्र

4.3 जैव विविधता का महत्त्व

4.4 वैश्विक, राष्ट्रीय एवं स्थानीय जैव विविधतायें

4.4.1. वैश्विक जैव विविधताएँ

4.4.1.1 आरिएन्टल क्षेत्र में पाये जाने वाली जैव विविधता

4.4.1.2. इथोपियन क्षेत्र

4.4.1.3. आस्ट्रेलियन क्षेत्र

4.4.1.4. निओट्रोपिक क्षेत्र

4.4.1.5. नीआर्कटिक क्षेत्र

4.4.2 क्षेत्रीय जैव विविधता

4.4.3 भारत में वृहद् विविधता

4.4.3.1. सांस्कृतिक विविधता

4.4.3.2. आवासीय विविधता

4.4.3.3. वन्य संपदा में विविधता

4.4.3.4. खानपान की विविधता

4.4.3.5. भौगोलिक विविधता

4.4.3.6. जैव विविधता

4.4.4 जैव विविधता के संवेदनशील क्षेत्र

4.4.5 जैव विविधता को खतरे

4.4.5.1. वनों का विनाश

4.4.5.2. अवैध शिकार

4.4.5.3. मानव तथा वन्य जीवों में प्रतिस्पर्धा

4.4.6 भारत की संकटग्रस्त एवं क्षेत्र सीमित प्रजातियां

4.4.6.1 भारत में संकटग्रस्त प्राणि–भारत में संकटग्रस्त प्राणि निम्न हैं–

4.4.6.2 भारत की क्षेत्र सीमित प्रजातियां

4.4.7 जैव विविधता का संरक्षण

4.4.7.1 कृत्रिम आवासीय संरक्षण

4.4.7.2 स्व–आवासीय संरक्षण

4.4.7.3 वन व वन्य जीव संरक्षण

4.4.8 जैव विविधता की आवश्यकता–

4.4.8.1. पारिस्थिति कारण

4.4.8.2. वंशानुगत कारण

4.4.8.3. सौन्दर्य सम्बन्धी कारण

4.4.8.4. आर्थिक कारण

5. पर्यावरणीय समस्याएं और तृतीय विश्व

5.1 भारत में पर्यावरणीय चुनौतियाँ

5.2 भारत और विश्व/भूमंडलीय मुद्दे

5.3 पर्यावरण सुरक्षा के प्रयास

5.3.1 पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र बैठक (अर्थ सम्मिट, 1992)

5.3.1.1 1972 (स्टॉकहोम) और 1992 (रीओ डी जेनीरो) का अंतराल

5.3.1.2 देखभाल चिंता और साझेदारी

5.3.1.3 जीवन का आधारभूत अधिकार

5.3.1.4 अर्थ सम्मिट पर हस्ताक्षरित घोषणाएँ पत्र तथा अधिवेशन

5.3.2 वानिकी पर अधिवेशन

5.3.3 एजेन्डा–21 (कार्य योजना)

5.3.4 SACEP ट्रस्ट फंड

6. अभ्यास प्रश्न

पर्यावरण अवक्रमण की समस्या आज विकट रूप धारण कर चुकी हैं। मानव सहित समस्त जीवधारी पारिस्थैतिकी के असंतुलन के कारण विनाश के राह पर चल रहे हैं। इन समस्याओं की जड़ में मानव प्रगति के नाम पर की गई प्राकृतिक अवमानना बताई जाती है। आज का मानव समाज इस बात पर गर्व करता है कि आर्थिक–सामाजिक प्रगति तीन–चार हजार वर्षों में मानव समाज न कर सका उसे आधुनिक काल में केवल तीन सौ वर्षों में कर दिया गया है। विचारणीय है कि आर्थिक–सामाजिक प्रगति के नाम पर किया गया तीव्र विकास किस सीमा तक अपनी सार्थकता सिद्ध करने में सफल है। सर्व ज्ञात है कि तीव्र आर्थिक विकास का आधार तकनीकी विकास और वैज्ञानिक अनुसंधान जनित औद्योगिक प्रगति, नगरीकरण, जनवृद्धि, अधिकाधिक ऊर्जा प्रयोग, कृषि और पशुपालन का विकास और अधिकाधिक प्राकृतिक संसाधनों का दोहन है। भौतिक सुख पर आधारित उच्च जीवन–स्तर आधुनिकता का प्रतीक बन गया है। प्रगति के दौड़ में मनुष्य यह भूल गया है कि पर्यावरण भी उसके जीवन का अभिन्न अंग है। अनियंत्रित संसाधन दोहन, औद्योगिक विकास के नाम पर किया गया प्रदूषण, नगरीकरण, जनवृद्धि, हरित क्रांति आदि के कारण ऐसी पारिस्थैतिक समस्यायें प्रकट होने लगी हैं जिनका निदान ढूंढना मानव के लिए अनिवार्य होता जा रहा है। यह सर्वविदित है कि आर्थिक–सामाजिक प्रगति में ऊर्जा की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। कोयला, तेल और प्राकृतिक गैस

विगत ढाई सौ सालों में जिस गति से उपयोग में लाये गये हैं उनके घटते भण्डार से चिंता बढ़ने लगी है। ऊर्जा संकट के साथ अधिक कोयला, तेल आदि के प्रयोग से वायुमंडल प्रदूषित हो गया है जिससे मानव सहित अन्य जीवों के लिये संकट की स्थिति प्रकट होने लगी है। वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड गैस पृथ्वी के पौधघर प्रभाव को ही नष्ट करने लगी है और निकट भविष्य में प्राकृतिक प्रकोपों को बढ़ा सकती है। अतः मानवीय क्रियाकलापों का पारिस्थैतिकी के संदर्भ में विश्लेषण आज की आवश्यकता बन गयी है। उद्योग प्रगति के लिए आवश्यक है लेकिन उनसे होने वाली हानियों का निराकरण भी उतना ही जरूरी है। इसी प्रकार बिजली और सिंचाई के लिए नदी घाटी योजना बनाना आवश्यक है लेकिन यह भी देखना जरूरी है कि इसका पर्यावरण पर क्या कुप्रभाव हो सकता है। इसी तरह पेड़ काटना जरूरी है तो वृक्षारोपण भी उतना ही जरूरी है। ऊर्जा संकट दूर करने के लिए परमाणु ऊर्जा का विकास जरूरी है तो उससे भी जरूरी यह देखना है कि विकिरण से कितनी हानि हो सकती है। भारत के नगर और ग्राम अब भी दो प्रकार के पर्यावरण में जी रहे हैं। उच्च जीवन स्तर के प्रतीक महानगरों में विविध प्रकार के प्रदूषण, प्राकृतिक प्रकोप और सांस्कृतिक समस्याओं के कारण जीवन कष्टमय बनता जा रहा है। यूरोप के अनेक औद्योगिक देशों के महानगरों से मानव पलायन शुरू हो गया है क्योंकि वहां प्रदूषण संकट की स्थिति तक पहुंच गया है। इस प्रकार सांस्कृतिक विकास के साथ अनेक पर्यावरणीय समस्यायें प्रश्न चिन्ह बनती जा रही हैं जिनकी ओर ध्यान देना आवश्यक हो गया है।

1- tuldh [;k&of) vkj c<rk mi;ksx

वर्तमान में जनसंख्या–विस्फोट विश्व की सबसे ज्वलंत समस्या है। हमारी जो अनेकानेक समस्याएं जनसंख्या–वृद्धि के फलस्वरूप उत्पन्न हुई हैं, उनमें पर्यावरण पर दुष्प्रभाव भी प्रमुख है। मानव जीवन की दृष्टि से पर्यावरण की समस्या वर्तमान में सबसे ज्वलंत समस्या है। इसके भविष्य में और भी गंभीर होने की प्रबल संभावनाएं हैं। भारत में ही नहीं, बल्कि समूचे विश्व में, विकसित राष्ट्रों में इसके नियंत्रण हेतु निरंतर कार्य हो रहा है; परंतु जिस अनुपात में सफलता मिलनी चाहिए, नहीं मिल पाई है। मानव समाज की खुशहाली पर्यावरण की रक्षा पर ही निर्भर है। इस दृष्टि से समय रहते राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर, एक अभियान के रूप में, प्रभावी, संगठित एवं संतुलित कार्यक्रम बनाकर लागू करने की आज सर्वाधिक आवश्यकता है। इस हेतु आने वाली पीढ़ी को भी वैज्ञानिक दृष्टि से सोचने के लिए ज्ञान प्रदान करना अनिवार्य बन गया है।

बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण छोटे–बड़े कस्बे व नगर अनियोजित ढंग से निरंतर बढ़ते ही जा रहे हैं। इनका प्रकृति के प्रत्येक क्षेत्र पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। प्रकृति के नियमों की भी अनदेखी करने में हम पीछे नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि अपने व्यक्तिगत हितों एवं स्वार्थों की पूर्ति हेतु अपनी राष्ट्रीय धरोहर–प्राकृतिक पर्यावरण को बनाए रखने के लिए हम पर्याप्त अनुशासित नहीं हैं। हम प्रकृति के सौंदर्यमय पर्यावरण को हृदय से प्यार नहीं करते, ऐसा प्रतीत होता है। क्या प्रकृति सबके लिए आवश्यक नहीं है? क्या प्रकृति को हमारे प्यार की ललक नहीं है? जिस प्रकार परिवार के एक बेजुबान सदस्य को प्यार व रख–रखाव की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार पर्यावरण को भी संरक्षण एवं देखभाल के रूप में प्यार चाहिए।

हम भारतीय सदा से ही पेड़–पौधों, पर्वत–मालाओं, नदी–नालों एवं समुद्र को श्रद्धा की दृष्टि से देखते आए हैं। प्राचीन भारत में राज्याभिषेक के अवसर पर तथा पर्यावरण के रंजन का वायदा करता था। परंतु आश्चर्य है कि आधुनिक प्रगतिकामी मानव ने समय और दूरी पर तो विजय पा ली है, किंतु वह स्वयं जहां रह रहा है, उसके आस–पास के पर्यावरण को सुरक्षित रखने के कर्त्तव्य के प्रति वह तनिक भी गंभीर नहीं है।

प्राकृतिक पर्यावरण का निर्दयता से विध्वंस किया जा रहा है। इस विध्वंस का परिणाम कालांतर में ठीक वैसा ही सिद्ध होगा, जैसा अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारने का होता है। आनेवाली पीढ़ियां इस स्वार्थमय कृत्य के लिए हमें कभी माफ नहीं करेगी। आज चाहे हमने सम्पन्नता का मुखौटा लगा लिया हो, लेकिन बढ़ती हुई जनसंख्या पर नियंत्रण न करने और पर्यावरण को बर्बाद करने की कालिख हमारे इन मुखौटों पर स्वतः पुत जाएगी। अतः जनसंख्या–नियोजन कार्यक्रम तथा पर्यावरण की रक्षा के लिए जन–जागृति के माध्यम से जनता में इस अभिवृत्ति के विकास की आवश्यकता है। दोनों कार्यक्रमों को सफल बनाना हम भारतीयों के लिए परमावश्यक, पारमार्थिक, पवित्र एवं नैतिक–उत्तरदायित्वपूर्ण होने के साथ–साथ संविधान में वर्णित हमारे कर्त्तव्यों के निर्वाह में भी सहायक है।

देश में सन् 1979 में 'राष्ट्रीय जनसंख्या–शिक्षा आयोजन' का सूत्रपात किया गया। निम्नांकित तथ्य राष्ट्र में बढ़ती जनसंख्या के विभिन्न क्षेत्रों में होने वाले दुष्परिणाम प्रकट करते हैं–

- भारत विश्व में जनसंख्या की दृष्टि से द्वितीय राष्ट्र है। भारत में प्रति व्यक्ति प्रति वर्ष आय 719. 9 रु. है, जबकि अमेरिका में 2679 डॉलर प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष आय है।
- भारत में प्रति सेकेण्ड में एक बच्चे का जन्म होता है।
- 1971–81 के दस वर्षों में प्रति वर्ष एक हरियाणा तथा 1981–91 के दस वर्षों में प्रति वर्ष एक पंजाब प्रांत के बराबर जनसंख्या में वृद्धि हो रही है।
- वर्तमान वृद्धि–दर 2.28 प्रति वर्ष के हिसाब से सन् 2015 ई. तक हमारी जनसंख्या दुगुनी हो जाएगी।
- स्वाधीनता के बाद साक्षरता की दर 16.67 प्रतिशत से बढ़कर 1981 तक 36.17 प्रतिशत हो गई है, जबकि निरक्षरों की कुल संख्या 30 करोड़ से बढ़कर 48.60 करोड़ तक पहुंच गई है।
- भारतीय जनसंख्या की मध्यमान आयु, महिलाओं की 50.00 वर्ष एवं पुरुषों की भी 50.00 वर्ष है।
- भारत में जन्मदर प्रति हजार 37.1 है तथा मृत्युदर 14.00 प्रतिशत है, जबकि इंग्लैण्ड में 16, फ्रांस में 18 व जर्मनी में 17 प्रतिशत है।
- जनसंख्या की दृष्टि से राजस्थान भारत का नवां प्रदेश है, जहां राष्ट्र की जनसंख्या का 4.99 प्रतिशत भाग निवास करता है।
- देश की जनसंख्या का 48.13 प्रतिशत भाग गरीबी–रेखा से नीचे जीवन–यापन कर रहा है, जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों के 50.82 तथा शहरी क्षेत्र में 38.19 प्रतिशत लोग सम्मिलित हैं। राजस्थान प्रदेश में 33.86 प्रतिशत लोग गरीबी–रेखा से नीचे जीवन–निर्वाह कर रहे हैं।
- भारतवर्ष में 5 से 9 वर्ष के 36.9 प्रतिशत बालक अध्ययनरत हैं। 10–14 आयु–समूह के 52.9 प्रतिशत बालक व बालिकाएं अध्ययनरत हैं।
- विश्व की 2.5 प्रतिशत भूमि भारत में है, जबकि विश्व की जनसंख्या का 15 प्रतिशत यहां है।
- विश्व की कुल आय का 1.5 प्रतिशत भाग ही भारत कमाता है।
- भारत विश्व में सबसे बड़ा जनतांत्रिक राष्ट्र है, लेकिन स्वतंत्रता–प्राप्ति के 44 वर्ष बाद भी गरीबी, अंध–विश्वास, प्रांतीयता, बाल–विवाह, धर्म के प्रति अंधानुकरण, स्वार्थी एवं संकुचित दृष्टिकोण जैसी समस्याओं से घिरा हुआ है, जो राष्ट्र को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक व नैतिक मूल्यों की दृष्टि से पीछे की ओर धकेल रहे हैं। चाहे हम भौतिक रूप से कितना ही विकास क्यों न कर लें, ये प्रतिगामी कदम समाज को पीछे की ओर खींचने का हर संभव प्रयास करते रहेंगे।

उपर्युक्त तथ्यों से हम निर्विवाद रूप से इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि निरंतर द्रुत गति से जनसंख्या–वृद्धि के कारण हमें अधिक अनाज, वनस्पति, मकान, कपड़े, सब्जियां, मांस, मछली, अंडा, रसोई के

लिए ईंधन, कल–कारखाने, वाहन, दफ्तर, भवन आदि के लिए फर्नीचर तथा दाह–संस्कार आदि के लिए जलाने की लकड़ी की आवश्यकता होगी। इसकी पूर्ति प्राकृतिक पर्यावरण पर निश्चय ही प्रतिकूल प्रभाव डालेगी। फलस्वरूप प्रकृति और पर्यावरण पर दुष्प्रभाव पड़ना अवश्यंभावी है। यद्यपि स्वतंत्रता के पश्चात् पंचवर्षीय योजना–पद्धति को अपनाकर देश को प्रगति की ओर अग्रसर करने में कोई लापरवाही नहीं बरती जा रही है, फलतः हम 'तृतीय विश्व' में अग्रणी भी माने जा रहे हैं; परंतु फिर अभी अब तक किए गए प्रयासों का लाभ वांछित अनुपात में प्राप्त नहीं हो रहा है। जिसका कारण है बढ़ती हुई जनसंख्या। इसे रोकने के लिए जनता में व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास आवश्यक है। देश की बाल–जनसंख्या जार्डन जैसे राष्ट्रों के बराबर, अर्थात् 50 प्रतिशत होती जा रही है। इससे हमें आर्थिक समृद्धि हेतु किए गए प्रयत्नों का लाभ प्राप्त नहीं होता। माल्थस की पद्धति के अनुसार जनसंख्या की वृद्धि ज्यामितिक ढंग से होती है, जबकि खाद्य सामग्री अर्थमेटिक ढंग से बढ़ती है। यही कारण है कि खाद्य सामग्री की निरंतर वृद्धि होने के बावजूद भारत में केवल 153 किलो प्रति व्यक्ति खाद्य सामग्री प्रति वर्ष उपलब्ध हो पाती है, जबकि विकसित देशों में 800 किलो प्रति व्यक्ति के हिसाब से भोजन सामग्री उपलब्ध होती है। हम देश की आमदनी का 9 प्रतिशत ही बचा पाते हैं, जबकि जापान व कनाड़ा क्रमशः 32 व 33 प्रतिशत राष्ट्रीय बचत प्रतिवर्ष करते हैं। जनसंख्या–विकास के फलस्वरूप मध्यम श्रेणी के लोगों के लिए मकान बनाना वैभवशाली कार्यों की श्रेणी में आने लगा है। इसीलिए गरीब ग्रामीण लोग रोटी–रोजी के लिए नगरों व महानगरों की ओर बढ़ रहे हैं। वहां वे आमतौर पर झुग्गी–झोंपड़ियों में रैन–बसेरा करते हैं। इससे उनके व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और वे पर्यावरण को भी दूषित करते रहते हैं।

हमारे द्वारा 'आर्थिक नियोजन' पर किए गए खर्च का लाभ, 'जनसंख्या–नियोजन' से ही संभव है; क्योंकि जनसंख्या–प्रसार से आवश्यकताओं में वृद्धि होती है और उन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति से बलात् दोहन की मात्रा में भी वृद्धि होती है। प्राकृतिक संपदा के इस असंतुलित दोहन से पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। जनसंख्या–वृद्धि व पश्चिमी सभ्यता का लुभावना स्वरूप, भौतिक सुख–सुविधाओं तथा संपन्नता की भूख एवं व्यक्तिगत स्वार्थों के समक्ष राष्ट्रीय हित गौण होते नजर आ रहे हैं, जिनसे प्राकृतिक संतुलन में उत्तरोत्तर विघटन होता जा रहा है। पिछले दशक से पर्यावरण–संतुलन के प्रति लोगों में संचेतना बढ़ी है और कुछ कदम भी उठाए गए हैं। संविधान में भी पर्यावरण–संतुलन बनाए रखने के लिए मौलिक कर्त्तव्यों को जोड़ा गया है। लेकिन पर्यावरण–विकास में अभी अपेक्षित प्रगति नहीं हो पाई है। अतः जन–आंदोलन के रूप में जनसाधारण तक इस कार्यक्रम को पहुंचाना अनिवार्य है; अन्यथा कालांतर में बढ़ती हुई जनसंख्या के फलस्वरूप पर्यावरण पर होने वाले गंभीर दुष्परिणाम आगामी पीढ़ी को भुगतने पड़ेंगे। हम पर्यावरण को दूषित होने से कैसे रोक सकते हैं इस बात पर प्रकाश डालना आवश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु निम्न बिन्दु चिन्हित किए जा रहे हैं–

1-1 lalk/kuksa dh fjDrrk

दोहन की दृष्टि से प्राकृतिक संसाधन कई वर्षों तक अछूते रहे थे। भारत में संपदा व प्राकृतिक साधनों का व्यवस्थित रूप से दोहन इसी शताब्दी में शुरू हुआ है। दोहन की मात्रा में वृद्धि, जनसंख्या की वृद्धि के अनुसार हो रही है। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत 'आर्थिक–विकास' का युग आरंभ हुआ। प्रतिस्पर्धावश आर्थिक विकास की दौड़ में आगे निकलने हेतु औद्योगीकरण का प्रादुर्भाव हुआ। विकास की इस दौड़ के क्रम में प्राकृतिक संपदा का जो संतुलित दोहन शुरू हुआ, वह निरंतर चलता ही जा रहा है। औद्योगीकरण का अनियंत्रित प्रसार होने से आज पर्यावरणीय समस्या देश के सम्मुख एक चुनौती के रूप में खड़ी है। उद्योगों के लिए कच्चा माल; जैसे लोहा, तांबा आदि खनिजों तथा तेल, गैस व कोयले जैसे ऊर्जा–स्रोतों की खपत जनसंख्या–वृद्धि से कहीं अधिक रही है। परिणाम यह है कि संसाधन समाप्त होते जा रहे हैं।

1.2 वृक्षों की कटाई

वृक्ष हम सबके जिंदा रहने के लिए आवश्यक हैं। ये बादलों को निमंत्रण देते हैं जो हमारे देश के किसानों को राहत दिलाते हैं। वृक्ष मनुष्यों और पशु–पक्षियों को छाया और फल–फूल देते हैं। वे जीव मात्र के सुख व सुविधा हेतु अपने आपको अर्पण कर देते हैं। हमारा कृषि–प्रधान देश मानसून पर निर्भर है, अतः हमारे लिए वृक्षों का अत्यन्त महत्त्व है। ये वृक्ष ही तो बादल लाते हैं और धरती की प्यास बुझाकर पुनः उसे पल्लवित–पुष्पित होने की सामर्थ्य प्रदान करते हैं। मूल रूप से वृक्ष ही हमारे लिए खाद्य सामग्री की पूर्ति करते हैं। बदले में केवल हमसे लेते हैं हमारे द्वारा छोड़ी गई गंदी गैस। यदि यह भी हम दें, तो भी वे हमें निरंतर देते रहने का क्रम नहीं छोड़ेंगे। पीपल और तुलसी जैसे पेड़ हमें प्रचुर मात्रा में प्राण–वायु प्रदान करते हैं। आज के प्राप्त ज्ञान को आनेवाली पीढ़ियों के लिए लिपिबद्ध करने हेतु भोजपत्र और कागज के निर्माण के लिए आवश्यक लकड़ी तथा छाल आदि भी तो हमें पेड़ों से ही मिलती है। इन्हीं गुणों के फलस्वरूप हमारे देश में वृक्षों की पूजा–अर्चना की जाती रही है और आज भी कई वृक्षों को विभिन्न देवताओं के रूप में माना जाता है। भगवान् विष्णु मनुष्य को संरक्षण देते हैं; उसी प्रकार पीपल को विष्णु का रूप इसलिए माना जाता है कि वह सबसे अधिक प्राणवायु देता है। नीम को ब्राह्मण के रूप में माना जाता है, इसलिए कि ब्राह्मण का कार्य स्वयं शुद्ध रहकर दूसरों को भी शुद्ध और स्वस्थ परंपरा प्रदान करना है। ठीक इसी तरह नीम आज भी स्वास्थ्य हेतु उतना ही उपयोगी है।

भगवान् धन्वंतरि अपनी औषधियां और जड़ी–बूटियां वृक्षों से ही प्राप्त करते थे, अतः उन्होंने धन्वंतरि औषधि शास्त्र के साथ–साथ वृक्षों के शास्त्र की रचना भी की। भारत की समृद्ध सांस्कृतिक परंपराओं में विश्वास रखने वाले प्रकृति–प्रेमी एवं कवि–हृदय पंडित नेहरू पर्यावरण को शुद्ध बनाए रखने के सदा पक्षधर रहे। उन्होंने एक बार यहां तक कह दिया कि ''पेड़ काटनेवाले को जेल में डाल दो, ताकि वे तथा उनकी आंखें हरियाली देखने को तरस जाएं।'' लेकिन दुर्भाग्य है कि जैसे–जैसे जनसंख्या में वृद्धि हुई है, ईंधन और फर्नीचर जैसे उपयोग हेतु वनों की अंधाधुंध कटाई हुई है और निरंतर होती ही जा रही है। 'महाभारत' में वृक्षों को काटना वर्जित बताया गया है। लेकिन प्राचीन मूल्यों, परंपराओं, सामाजिक मान्यताओं और धार्मिक विश्वासों तथा संस्कारों में गिरावट आ गई है और हमारी संस्कृति पर पश्चिमी सभ्यता ने रंग जमा लिया है।

'भारतीय वन नियम' के अनुसार कम–से–कम एक तिहाई भू–भाग पर वनों का संरक्षण आवश्यक है; लेकिन वास्तविकता यह है कि देश में केवल 23 प्रतिशत वन ही संरक्षित हैं। मनुष्य अपने व्यक्तिगत स्वार्थों में अंधा होकर अपने वर्तमान को संवारने हेतु वृक्षों को निरंतर काटने में लगा है, चाहे उसका भविष्य भले ही बिगड़ जाए। फलस्वरूप आज देश के विशाल वन–वृक्ष–रहित होते जा रहे हैं। वृक्षों की निर्दयतापूर्ण कटाई के परिणामस्वरूप भूमि में पानी को सोखने और उपजाऊ बनाने की क्षमता द्रुतगति से कम होती चली जा रही है। आज देश में 14 करोड़ एकड़ जमीन पर भू–स्खलन हो गया है, जिसे रोका नहीं जा सकता। वृक्षों की कटाई से आज अनेक क्षेत्रों में जलाभाव की समस्या का भी जन्म हुआ है। इतना ही नहीं, देश के प्रहरी हिमालय की तराई के वन भी बड़ी निर्दयता से काटे जा रहे हैं। यदि इन्हें पूर्ववत् प्यार और श्रद्धा मिले तो निश्चय ही ये सदियों तक हमारे लिए उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। यह पर्वत कभी जल का स्पंज रूपी स्रोत हुआ करता था, जो मानसूनी वर्षा को अपने में सोख लेता था और फिर धीरे–धीरे छोड़ता रहता था। परंतु अब ये नंगी पहाड़ियां, वृक्षों के न होने से, आनेवाली बाढ़ों को रोक नहीं पातीं। परिणामस्वरूप ये बाढ़ें प्रति वर्ष असंख्य जन–धन की हानि का कारक बनकर एक गंभीर समस्या का रूप धारण करती जा रही है।

1-3 i:n"k.k

स्वतंत्रता के बाद हमने आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने की आकांक्षा की और पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से औद्योगीकरण के चक्र को द्रुत गति प्रदान की। देश को आत्मनिर्भर बनाने की दृष्टि से इन योजनाओं को भले ही राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक समर्थन मिला हो, परंतु पर्यावरण की दृष्टि से ये

योजनाएं प्रतिगामी ही सिद्ध हुई हैं। औद्योगीकरण ने शहरीकरण और जनसंख्या–वृद्धि के माध्यम से प्रदूषण को काफी हद तक प्रभावित किया है। जनसंख्या–वृद्धि का दबाव प्रदूषण से सीधा सम्बन्ध रखता है। यह प्रदूषण के जलवायु, अन्नोत्पादकता, मनुष्य के स्वास्थ्य और यहां तक कि जीवन को बचाने की क्षमता को भी प्रभावित किए बगैर नहीं रह सकता। वायु–प्रदूषण का मुख्य कारण बढ़ते हुए वाहनों व कल–कारखानों में खपनेवाला ईंधन ही तो है। यह बात नहीं है कि औद्योगिक क्षेत्र व उससे प्रदूषित होनेवाली वायु की जानकारी लोगों को नहीं है; लेकिन जनसंख्या की जरूरतों की पूर्ति हेतु प्रदूषण उत्पन्न करनेवाले संयंत्रों की स्थापना मजबूरन की जाती है।

देश में जनसंख्या के बहुत बड़े भाग को पीने के लिए शुद्ध पानी नहीं मिल पाता। नदियों व नहरों के समीप स्थापित कल–कारखानों द्वारा किए गए अशुद्ध जल को पुनः शुद्ध करने हेतु प्रचुर संख्या में यंत्र उपलब्ध नहीं हैं और न ही लोगों में ऐसी स्वास्थ्य–चेतना पैदा करने हेतु प्रभावशाली शिक्षण व्यवस्था ही है। महानगरों की औद्योगिक इकाइयों ने समुद्र एवं नदियों को अपने कारखानों का सामान्य कचरा–पात्र समझ लिया है। विषैले अवशेषों को फेंकने का जब उन्हें कोई स्थान नहीं मिलता, तो वह इन नदियों–नालों और समुद्र में बहा दिया जाता है। इस प्रकार अपने किंचित् स्वार्थ के मुकाबले उन्हें आम नागरिकों के सार्वजनिक स्वास्थ्य का जरा भी ध्यान नहीं रहता। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जनाधिक्य, औद्योगिक प्रगति व पर्यटन की देन ने रत्नाकर समुद्र को मृत–समुद्र बना दिया है; क्योंकि जब ऊर्जा को अनुपयुक्त स्थान पर स्थानांतरित कर दिया जाता है तो ऊर्जा भी प्रदूषण के रूप में परिवर्तित हो जाती है।

1.4 जलवायु में परिवर्तन

जलवायु–परिवर्तन मनुष्य के व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य को निश्चित रूप से प्रभावित किए बिना नहीं छोड़ता। जीवन जीने के तौर–तरीके व अनाज–उत्पादन भी इससे प्रभावित हो रहे हैं। वायुमंडल में आवश्यकता से अधिक कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा होने, लकड़ी के जलाने एवं वायु में अनुपात से अधिक मिट्टी बढ़ने से वर्षा एवं तापमान भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। अन्वेषकों की दृष्टि में, इस शताब्दी के आरंभ से अब तक वायुमंडल में कार्बन–डाइऑक्साइड की मात्रा में 10 से 15 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। कार्बन–मुक्त ईंधन के अपूर्ण दहन से एक रंगहीन, गंधहीन, लेकिन जहरीली गैस कार्बन मोनोऑक्साइड निर्मित होती है, जिसका मुख्य स्रोत मोटरगाड़ियों का पेट्रोल ईंधन है। वायु में कार्बन–डाइऑक्साइड की इस तरह बढ़ती मात्रा से पृथ्वी के औसत तापक्रम में वृद्धि होती है।

बढ़ती जनसंख्या से भारत चिंतित तो है लेकिन उसे नियंत्रित करने का प्रयास अभी लाभकारी प्रमाणित नहीं हो रहा है। कहा जा सकता है कि विश्व व्यापी पर्यावरणीय समस्याओं के लिये सबसे बड़ा कारण जनाधिक्य है। इसे ''उपभोग का संकट'' भी कहा जा सकता है क्योंकि मानव अपनी आवश्यकता के लिये प्रकृति पर प्रहार कर रहा है। इसी संकट से बचने के लिए भारत के मनीषियों ने उपभोग संस्कृति को कभी प्रोत्साहित नहीं किया। सादा जीवन उच्च विचार को अब भौतिक संस्कृति ने अपने लपेट में ले लिया है। भारत भी उसी राह पर चलने का प्रयास कर रहा है जिस राह पर पश्चिमी देश चल रहे हैं। लेकिन भारत जैसे जनसंख्या बोझिल देश के लिये भौतिकवादी प्रवृत्ति अधिक खतरनाक प्रमाणित हो सकती है। संसाधन संरक्षण से अनभिज्ञ भारतवासी अपने संसाधनों का निर्यात और अंधाधुंध प्रयोग कर भविष्य के प्रति बेखबर हैं। अतः जनवृद्धि को तभी नियंत्रण के साथ संसाधन संरक्षण की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। जनवृद्धि को तभी नियंत्रित किया जा सकता है जब राजनैतिक और सामाजिक प्रयास सहभागी स्तर पर चलाये जायें। इसके लिये सामाजिक चेतना लाना आवश्यक है। सरकारी माध्यमों से प्रचार के बावजूद जनसंख्या नियंत्रण का लघु प्रभाव पिछले दशक से देखा जा चुका है। बढ़ती हुई जनसंख्या से होनेवाले कुप्रभावों से हम अपरिचित नहीं हैं, फिर भी हममें से कुछ जानकार भी अनजान बन अपने स्वार्थ में अंधे होते जा रहे हैं। इससे दूषित पर्यावरण का प्रभाव अर्थव्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक मूल्यों पर पड़ रहा है। अतः

बहुत बड़ी संख्या में हरे पेड़–पौधे लगाए जाने चाहिए ताकि सभी सजीवों को इनसे राहत मिल सके। इस क्षेत्र में पर्यावरण विभाग और मौसम विभाग के संयुक्त प्रयत्न वांछनीय हैं, ताकि जलवायु को शुद्ध रखा जा सके।

2- thou j{kd ikfjLFkfrdh r= dk gkl

प्रकृति के नियम अति संवेदनशील हैं। इन नियमों की अज्ञानता पर्यावरण को ह्रासमान बनाती है। आदिवासी समाज अज्ञानता के कारण वन विनाश परिवर्तनशील कृषि के लिए करता है, खान से खनिज निकालने वाला श्रमिक धरातल और वनस्पतियों को विनष्ट करता है, पशुपालक पशुओं से अधिक चराई कर पर्यावरण को नुकसान पहुंचाता है। लेकिन ज्ञानी लोग भी पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने में पीछे नहीं हैं। इनकी प्रकृति के प्रति उदासीनता इतनी बढ़ गई है कि आकाश में आणुविक परीक्षण कर वायुमण्डल को प्रदूषित कर रहे हैं। समुद्री जल में खनिज तेल, कचरा और अन्य प्रदूषक डालकर समुद्री जीवों का विनाश कर रहे हैं, जंगल विनाश करते समय नहीं सोच पाते कि पेड़ जीवन संचार के लिये आधारी घटक हैं। अनेक देशों में पर्यटन के नाम पर पर्यावरण का ह्रास किया जा रहा है। भारत का हिमालयी क्षेत्र भी ऐसी घटनाओं से आक्रांत हो रहा है। अपने पर्यावरण को काफी हानि पहुंचाने के बाद संयुक्त राज्य अमेरिका के लोग अब पर्यावरण के प्रति संवेदनशील होने लगे हैं। पश्चिमी जर्मनी के औद्योगिक नगरों में पर्यावरण सुधार के लिये नगर के अंदर और बाहर वृक्षारोपण को अनिवार्य अंग बनाया जा रहा है। भारत में हजारों साल पहले से उपवन नगर की रचना पुनः साकार होने लगी है। स्पष्ट है कि आधुनिकता के नाम पर प्रकृति के प्रति की गई उपेक्षा पर्यावरणीय संकट का एक प्रधान कारण हैं।

प्राकृतिक व्यवस्था के अनुसार सभी जैव–अजैव संघटक अपनी आनुपातिक सीमाओं में कार्य करते हैं। इनके मध्य संतुलन बनाये रखने के लिये प्रकृति ने पारिस्थितिकी पिरामिड बना रखा है अर्थात् उत्पादक–उपभोक्ता की संख्या पारिस्थैतिकी के अनुसार घटती–बढ़ती है। संख्या पिरामिड में पेड़ों की संख्या सबसे अधिक, उन पर पलने वाले जीवों की संख्या कम और उन जीवों पर पलने वाले मांसाहारी जीवों की संख्या सबसे कम होनी चाहिए। लेकिन वन संसाधन के अत्यधिक दोहन के कारण संख्या पिरामिड उलट गया है। अर्थात् जीवों की तुलना में पेड़ कम हो गये हैं। ऐसा ही अविवेकपूर्ण दोहन अन्य प्राकृतिक संसाधनों का भी हो रहा है। मृदा के अविवेकपूर्ण उपयोग से वह बांझ होती जा रही है। ऊर्जा संसाधन पर बढ़ता दबाव जहां एक ओर ऊर्जा संकट को बढ़ा रहा है वहीं ऊर्जा उपयोग से प्रदूषण बढ़ रहा है। संसाधन के दोहन की रफ्तार इतनी तेज हो गई है कि लगता है मानव समाज अपनी अगली पीढ़ी के लिये कुछ भी नहीं बचा पायेगा।

औद्योगिक विकास ने जहां एक ओर दुनिया की आर्थिक–सामाजिक व्यवस्था को नया आयाम दिया है वहीं ऐसी कठिनाइयां भी दी हैं जिसका निवारण आज विकराल रूप ले चुका है। विगत डेढ़ सौ वर्षों में औद्योगिक देशों में बढ़ता उत्पादन विश्व के लिए प्रलोभन बन गया है। सभी देश सोचने लगे हैं कि आर्थिक–सामाजिक विकास के लिये औद्योगिक उन्नति अति आवश्यक है। औद्योगिक विकास आधुनिकता का मापदण्ड बन गया है। आज विश्व विकसित, विकासशील और अविकसित वर्गों में इसलिए बांटा जा रहा है क्योंकि विकसित देशों का अर्थ तंत्र औद्योगिक होने के कारण सुविधा सम्पन्न है जबकि अविकसित देश परिवेश के अनुकूल जीवन–यापन कर रहे हैं। विज्ञान और तकनीकी विकास के कारण उन्नीसवीं सदी के मध्य से औद्योगिक विकास ने जोर पकड़ा। एक सौ साल बीतते–बीतते औद्योगिक राष्ट्रों को आभास होने लगा कि उनका पर्यावरण ह्रासोन्मुख हो रहा है क्योंकि औद्योगिक इकाइयों से निकलने वाला कचरा, दूषित जल, विषैली गैस, हवा, जल, मृदा और जीवों को प्रदूषित कर पारिस्थितिकी को असंतुलित बना रहे हैं। आज स्थिति संकट बिन्दु तक पहुंच गई है। औद्योगिक विकास के नाम पर विकसित देशों में न सांस लेने के लिए साफ हवा उपलब्ध है और न पीने के लिए शुद्ध जल। दूषित जल एवं औद्योगिक कचरा से मृदा की गुणवत्ता

समाप्त होती जा रही है। आकाश से अम्ल वर्षा वनस्पतियों को नष्ट कर रही है। औद्योगिक कच्चा माल की आपूर्ति के लिए प्राकृतिक संसाधनों का बड़े पैमाने पर दोहन किया जा रहा है। नगर यातायात, गृह निर्माण और कच्चा माल के लिए वनों का विनाश भी बड़े पैमाने पर किया जा रहा है। औद्योगिक विकास की अंधी दौड़ में यह भूला दिया गया है कि स्वयं मनुष्य प्रकृति का उपादान है। उसे नैसर्गिक सुविधाओं की भी आवश्यकता पड़ती है। यही कारण है कि औद्योगिक देश आज पर्यावरणीय कठिनाइयों में घिर गये हैं। विश्व के अनेक मंचों से उनके द्वारा पर्यावरण सुधार की बात की जा रही है। अतः कहा जा सकता है कि औद्योगिक विकास से पर्यावरण ह्रास जितना हुआ है शायद अन्य कारणों से नहीं हुआ है।

तकनीकी विकास मानव सभ्यता के आधार रहे हैं। प्रस्तर युग से लेकर आधुनिक युग तक अपने कौशल से मानव समाज ने निरन्तर तकनीकी सुधार से अपने को श्रेष्ठ जीव प्रमाणित किया है। लेकिन आधुनिक काल मं तकनीकी उन्नति, विज्ञान और ऊर्जा प्रयोग से, दैत्याकार रूप ग्रहण कर ली है। कोयला, पेट्रोल और गैस के प्रयोग से नई तकनीकी ने उत्पादकता को इतना बढ़ा दिया कि केवल एक सौ साल की अवधि में संसाधनों का भण्डार खाली होने लगा है। आज ऊर्जा संकट, खनिज संकट, यातायात संकट जीवन की गुणवत्ता को नष्ट करने लगे हैं। यातायात से माल और सवारी का परिवहन सुगम हो गया है लेकिन विविध प्रकार के प्रदूषण, दुर्घटना और मानसिक तनाव से मानव जीवन की सहजता समाप्त होने लगी है। नई तकनीकों का प्रलोभन बढ़ता जा रहा है जो आने वाले कल के लिये नई चुनौतियों को जन्म दे रही है। कम्प्यूटर बहुउपयोगी यंत्र है लेनिक पता चला है कि उसमें ऐसे विषाणु पनप रहे हैं जो मानव स्वास्थ्य के लिए खतरनाक है। इसी प्रकार नई तकनीकी से निर्मित भोजन सामग्री, दवायें और ऐसी ही उपभोक्ता सामग्री मानव स्वास्थ्य को चौपट कर रही हैं। टेरीलीन धागे से बना वस्त्र उष्णकटिबंधीय देशों में चर्म रोग फैला रहा है। यह भी उल्लेखनीय है कि तकनीकी विकास के लिए सुलभ ऊर्जा स्रोतों का भण्डार तेजी से खाली हो रहा है जो अंधकारमय भविष्य का प्रतीक है। अतः तकनीकों का प्रयोग और विकास पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में किया जाना चाहिये।

3-o"kf'od i;koj.k

इक्कीसवीं सदी के आगमन से अब यह जरूरी हो गया है कि हम उन विशेश विशयों का आकलन करें जो खासकर मानव व वैश्विक वातावरण से सम्बन्ध रखते हैं। कई सर्वे व सर्वेक्षण के जो परिणाम आए उनके अनुसार पृथ्वी जैसे ग्रहों की स्थिति बहुत ही भयानक व कश्टदायी है। विश्व के 4 मुद्दे विशेशतः चिंता के विशय बने हैं। जनसंख्या वृद्धि, प्रति व्यक्ति बढ़ता तंत्र पर प्रभाव, वैश्विक वातावरण में परिवर्तन व जैविक विविधता, ये ऐसे वर्तमान के ज्वलनशील मुद्दे हैं जो वैश्विक पर्यावरण का एक सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं। इन चारों बिंदुओं का विस्तृत वर्णन अग्रलिखित है–

3-1 tul[;k of) o ifr0;fDr c<rk mi Hkkx

विश्व की जनसंख्या सन् 2001 में 6.1 बिलियन से अधिक हो चुकी थी। लगभग 2 बिलियन लोग केवल पिछले 25 सालों में वही हैं व यह लगातार बढ़ती जा रही है। 78 मिलियन लोग प्रतिवर्श जनसंख्या के खाते में जुड़ते ही जा रहे हैं। यदि विश्व जनसंख्या का रूप गिरावट की तरफ है फिर भी यह अनुमान है कि 2058 तक विश्व जनसंख्या 8.9 बिलियन हो जाएगी। जनसंख्या वृद्धि से संसाधनों की मांग निरंतर बढ़ती ही जा रही है व जीवन भौली निरंतर बदलती जा रही है। यदि हम एक अमेरिकन या कैनेडियन की जीवन भौली बनाए रखने के लिए वांछित संसाधनों व एशिया व अफ्रीका के आम आदमी की जीवन भौली को बनाए रखने वाले संसाधनों की यदि तुलना की जाए तो एक भयानक स्थिति उत्पन्न होगी। 3 बिलियन लोग 2050 तक जनसंख्या के खाते में और जमा हो जाएंगे। इनकी रोटी, कपड़ा व मकान क ही नहीं वरन् उन्हें मूलभूत जरूरी सेवाएं जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य व रोजगार भी देना होगा। यह जनसंख्या वृद्धि विकासशील देश जैसे भारत, चीन, पाकिस्तान, नेपाल, मलेशिया, बांग्लादेश में होगी जहां जन्म दर, मृत्यु दर से अधिक है। इन देशों

में लगभग 1.2 बिलियन लोग अत्यन्त ही दयनीय दशा में है, गरीब है, इन राश्ट्रों के पास धन की कमी है व मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति में वे असफल है। विश्व में लगभग 800 मिलियन को पोशण नहीं मिलता है, वे भूखे ही सोते हैं। दूसरी तरफ विश्व का उत्पादन 1980 के बाद 3 गुना बढ़ा है। इसके बाद भी अमीर व गरीब के बीच आय की असमानता बढ़ती गयी है। आय का स्तर 1990 में 60 प्रतिशत व 1999 में 74 प्रतिशत हो गया। जनसंख्या वृद्धि के लिए एक महत्त्वपूर्ण विशय है विकासशील व विकसित देशों के बीच आय की असमानता जिसे दूर करना परम आवश्यक है।

3-2 thou r= ij iHkko

पृथ्वी का जीवन आधार तंत्र दो कारणों से दबाव में है– जनसंख्या की वृद्धि व उपभोग में वृद्धि। हम अब विश्व के सभी राश्ट्रों को देखते हैं तो ज्ञात होता है कि हमारे भूमिगत जल का स्तर घटता जा रहा है। मृदा का अपरदन व प्रदूशण तीव्र गति से हो रहा है। सागर व महासागरों में मछली पकड़ने की प्रवृत्ति दिन प्रतिदिन बल पकड़ती जा रही है। वनों की अंधाधुंध कटाई इस गति से हो रही है कि उन्हें दुबारा उगने का मौका ही नहीं दिया जा रहा है। एक यू.एन. एजेन्सी PAGE Pilat Analysis of Global Ethics जो हमें विश्व के मुख्य पारिस्थितिकी तंत्रों के बारे में सूचनाएं प्रदान करते हैं। इस एजेन्सी ने Costal & Marine Eco System, Fresh water System, Agriculture land, Grass lavel, forest आदि Eco System का अध्ययन किया व यह बताया कि ये तंत्र मानव को उनकी जीविका बनाए रखने व आर्थिक व्यवस्था चलाए रखने में सहायक है। PAGE ने इन तंत्रों पर मानव गतिविधियों का अध्ययन कर यह निश्कर्श निकाला कि–

- हम अपने Eco System से इतने ज्यादा संसाधनों का दोहन कर रहे हैं जिसके कारण ये तंत्र बहुत अधिक तीव्र गति से पतन की ओर जा रहे हैं।
- सबसे ज्यादा चिंतनीय विशय यह है कि मानव की गतिविधियों के कारण हमारे प्राकृतिक, रासायनिक चक्र यथा– जल, कार्बन, नाइट्रोजन, फॉस्फोरस जिस पर हमारा Eco System पोशण के लिए निर्भर है, बुरी तरह प्रदूशित हो गए हैं।
- हमने पृथ्वी के इन आधार तंत्रों की देखभाल नहीं कि जिस कारण हम तीव्र गति से भूमि द्वारा दिए जाने वाले उत्पाद व सेवाओं को खो रहे हैं।

3-3 of'od okrkoj.k ifjorZu

ऐतिहासिक तौर पर प्रदूशण एक स्थानीय समस्या रही है जो किसी क्षेत्र के नदी, झील या किसी भाहर की वायु हो सकती है। पर आज के औद्योगिक युग में वैज्ञानिक प्रदूशण की विश्व स्तर पर जांच कर रहे हैं। विश्व में जलवायु परिवर्तन की समस्या गंभीर रूप ले चुकी है जिस कारण हमारे वायुमण्डल में CO_2 की मात्रा बढ़ती जा रही है। यह CO_2 जीवाश्म, ईंधन जैसे कच्चा तेल, कोयला व प्राकृत गैसों के उपयोग से उत्पन्न होती है। वायुमण्डल में CO_2 की मात्रा 280 पीपीएम बढ़ गयी है।

CO_2, O_2, N_2 के साथ वायु का एक प्राकृतिक गठन होता है जिसकी पौधों को जरूरत होती है क्योंकि वह प्रकाश संश्लेशण द्वारा इन गैसों से भोजन का निर्माण करते हैं। अतः ये पृथ्वी के ऊर्जा बजट का महत्त्वपूर्ण अंग है। CO_2 एक पारदर्शी गैस है।यह पृथ्वी के ताप को बनाए रखने में सहायक होती है व ऊश्मा को व्यर्थ में वायुमण्डल में नहीं जाने देती है। इस प्रक्रिया से पृथ्वी का निचला वायुमण्डल गर्म हो जाता है जिसे ग्रीन हाउस इफेक्ट कहते हैं। यद्यपि CO_2 की मात्रा वायुमण्डल में केवल .03 प्रतिशत है पर इसकी मात्रा में थोड़ी सी भी वृद्धि से तापमान पर भारी प्रभाव पड़ता है। IPCC (Inter Governmet Penal Code for Climate Change) की 2002 की रिपोर्ट के अनुसार पिछले 50 सालों में पृथ्वी के तापमान में जो भी वृद्धि हुई है वह सब मानवकृत गतिविधियों का परिणाम है। इस चिंताजनक दशा से निपटने के लिए विश्व के 155 राश्ट्रों ने क्यूटो (जापान) में दिसम्बर 1997 में एक सम्मेलन बुलाया जिसका उद्देश्य G.H.G. के

उत्सर्जन में कमी लाने के उपाय ढूंढना था। इस सम्मेलन में औद्योगिक जगत के देशों ने G.H.G. के स्तर को पुनः 1990 तक ले जाने हेतु सन् 2012 तक का समय निर्धारित किया पर यह समझौता भी कागजों तक ही सिमट कर रह गया और G.H.G. में वृद्धि आज भी जारी है। इसकी असफलता का कारण यह भी है क्योंकि यह राश्ट्रों के अपने स्वार्थ के मुद्दों पर अटकी व कोई भी राश्ट्र अपने विकास की गति को धीमा नहीं करना चाहता। दूसरी ओर चिंता का विशय यह भी है जिनके परिणाम जैसे जलवायु परिवर्तन व इसका मानव जाति व अन्य जीवों पर प्रभाव। वायुमण्डल में CO_2 की सघनता को कम करना अति आवश्यक है क्योंकि तभी जलवायु परिवर्तन पर नियंत्रण हो सकेगा। यह सब तभी संभव है जब हम ईंधन खाते में कमी करते हैं।

4- tSo fofo/krk ,oa lajk{k.k

जैव विविधता स्वयं अपने नाम से ही स्पष्ट है। जैव का मतलब जीव से है तथा विविधता, अर्थात् भूमण्डल, जलमण्डल तथा वायुमण्डल में पाई जाने वाली जीवों की विभिन्न जातियों एवं प्रजातियों में पाई जाने वाली विविधता। महत्त्वपूर्ण जीवों का संरक्षण अति आवश्यक है अतः विविध जीवों का उनके पारिस्थितिकी तंत्र में संरक्षण भी महत्त्वपूर्ण है।

जैव विविधता एवं उनका संरक्षण मानव जाति के लिये अति महत्त्वपूर्ण है क्योंकि मानव इनसे प्राप्त होने वाले भोजन, दवाइयां आदि पर निर्भर करता है यहां तक कि बहुत ही सूक्ष्म जीवों का अस्तित्व भी हमारे लिये व सम्पूर्ण जीव जगत के लिये अतिमहत्त्वपूर्ण होता है। एक अध्ययन के दौरान पाया गया है कि विगत 70 वर्षों में लगभग एक लाख जीव तथा लगभग 76 प्रतिशत वनों को मानव ने अनियंत्रित उपभोग से नष्ट कर दिया है।

जैव विविधता का अध्ययन मुख्यतः तीन प्रकार से किया जाता है–

- **आनुवांशिकता विविधता–** आनुवांशिकी विविधता में जीवों की कोशिकाओं में उपस्थित जीनों जो कि जीव की जाति, प्रजाति गुण प्रकृति एवं संरचना का निर्धारण करते हैं, में विविधता का अध्ययन किया जाता है।
- **प्रजाति विविधता–** स्पीसीज् विविधता के अंतर्गत प्रजातियों की विविधता का अध्ययन किया जाता है। विश्व में जीवों की अनेक प्रजातियां हैं। इनमें अपने–अपने वातावरण के अनुकूल जीवित रहने की क्षमता है। ये सभी प्रकृति में अलग–अलग भूमिकाएं निभाती हैं तथा कोई जाति ठीक दूसरी जाति जैसी नहीं है या फालतू नहीं है जिसे विलुप्त होने दिया जा सके। सभी जातियां प्रकृति के रहस्यों को या आनुवांशिक रहस्यों को छिपाए हैं। इनके अध्ययन से हमें इन रहस्यों की जानकारी मिल सकती है। इनके नष्ट होने से इनकी भूमिका कोई अन्य जाति उपयुक्तता से नहीं निभा सकती है।
- **पारिस्थितिकी विविधता–** जातियों की तरह पृथ्वी पर अनेक प्रकार के पारिस्थितिकी तंत्र भी पाए जाते हैं। इन पारिस्थितिकी तंत्रों की पहचान व संरक्षण भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि जीवों की विविधता इन्हीं विविध परितंत्रों के कारण है।

पारिस्थितिकी तंत्र की विविधता के सम्बन्ध में, नदी में एक अलग पारिस्थितिकी तंत्र है, झील में भिन्न पारिस्थितिकी तंत्र है, समुद्र में भिन्न पारिस्थितिकी तंत्र है। किंतु ये सभी जलीय पारिस्थितिकीय तंत्र हैं, इसी प्रकार से वन पारिस्थितिकी तत्र में भी वर्षावन का पारिस्थितिकी तंत्र, कोणधारी वन से भिन्न है। ये सभी थलीय पारिस्थितिकी तंत्र होते हैं किंतु इनमें बहुत विविधता पाई जाती है। जो जीव खारे पानी में रहते हैं वे स्वच्छ नदी जल के जीवों से अलग होते हैं।

4-1 Hkkjr dk tSo Hkkxkfyd oxhZdj.k

डॉ. चटर्जी के अनुसार भारत के विभिन्न भागों को वनस्पति के आधार पर भिन्न भागों में विभक्त किया गया है क्योंकि वनस्पति में स्थायित्व अधिक होता है अतः ये वर्गीकृत अपनी पहचान बनाये रखते हैं।

4-1-1 nf{k.kh iBkj d vou

वनस्पति के आधार पर विभिन्न पठार के वनों को पुनः दो भागों में विभक्त किया गया है–

- e/; Hkkjr d ou& इसमें मध्यप्रदेश, उत्तरांचल में गंगा के बेसिन, पश्चिमी उड़ीसा, नागपुर के पठार को सम्मिलित किया गया है। इस क्षेत्र में पतझड़ मानसूनी वन हैं। इसमें साल तथा सागवान के वन पाये जाते हैं। यहां के मुख्य वृक्ष शीशम, टीक, बहोनिया आदि हैं।
- e[; nf{k.kh iBkj d ou& इस क्षेत्र में मुख्य उत्तरी क्षेत्र में साल, साटन वुड तथा सागवान आदि वृक्ष होते हैं तथा दक्षिणी भाग में चन्दन, बबूल आदि पाये जाते हैं। रोचक बात यह है कि इस भू–भाग में झाड़ियों की बहुतायत है।

4-1-2 xxk d enku

यह भू–भाग गंगा की घाटी है। यहां पर वर्षा की मात्रा के अनुसार भू–भाग है।

अ. पश्चिमी भूभाग– पश्चिमी भाग के पतझड़ वन जो गंगा के किनारे आते हैं, इस भाग में जामुन, आम, शीशम, साल, शहतूत आदि के वृक्ष पाये जाते हैं।

ब. पूर्वी भूभाग– पूर्वी भाग में बंगाल और असम की घाटी तथा बिहार आते हैं। यहां पर वन घने होते जाते हैं। यहां सदाबहार वन पाये जाते हैं। यहां के मुख्य वनस्पति कटहल, आम, ताड़, सुपारी, साल, नागकेसर, अंजीर, गुरजन आदि होते हैं।

स. डेल्टा भूभाग– डेल्टा भाग में गंगासागर एवं सुंदर वन अर्थात् गंगा के दक्षिणी भाग में भारत व बंगाल के सघन वन आते हैं। यहां पर सुन्दरी, मुख्य वृक्ष है। अन्य वृक्ष बांस, सुपारी केवड़ा रोजीफोरा आदि हैं।

4.1.3 मालाबार के तटीय वन

भारत के पश्चिमी तट पर गंगा से दक्षिणी केरल तक का भू–भाग इसमें वर्गीकृत किया गया है। यहां पर अत्यधिक बड़े व घने वृक्ष होते हैं। यहां पर अत्यधिक वर्षा होती है। यहां महोगनी, सिन्कोना, रबड़, नागकेसर, नारियल, ताड़, केला, सुपारी आदि के वृक्ष बहुतायत से पाये जाते हैं। इनमें अधिकांश वृक्षों की लकड़ी बहुत कठोर होती है। इन्हें कठोर काष्ठ वन भी कहते हैं।

4.1.4 पूर्वी हिमालय

पूर्वी हिमालय प्रदेश के पश्चिम में नेपाल है इस भूभाग में भूटान, सिक्किम, मेघालय अरूणाचल प्रदेश तथा नागालैण्ड आते हैं। यहां पर अधिक वर्षा होती है। अतः इस भाग को तर प्रदेश भी कहते हैं। इनको पुनः तीन अन्य भागों में बांटा गया है–

उष्ण कटिबंधीय पट्टी– यह पट्टी मैदानों से शुरू होकर लगभग 1800 मीटर तक ऊंचाई तक फैली हुई है। यहां पर शहतूत, डिलेनिया, साल, शिनोली, चन्दन, सिनेमम, खैर, सेमल आदि वृक्ष होते हैं। यहां पर सवाना भी पाई जाती है जो एक प्रकार की घास है। इसे हाथी घास भी कहते हैं। वृक्ष, लताएं, बांस, झाड़ियां आदि मिलकर इन वनों को दुर्गम बना देती है। इन्हें दुर्गम वन भी कहते हैं।

शीतोष्ण कटिबंधीय पट्टी– इस वन की पट्टी 1800 से 3600 मीटर तक फैली है। यहां पर शीत शीतोष्ण तथा शीतोष्ण दोनों प्रकार की जलवायु व उसके अनुसार वनस्पति पाई जाती हैं। इस भूभाग

में नीचे की ओर ढलानों पर चीड़, ओक, पर्च, मेपल, लॉरेल, मगनोलिया, स्पूकस आदि वृक्ष पाये जाते हैं तथा ऊपर की ओर पाये जाने वाली वनस्पति में विल्लो, देवदार, चीड़ व फर की विभिन्न प्रजातियां पायी जाती हैं।

अल्पाईन वन खण्ड– इस भूभाग में 3600 मीटर से 4,800 मीटर की ऊंचाई तक का क्षेत्र आता है। इनमें कोणधारी वृक्ष वाले वन पाये जाते हैं इन्हें कोणधारी वन भी कहते हैं। इससे ऊपर हिम का साम्राज्य होता है। इस क्षेत्र में फर, सिल्वर फर, जूनीफर, भोजपत्र, पाईन आदि वृक्ष मिलते हैं।

4.1.5 पश्चिमी हिमालय

पश्चिमी हिमालय में कुमायु एवं कश्मीर के क्षेत्र तथा पास की पर्वत श्रेणियां जैसे पीर पंजाल, काराकोरम, जोस्कर श्रृंखला आदि आती है। इसमें कश्मीर एवं उत्तरांचल भी सम्मिलित है। यहां की वनस्पति भूभाग की ऊंचाई के अनुसार परिवर्तनीय है इसे भी तीन उपभागों में बांटा गया है।

- **उप उष्ण वन–** इन वनों में वर्षा कम होती है तथा ये 1,500 मीटर की ऊंचाई तक हैं यहां पर ढाक, शीशम, जामुन, आम, बेर, कटहल, अशोक, शहतूत, साल, सेमल, कदम्ब आदि के वृक्ष पाये जाते हैं।
- **शीतोष्ण वन खण्ड–** ये वन 1500 से 3500 मीटर की ऊंचाई तक पाये जाते हैं। यहां वर्षा पूर्वी हिमालय क्षेत्र की तुलना में कम होती है। यहां पर नीचे की ओर चौड़ी पत्तियों वाले तथा ऊपर की ओर कोणधारी, दोनों प्रकार के वन पाये जाते हैं। यहां पर मुख्यतः पर्च, कोणीय पाईन, फर देवदार आदि वृक्ष पाये जाते हैं।
- **अल्पाईन वन–** ये वन 3,500 से 4500 मीटर की ऊंचाई तक होते हैं। यहां पर भी कोणीय वन मिलते हैं। 4000 मीटर के पश्चात् वृक्ष छोटे–छोटे होने लगते हैं तथा इससे ऊपर तो सिर्फ एल्पाईन घास ही मिलती है। यहां की मुख्य वन संपदा पर्च, सिल्वर फर, भोजपत्र, पाईन आदि होते हैं।

4.1.6 सिन्धु के मैदान

ये वन सतलज के बेसिन हैं। इनका विस्तार हरियाणा, पंजाब, राजस्थान का कुछ क्षेत्र एवं गुजरात का कच्छ प्रदेश है। यहां पर अर्ध मरूस्थलीय वनस्पति पाई जाती है बबूल, कीकर, खेजड़ी, थूहर, कैर, आंवला, रोहिड़ा आदि वनस्पतियां यहां की मुख्य वनस्पति है। इन वनस्पति की पत्तियां मोटी तथा गूदेदार होती है। जल की विषम परिस्थितियों में भी ये जीवित रहती है।

इसी प्रकार अन्य वैज्ञानिक ने भारत को वनस्पति संपदा के आधार पर विभिन्न भागों में विभक्त किया है। हुकर द्वारा 1855 में इस क्षेत्र को 9 भागों में बांटा गया है। पूर्वी हिमालय, पश्चिमी हिमालय, सिन्ध का मैदान, गंगा का मैदान, मालाबार पहाड़ियां, दक्षिण का पठार, सीलोन एवं मालद्वीप, बर्मा एवं मलाया प्रायद्वीप।

वनों की दृष्टि से भारत को 5 मुख्य भागों में बांटा गया है इन सभी मुख्य भागों में उपविभाग भी होते हैं।

- अल्पाईन झाड़ियां– इस वन के दो मुख्य प्रभाग हैं आर्द्र झाड़ी वन तथा शुष्क झाड़ी वन।
- उप अल्पाईन वन– यह स्वयं में एक बड़ा भूभाग है।
- शीतोष्ण कटिबंध वन– इसका दो प्रमुख प्रभागों में बांटा गया है। शीतोष्ण आर्द्र वन तथा शीतोष्ण हिमालय शुष्क वन।
- उपोष्ण कटिबंध वन– इस भूभाग को पुनः तीन मुख्य प्रभागों में बांटा गया है उपोष्ण चौड़ी पत्ती वन, उपोष्ण चीड़ वन तथा उपोष्ण सदाबहार वन।

- उष्ण कटिबंध वन– इस भाग को वनस्पति के आधार पर पुनः पांच प्रभागों में बांटा गया है, उष्ण आर्द्र सदाबहार वन, उष्ण आर्द्र पतझड़ वन, उष्ण शुष्क पतझड़ वन, समुद्र तटीय एवं दलदल वन तथा उष्ण कांटेदार वन।

4-2 भारत के जीव भौगोलिक प्रदेश

जैव विविधता के अंतर्गत वनस्पति के आधार पर विभिन्न वर्गीकरण को पूर्व में दर्शाया गया है। जैव विविधता में जीव जन्तु भी आते हैं। इनकी विविधता तथा पाये जाने के भूभागों के अनुसार भारत को कई जीव भूगोलीय क्षेत्रों में बांटा गया है।

भारत में पाये जाने वाली जीवों में भूभाग के अनुसार एक विशिष्ट जीवों का समूह है जैसे पश्चिमी रेगिस्तान में मिलने वाले जीव दक्षिण के पठार में पाये जाने वाले जीवों से भिन्न होते हैं। हिमालय क्षेत्र में पाये जाने वाले जन्तु समुद्रतटीय प्राणियों से बिल्कुल भिन्न होते हैं क्योंकि जन्तु वन्य जीव चलायमान होते हैं अतः एक महाद्वीप में वितरित एक जाति के अन्य जीव की प्रजाति की बड़े भागों में भी पाई जा सकती है। मुख्य रूप से वन्य जीवों के वितरण के आधार पर भारत को चार प्रमुख भागों में बांटा गया है किन्तु इन सभी भागों के अन्य उपभाग भी हैं। वन्य जीवों की उपलब्धता तथा उनके प्राकृतिक आवास के आधार पर विभाजन निम्न है–

- **इथियोपियन जीव–** इस प्रकार के वन्य जीव शुष्क तथा विपरीत परिस्थितियों वाले भूभाग में पाये जाते हैं। ये वन्य जीव कम, पानी, तीव्र सर्दी तथा तीक्ष्ण गर्मी की अवस्था में भी जीवित रहते हैं इनके शरीर में पानी संग्रहण तथा कम जल से अपने जीवन यापन करने की क्षमता होती है। इस भूभाग में राजस्थान, गुजरात का कुछ भाग आता है यह भू–भाग तुलनात्मक रूप से छोटा है।
- **मलायन जीव–** इस प्रकार के वन मुख्यतः नमी युक्त घने जंगल में पाये जाते हैं। ये क्षेत्र पूर्वी हिमालय तथा समुद्र तटीय क्षेत्र हैं।
- **यूरोपियन जीव–** यूरोपियन जाति के जीव मुख्यतः हिमालयी क्षेत्रों में मिलते हैं।
- **भारतीय जीव–** इस जाति के जीव प्रमुखतः भारतीय प्रायद्वीप में पाये जाते हैं।

उपरोक्त विभाजन के अतिरिक्त भू वैज्ञानिक प्रेटर ने अपने अध्ययन द्वारा 1934 में भारत को अनेक जीव भूगोलिग भागों में विभाजित किया है जो उत्तर में हिमालय से प्रारंभ होकर दक्षिण में नीलगिरी वन तक है।

4.2.1. हिमालय प्रदेश

हिमालय प्रदेश को भूभाग एवं जलवायु के अनुसार तीन भागों में बांटा गया है–

- **लद्दाख का शीत शुष्क प्रदेश–** भारत के उत्तर पश्चिम में शुष्क पर्वतीय क्षेत्र है। यहां तीव्र सर्दी होती है। यहां का भूभाग असमतलीय या पर्वतीय है। यहां प्रमुखतः पाये जाने वाले जीव–याक, गुरल, हंगल, जंगली बकरी विशिष्ट प्रकार के हरिण हैं।
- **हिमालय के निम्न वन भूभाग–** यह अत्यधिक जीव सम्पदा तथा विविधता वाला प्रदेश है इसमें पाये जाने वाले प्रमुख जीव, शेर, बघेरा, साम्भर, भारिल्ल, गुरिल, बारहसिंघा, चीतल, भालू, बंदर आदि हैं। इस भूभाग में जम्मू कश्मीर प्रांत, हिमालय प्रदेश तथा पश्चिम बंगाल के नीचे के भूभाग हैं। इन भागों में वनों की बहुतायत है। दून व शिवालिक की पर्वत माला भी इसी भूभाग में पायी जाती है।
- **हिमालय का वृक्षविहीन क्षेत्र–** इस भूभाग में ऊंचाई वाला क्षेत्र आता है यहां पर वृक्ष की उपलब्धता अत्यधिक कम होती है। एल्पाईन घास क्षेत्र होते हैं। अत्यधिक शीत के कारण यह

अधिकतर हिमाच्छादित रहता है यहां पायी जाने वाली अन्य जीव सम्पदा में कस्तूरी मृग, मोनाल पक्षी, हिम तेन्दुआ, भालू, जंगली बकरा आदि हैं।

4.2.2. उत्तर के मैदानी क्षेत्र

जब इस भूभाग का विभाजन किया गया था, तब वहां बहुत वन थे किंतु आज नहीं के बराबर हैं। यहां पर पाये जाने वाले जीव शेर, हाथी, तेन्दुआ, नील गाय, भेड़िया, लकड़बग्घा, चीतल आदि हैं। यह प्रदेश बहुत ही सुंदर है।

4.2.3. रेगिस्तान का मरूक्षेत्र

इस क्षेत्र में राजस्थान, कुछ हरियाणा, कुछ भाग गुजरात, कच्छ आदि आते हैं। यहां पर प्रमुख जीव, हरिण, चीतल, साम्भर, नील गाय, विभिन्न जाति के सर्प, छिपकलियां आदि हैं।

4.2.4. पठारी क्षेत्र

भारत के निचले प्रायद्विपीय भूभाग को इस क्षेत्र में रखा गया है। यह भारत का दक्षिण पश्चिम पठारी क्षेत्र है। इस भूभाग पर हाथी, शेर, बंदर, लंगूर, हरिण, काकड, कुछ प्रजातियों के सर्प आदि होते हैं।

4.2.5. मालाबार क्षेत्र

इस भूभाग में मालाबार की पहाड़ियां जिनमें पश्चिमी घाट की पहाड़ियां तथा तटीय भूभाग भी सम्मिलित है यहां की जलवायु सम है अतः यहां पर बिल्कुल भिन्न गुणों वाले जीव मिलते हैं, जिनमें प्रमुख बंदर की जातियां, हाथी, नेवला, विशिष्ट जाति के वानर, हिरण होते हैं।

4.2.6. नीलगिरी क्षेत्र

यह भारत का निम्न पर्वतमाला वाला क्षेत्र है यहां पर नीलगिरी पर्वतमाला है। यहां पर उष्ण आर्द्र परिस्थितियां हैं। यहां पर हरिण के अतिरिक्त विभिन्न प्रजातियों के पक्षी मिलते हैं तथा कुछ स्थानों पर हाथी भी पाये जाते हैं किंतु शेर आदि नहीं पाये जाते हैं।

4.3 जैव विविधता का महत्त्व

जैव विविधता का होना समस्त भूमण्डल एवं जल मण्डल वासियों के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सभी जीव किसी न किसी रूप में अपने पारिस्थितिकी तंत्र को प्रभावित करते हैं। उपभोक्ता एवं उत्पादक का संतुलन आवश्यक है यदि उत्पादन कम होगा तो उपभोक्ता को अन्यत्र विचरण करना पड़ेगा तथा पारिस्थितिकी तंत्र में परिवर्तन आयेगा। जहां तक अचल जैव संपदा का महत्त्व है इसको मूल्यांकित करना आसान है किंतु सचल जैव जिनमें मुख्य उपभोक्ता शाकाहारी तथा मांसाहारी दोनों ही होते हैं, को मूल्यांकित करना कठिन कार्य है।

सभी उत्पादक मानव के लिए खाद्य, कृषि एवं आवागमन के साधन उपलब्ध कराते हैं। एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण द्वारा जैव विविधता का मूल्य एवं महत्त्व को समझा जा सकता है। जैसे कि वनस्पति जगत कार्बनडाई ऑक्साइड को वायुमंडल से अवशोषित करते हैं तथा प्राणिजगत के लिए शुद्ध ऑक्सीजन उपलब्ध कराते हैं यहां वनस्पति जगत उत्पादक है तथा जैव जगत उपभोक्ता हुआ। इन वनस्पति की संख्या यदि कम होती है तो उपभोक्ता अन्यत्र विस्थापित होंगे इनकी संख्या में भी कमी हो जावेगी। यदि पक्षी बीजों को अपने मल द्वारा दूसरी जगह पर नहीं गिरायेंगे तो अन्य स्थानों पर वह वनस्पति उत्पन्न नहीं हो पायेगी जिससे उस प्रजाति कि वनस्पति का उत्पादन कम हो जायेगा।

इसी प्रकार वातावरण में उपस्थित सूक्ष्म जीव उपयोगी भी होते हैं तथा हानिकारक भी उपयोगी जीवाणु मानव व अन्य जीवों को पोषित करते हैं तथा हानिकारक जीवाणु रोग फैलाकर जीव संख्या को

नियोजित करते हैं।बड़े मांसाहारी जीव छोटे को खाते हैं जिससे उनकी संख्या नियंत्रित रहती है तथा बड़े मांसाहारी जीव जीवित रहते हैं। अतः जैव विविधता अति महत्त्वपूर्ण है। इसके बिना पृथ्वी पर जीवों का अस्तित्व खतरे में पड़ जायेगा।यह व्यवस्था सुचारू रूप से चलती रहे इसलिए समय–समय पर प्राकृतिक उपभोक्ता एवं उत्पादकों का आंकलन करना आवश्यक है। इनको मूल्यांकित कर इनके बीच सामंजस्य स्थापित करना अतिआवश्यक है।

जैव विविधता पर आये संकट का मुख्य कारण मानवजनित है जो प्रमुखतया निम्न है–

- आवास बनाने के लिए, रेल, सड़क मार्ग बनाने के लिए, बांध निर्माण के लिए, घरेलू साज सामान बनाने के लिए वनों को काटना शुरू किया गया। जिससे प्राकृतिक जीवों के आवास में हानि होने लगी तथा उनका जीवन संकट में पड़ गया एवं उनका भी विनाश होने लगा अतः आवास की हानि से जैव विविधता को मुख्य खतरा उत्पन्न हो गया।
- वन एवं जीवों को व्यवसाय के लिए अत्यधिक मात्रा में समाप्त किया जाने लगा। लकड़ी काटी जाने लगी अतः अत्यधिक वन विनष्टीकरण तथा विभिन्न सामाजिक कारणों से जीवों को मारा जाने लगा। अतः व्यवसाय में भी जैव विविधता को संकट उत्पन्न हो गया।
- मानव द्वारा उपयोग में लाये जाने वाले कीटनाशक एवं वनस्पति नाशकों के अत्यधिक प्रयोग से भी जैव विविधता के लिए संकट उत्पन्न हो गया है।
- जल संपदा का अत्यधिक दोहन भी होने लगा क्योंकि जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि होने जा रही है जो कि जलीय जैव विविधता के लिए बड़ा संकट बन गया।
- मानव द्वारा विभिन्न उपयोग का स्वरूप भी बदल गया है जैसे लकड़ी पहले सिर्फ ईंधन आदि के लिए काम में ली जाती थी किंतु जनसंख्या वृद्धि व समय के साथ सजावटी सामान बनाने, बड़े उद्योगों के लिए ईंधन के रूप में रेल मार्ग में परिवहन के लिए, उपयोग की जाने लगी। प्रसाधन में विभिन्न वनस्पतियों को काम में लिया जाने लगा।
- उत्पादन में वृद्धि करने के लिए मानव कच्चे माल के रूप में वनस्पति तथा जैव जीवों द्वारा उत्पन्न उत्पादों के अविवेकपूर्ण उपयूाग से, विभिन्न प्रजाति का विलोपन होने लगा।
- वनों की अत्यधिक काटने से जीवों के आवास की समस्या आ गई। जिससे प्रजनन कम हो गया तथा जैव विविधता पर सीधा संकट आ गया।

4-4 वैश्विक] jk"Vªh; ,oa LFkkuh; tSo fofo/krk;a

4-4-1- वैश्विक जैव विविधताएँ

जैव विविधता के कारण संपूर्ण विश्व को विभिन्न भागों में बांटा गया है। प्रत्येक भाग में पाये जाने वाले जीव तथा वनस्पतियां अलग–अलग प्रकार की हो सकती हैं। सचल जीवों की तुलना में अचल जीव अधिक व्यवस्थित क्षेत्र की रचना करते हैं।

डॉ. आर.एल. स्लैटर (1857) ने विभिन्न प्रकार के पक्षियों के पाये जाने के स्थानों के आधार पर सम्पूर्ण विश्व को 6 भागों में विभक्त किया गया है।

- पेलिआर्कटिक क्षेत्र
- इथिओपियन क्षेत्र
- इंडियन क्षेत्र
- ऑस्ट्रेलियन क्षेत्र
- नीआर्कटिक क्षेत्र
- नीमीट्रो क्षेत्र

डॉ. एन.आर. वॉलेस के अनुसार जैव विविधता पर निम्न वर्गीकरण किया गया है।

- पेलिआर्कटिक क्षेत्र– इस क्षेत्र में यूरोपियन, मेडिटेरियन साईबेरियन तथा मन्चूरिया क्षेत्र आते हैं।
- इथोपियन क्षेत्र– इस क्षेत्र में पूर्वी अफ्रीका, पश्चिमी अफ्रीका, उत्तरी अफ्रीका तथा मालागासी क्षेत्र आते हैं।
- ओरिएन्टल क्षेत्र या इंडियन क्षेत्र– इस क्षेत्र में भारत, श्रीलंका, हिन्दचीन, इन्डोमलेशिया क्षेत्र आते हैं।
- आस्ट्रेलियन क्षेत्र– इस क्षेत्र में आस्ट्रेलिया, ऑस्ट्रोमलाया, पोलिनेशिया तथा न्यूजीलैण्ड आते हैं।
- नीयोट्रोपिक क्षेत्र– इस क्षेत्र में ब्राजील, चिली मेक्सिको क्षेत्र आते हैं।
- नीआर्कटिक क्षेत्र– इस क्षेत्र में केलिफोर्निया, कनाडा तथा एलिनर्गाव की पहाड़ियां आती हैं।

4.4.1.1 आरिएन्टल क्षेत्र में पाये जाने वाली जैव विविधता

इस क्षेत्र में भारत बर्मा, श्रीलंका, फिलीफीन्स, बोर्निओ, सुमात्रा, जावा, बाली तथा चीन का कुछ भाग आते हैं। इन क्षेत्रों में समतल मैदान है एवं जंगल है। उच्च स्थल में लगभग 2400–3000 मीटर के हिमाल्यन क्षेत्र आते हैं इनका अधिकतर क्षेत्र मानसूनी है।

इस क्षेत्र में पाये जाने वाले जीव–

- स्तनपायी– तारियस, गिब्बन, उड़न लीमूर
- पक्षी– चौड़ी चोंच वाली चिड़िया
- सरीसृप– घडियाल, यूरो पेल्टिस, ओपिरथोग्लाईया, सांप, जमीनी कछुआ आदि
- मछलिया– लूसियासिफेलस, मास्तासेम्बेलस

अन्य जीवों में रेसियस बंदर, लंगूर, हाथी, बाघ, आरांगऊटावन, चीटींखोरा, नीलगाय, लकडबग्घा, भालू, झाऊचूहा, साधारण चूहा, गिलहरी, साही, पान्डा, उडन लोमड़ी, कुत्ता तथा गैन्डा हैं।

बुलबुल, कौआ, मैना, बुनकर चिड़िया, रोबिन, मोर, कोयल, तोते, कठफोड़वा आदि पक्षी हैं। करैत सांप, छिपकली, वृक सर्प उड़न छिपकली आदि सरीसृप हैं।

सेलामेन्डर, हार्डला, बूफो मेढ़क, राना मेढंक आदि उभयचारी हैं।

इस क्षेत्र की विशेषताएं निम्न हैं–

- यह क्षेत्र वनों का क्षेत्र है।
- यह इथोपियन क्षेत्र से समानता रखता है।
- इसमें मछलियों की उन्नत प्रजाति पाई जाती है।
- इसमें उभयचारी जीवों तथा सरीसृप में अधिक अंतर नहीं पाया जाता है।
- पक्षी इथोपियन क्षेत्र से समानता रखते हैं।

4.4.1.2. इथोपियन क्षेत्र

इस क्षेत्र में लगभग संपूर्ण अफ्रीका तथा मालावासी क्षेत्र आते हैं।

- स्तनपायी– सुनहरी मोल, आई–आई, भेडिया, खुरदरी चमड़ी वाले चूहे, उड़न छिपकली, जिराफ तथा ओकापि, हिप्पोपोटेमस आदि।
- पक्षी– हेलमेट पक्षी, पिलेटिरू, किराम्पोस, हैमर हैड्स, शूबिल
- सरीसृप– अण्डे देने वाले सांप, गीकोस, ग्रिडल्डलिजार्ड

- विशिष्ट जीव– फेफड़ों वाली मछली, विद्युत रे मछली, नोटोप्टिरस, उडन मछली, चिम्पांजी, गोरिल्ला, जीबरा, एन्टीलोप, लकड़बग्घा, तेन्दुआ, सिंह, वैबून बंदर, पेन्थर, सियार, ऑस्ट्रिच चिडिया, किंगफिशर, गोडावण, गिद्ध आदि।

4.4.1.3. आस्ट्रेलियन क्षेत्र

इस क्षेत्र में संपूर्ण अफ्रीका, तस्मानियां, न्यूजीलैण्ड एक बड़ा द्वीप है पानी की कमी है कम वनस्पति वाले क्षेत्र है किंतु तस्मानिया जंगली वाला क्षेत्र है। न्यूगिनि में घास के मैदान तथा वन है। इसमें पायी जाने वाली प्रजातियां निम्न हैं–

- स्तनपायी– कांटेदार चींटीखोरा, डकबिल कंगारू, ओपोसम, चिमगादड़ मारसूपियल छछून्दर।
- पक्षी– इमस, बुनकर चिड़िया, बया, उल्लू, तोता, मुकुटधारी कबूतर, किवी आदि।
- सरीसृप– स्फेनोडोन, पपड़ीदार पैर वाली छिपकली, नदी कच्छप आदि।
- विशिष्ट जीव– चींटी खोरा, कुछ सूखे क्षेत्र वाले चूहे, कंगारू आदि। ऐसे जीव जो इस क्षेत्र में नहीं पाये जाते है वे हैं चरम मांसाहारी लंगूर, बंदर, फिन्चेज, कठफोडवा, पूंछ वाले उभयचारी पूर्ण तथा अनुपस्थित होते हैं।

4.4.1.4. निओट्रोपिक क्षेत्र

इस क्षेत्र में दक्षिणी अमेरिका, चिनचिलास, गिनीपिग, चींटीखोरा आदि।

- स्तनपायी– अमेरिकन बंदर, चिनचिलास, गिनीपिग, चींटीखोरा आदि।
- पक्षी– मोनाकिग्स, अमेरिकन क्रिपर तैलिय चिड़िया, सीड़ स्पाईन आदि।
- सरीसृप– लेसरटेलिया, कीलोनिया आदि।

विशिष्ट जीव जो अन्यत्र कहीं नहीं पाये जाते हैं वे हरे अमेरिकन आयोसम, आर्माडिलो, पिकेरियस, वैम्पायर चिमगादड़, जेबी चूहे।

4.4.1.5. नीआर्कटिक क्षेत्र

इस क्षेत्र में संपूर्ण उत्तरी अमेरिका आता है। किंतु मैक्सिको एवं ग्रीनलैण्ड नहीं आते हैं। इस क्षेत्र में पाये जाने वाले जीव निम्न हैं–

- स्तनपायी– आर्मिडिलोस, उडन गिलहरी, कैनिड ओपोसम, छछून्दर, पिकास, भालू, प्रेयरी कुत्ते, पहाडी बकरा, अमेरिकन विसन, ऐन्टीलोप।
- पक्षी– टर्की, बाज, गिद्ध, कवालिस, बत्तखें, कोयल उल्लू, गल, हमिंगबर्ड, कठफोड़वा, स्टार्क, फ्लेमिगो, तोते आदि।
- सरीसृप– रेटल सर्प, घड़ियाल, लोमड़ी, मगरमच्छ, कोरल सांप, पिट वाईपर आदि।

डॉ. लिडेकर द्वारा एक अन्य विभाजन किया गया है जिसमें कई छोटे क्षेत्रों को सम्मिलित किया गया है–

- आर्कटोकिया क्षेत्र–नीआर्कटिक क्षेत्र, पेलिआर्कटिक क्षेत्र, इथोपियन क्षेत्र, ऑरिएन्टल क्षेत्र
- नीओर्जिया क्षेत्र– नीयोट्रोपिकल क्षेत्र
- नोटोर्जिया क्षेत्र

4.4.2 क्षेत्रीय जैव विविधता

राजस्थान प्रदेश में पाये जाने वाली जैव विविधता निम्न प्रकार है–

राजस्थान में विभिन्न भौगोलिक स्थितियां हैं पश्चिम में मरूस्थल है, दक्षिण पश्चिम में पहाड़ी क्षेत्र है तथा पूर्व व दक्षिण पूर्व में मैदान हैं। राजस्थान प्रदेश को निम्न क्षेत्रों में विभाजित किया गया है–

- **दक्षिणी पूर्वी मैदानी क्षेत्र–** यह क्षेत्र अरावली श्रृंखला के पूर्व व दक्षिण पूर्व भाग में मैदानी भाग है यहां का क्षेत्र काफी उपजाऊ है इस क्षेत्र में बाण गंगा तथा गंभीरी नदी है बनास नदी व चम्बल नदी है। यहां इस क्षेत्र में अधिकांशतः बांस, सागवान, सफेदा, तेन्दु, महुआ आदि वृक्ष मिलते हैं। यहां की जीव संपदा में लकड़बग्घा, सांभर, तेन्दुआ, जंगली सूअर, चौसिंगा तथा उड़न गिलहरियां हैं।
- **पहाड़ी क्षेत्र–** प्रदेश के पूर्व से दक्षिण पश्चिम तथा अरावली पर्वत श्रृंखला है जो विंध्याचल से मिलकर सवाईमाधोपुर में दोनों की संधि बनाती है। पहाड़ी क्षेत्र में बाघ, जरख, सियार, सांभर, भालू, चीतल, नीलगाय, जंगलीसूअर प्रमुख हैं।
- **मरूस्थलीय क्षेत्र–** यह क्षेत्र बहुत कम वर्षा वाला क्षेत्र है यहां पर वर्षा नगण्य होती है। इस क्षेत्र में लवणीय जल पाया जाता है। यहां पर अत्यन्त विशिष्ट प्रजातियों की वनस्पति पायी जाती है जिनके पत्ते मोटे होते हैं या तनों में विभिन्न रूपान्तरण पाये जाते हैं। यहां सेवण घास, खेजड़ी, फोगड़ा, कैर, आंकडा, बेर, थूहर, रोहिडा आदि वनस्पतियां मिलती हैं। जैव विविधता में चिंकारा, काला हिरण, गोडावण पक्षी, चील आदि आते हैं।

4-4-3 Hkkjr esa ogn fofo/krk

भारत एक वृहद् विविधता वाला क्षेत्र है विश्व के बड़े जैव विविधता वाले क्षेत्रों में एक हैं। यहां हर क्षेत्र में विविधता है।

4.4.3.1. सांस्कृतिक विविधता

देश में जम्मू कश्मीर से लेकर दक्षिण भारत क्षेत्र तथा पं. बंगाल से लेकर गुजरात के तटों तक विभिन्न संस्कृतियां हैं। पुरातन काल में भी यहां विकसित सभ्यताओं के अवशेष पाये जाते हैं। सिंधु घाटी एवं मोहनजोदड़ो इसके उदाहरण हैं। यहां पर दक्षिण भारत में भरतनाट्यम तथा पंजाब के गिद्दा नृत्य प्रसिद्ध है। राजस्थान में भील तथा बस्तर में आदिवासियों की है। हमारे देश में विभिन्न धर्मों को मानने वाले लोग जैसे हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, इसाई, पारसी, जैन धर्म, बौद्ध धर्म संस्कृति आदि को मानने वाले लोग हैं जो अपनी सांस्कृतिक विशेषताओं के साथ भारतवर्ष में एक साथ निवास करते हैं।

4.4.3.2. आवासीय विविधता

देश में आवासीय विविधता भी पायी जाती है प्रगतिशील देश होने के कारण यहां बड़े मेट्रो शहर हैं तथा अभी भी जंगलों में रहने वाले आदि बाहुल्य के क्षेत्र भी हैं। देश में शहरी सभ्यता तेजी से बढ़ रही है बड़ी–बड़ी गगनचुम्बी इमारते हैं वहीं ग्रामीण क्षेत्र में, यहां के निवासी झोपड़ियों में भी रहते हैं। आर्थिक कारण भी इसके लिए जिम्मेवार हैं। देश में ओटोमोबाईल और मेट्रो रेल भी हैं वहीं पर बैलगाड़ी तथा दुर्गम क्षेत्रों में घोड़ा, टट्टू, याक आदि सवारी के काम में लिए जाते हैं। वनमित्र लोग भी हैं तथा शहरीकरण भी अत्यधिक तेजी से हो रहा है।

4.4.3.3. वन्य संपदा में विविधता

देश में अतिशीत प्रदेश भी है, अतिगर्म प्रदेश भी है सम जलवायु तथा शीतोष्ण प्रदेश भी हैं अलग–अलग जलवायु में भिन्न–भिन्न जैव संपदा पायी जाती है। उष्णकटिबंधीय को नारियल के वृक्ष पाये जाते हैं तथा हिमालय क्षेत्र में कोणधारी वृक्ष। तराई के क्षेत्र में नीम, आम, पीपल, कदम्ब, अनार, अंजीर सागवान आदि होते हैं। लगभग 1500 प्रकार की बड़े वृक्षों एवं झाड़ियों की जातियां पाई जाती हैं तथा

अनगिनत जैव प्लवक तथा शैवाल की प्रजातियां भी मिलती हैं। मरूस्थलीय क्षेत्र में विषम परिस्थितियों में पाये जाने वाली वनस्पति जैसे कीकर, फोग, रोहिडा, होहोबा, कैर, बेर आदि के वृक्ष एवं झाड़ियां हैं। ऊंचाई वाले क्षेत्रों में अल्पाईन घास होती है। इस प्रकार से भारत में एक वनस्पति विविधता वाला क्षेत्र है।

4.4.3.4. खानपान की विविधता

भारत देश में रहने वाले सभी लोगों में खानपान की विविधता पाई जाती है। यहां पूर्ण मांसाहारी एवं पूर्ण शाखाहारी लोग रहते हैं। गुजरात में मूंगफली की अच्छी पैदावार होती है। यहां पर मूंगफली के तेल एवं मूंगफली के व्यंजन तैयार किये जाते हैं। दक्षिण में नारियल व केले बहुतायत से होते हैं वहां पर नारियल के उत्पाद बनाये जाते हैं तथा भोजन एवं व्यंजन नारियल के तेल में पकाये जाते हैं। जहां तिलहन के रूप में सरसों होती हैं वहां सरसों के तेल में व्यंजन बनाये जाते हैं। पंजाब में शाक आदि पर निर्भरता अधिक है तो कश्मीर में फलों की प्रचुरता है। तटवर्तीय क्षेत्रों में काजू आदि की अधिकता है। गर्म प्रदेशों में मसाले जैसे इलायची, काली मिर्च आदि बहुतायत में प्रयोग की जाती है। विभिन्न मसालों के लिए भारत विश्व प्रसिद्ध है। प्राचीन सभ्यता में भी मिश्र तथा अरब देशों में खाने के काम आने वाले विभिन्न मसालों का भारत से व्यापार किये जाने के बहुत से प्रमाण मिले हैं।

4.4.3.5. भौगोलिक विविधता

भौगोलिक क्षेत्रों के अनुसार भाारत में स्पष्ट भौगोलिक विविधता पाई जाती है यहां पर लम्बे चौड़े सपाट मैदानों में गंगा के क्षेत्रों में आते हैं तथा शीत प्रदेशों में हिमालय क्षेत्र। हिमालय के क्षेत्र में अधिक ऊंचाई वाले हिमाच्छादित क्षेत्र हैं जो वर्ष भर हिम से ढके रहते हैं। हिमालय की तराई के क्षेत्र असमतलीय क्षेत्र हैं। दक्षिण में पठार हैं। समुद्रतटीय क्षेत्र भी बहुत बड़े क्षेत्र हैं। विषम परिस्थिति के शुष्क कम वर्षा वाले उष्ण रेगिस्तान भारत के उत्तर पश्चिम क्षेत्र है तथा शीत मरूस्थलीय प्रदेश सिक्किम तथा लद्दाख में है। यहां वर्षा वन भी हैं अतः विश्व में पाई जाने वाली लगभग सभी प्रकार की जलवायु तथा भौगोलिक विविधता भारत में पाई जाती है।

4.4.3.6. जैव विविधता

भारत देश में जैव विविधता अत्यधिक है। यहां पर यूरोपियन जीव भी हैं तथा इथोपियन जीव भी हैं। अत्यधिक जैव विविधता होने के कारण भारत को जैव विविधता के आधार पर स्पष्ट क्षेत्रों में बांटा गया है जिसका वर्णन पूर्व में भारत के जीव भौगोलिक क्षेत्र में किया गया है।

देश में जलजीवों में मगरमच्छ, घड़ियाल भांति–भांति की मछलियां, स्वच्छ जल के जीव, सागरीय जीव, उभयचारी जीवों में मेंढक की विभिन्न प्रजातियां। कछुए, छिपकली तथा वीवर आदि जीव पाये जाते हैं। सरीसृपों में भारत में अत्यधिक प्रकार के सर्प, जिनमें जल सर्प भी आते हैं नाग, करेत जाति की सर्वाधिक प्रजातियां भारत में पायी जाती हैं।स्तनधारी जीवों में भारत में भेड़ बकरी, कुत्ते, गाय, भैंस, बिल्ली, शेर, बाघ, हरिण, साम्भर, चीतल और भी बहुत सी जीव प्रजातियां पायी जाती हैं।भारत में जलीय, थलीय, समुद्री, मृदा शुष्क व शीत, मरूस्थलीय सभी प्रकार के पारिस्थितिकी तंत्र पाये जाते हैं।

उपरोक्त सभी कारणों से यह स्पष्ट है कि भारत एक वृहद् विविधता वाला क्षेत्र है।

4.4.4 जैव विविधता के संवेदनशील क्षेत्र

जैव विविधता के संवेदनशील क्षेत्र जिनमें कि किसी प्राणि अथवा वनस्पति की अधिकता हो, सीमित क्षेत्रीय हो तथा विलुप्त प्रायः हो। ये सामान्यतः दो प्रकार के होते हैं–

- दुर्लभता के संवेदनशील क्षेत्र,
- सीमित क्षेत्रीय बाहुल्य के संवेदनशील क्षेत्र।

विश्व के 25 जैव विविधता के संवेदनशील क्षेत्र

1. ट्रोपिकल एन्डीस
2. मीसोअमेरिका
3. कैरिबियन
4. एटलोटिक वन क्षेत्र
5. पश्चिमी एक्वेडोर
6. ब्राजीलियन केरोड़ो
7. मध्य चिली
8. कैलिफोर्निया फ्लोरिडा क्षेत्र
9. मेडागास्कर एवं इंडियन ओसयिन क्षेत्र
10. पूर्वी पहाड़ियां तथा समुद्र तटीय वन
11. पश्चिमी अफ्रीका में गिरि के जंगल
12. केप फ्लोरिस्टिक क्षेत्र
13. सकुलेन्ट कारू
14. मेडिटेरियन बेसिन
15. कॉकेसस
16. सन्डोलैन्डस्
17. वालेशिया
18. फिलीपीन्स
19. इन्डो बर्मा
20. मध्य उत्तरी चीन
21. श्रीलंका के पश्चिमी घाट
22. उत्तर पश्चिम आस्ट्रेलिया
23. न्यूकेलोडोनियां
24. न्यूजीलैण्ड
25. माईक्रोनेशिया।

4.4.5 जैव विविधता को खतरे

पृथ्वी पर जीवनोत्पत्ति के पश्चात् करोड़ों वर्ष पहले विभिन्न पारिस्थितिकी तंत्र उत्पन्न हुए जिसमें भांति–भांति के जीव अपना आवास स्थान बनाने के पश्चात् अपने अनुकूल को विकसित कर पाये एवं संतुलन कायम रख पाये। किंतु पिछले कुछ हजार वर्षों में मानव ने अत्यधिक प्रगति की तथा विभिन्न प्रकार के उत्पाद बनाने लगा तथा विविध वनस्पति जगत को नष्ट होने लगा जिससे जैव विविधता को खतरे बढ़ते चले गये एवं जैव विविधता की हानि होने लगी। जैव विविधता को मुख्य खतरों को मोटे रूप में निम्न भागों में बांटा जा सकता है जिनमें अतिसूक्ष्म अन्य कारण भी हैं–

4.4.5.1. वनों का विनाश

यह एक अतिमहत्त्वपूर्ण कारण है वन बहुत से जीवों को प्रश्रय देते हैं इनमें उपस्थित घास में टिड्डे एवं छोटे जीव निवास करते हैं। वृक्षों पर पक्षी एवं वृक्ष प्राणी रहते हैं। उचित मात्रा में ऑक्सीजन प्राप्त होती रहती है। वर्षा के लिए उचित नमी की अवस्था प्राप्त होती है। मानव ने अपने उपयोग के लिए इन्हें नष्ट करना शुरू कर दिया इसके अलावा प्राकृतिक कारण जैसे अनावृष्टि एवं अतिवृष्टि। अकाल आदि प्राकृतिक

कारण है जो कि जैव विविधता के लिए संकट उत्पन्न करते हैं किंतु इसका मुख्य कारण अविवेकपूर्ण उपयोग ही है।

4.4.5.2. अवैध शिकार

भारत तथा विश्व में अवैध शिकार एक बड़ी समस्या बन चुका है। सिर्फ मनोरंजन के लिए सजावटी सामान के रूप में अथवा दवा आदि बनाने के लिए पशुओं का शिकार अनावश्यक रूप से, सम्पूर्ण विश्व में होता है। बारहसिंघे का शिकार सजावटी सामान बनाने में किया जाता है। हाथी का हाथी दांत के लिए, कॉडमछली का कॉडलीवर आयल बनाने के लिए, व्हेल का शिकार हड्डियों एवं वसा के लिए, शेर एवं बाघों का शिकार खालों के लिए, अजगर तथा अन्य सर्पों का शिकार पर्स आदि बनाने के लिए किया जाता है।जनसंख्या वृद्धि के कारण इन उत्पादों की मांग भी बढ़ती जा रही है अतः चोरी छिपे किये जा रहे जीवों के शिकार के कारण वन्य जीवों को अत्यधिक खतरा उत्पन्न हो गया है।अविवेकपूर्ण शिकार से किसी विशिष्ट वन्य प्रजाति को खतरा उत्पन्न हो जाता है। वर्ल्ड वाइल्डलाईफ फन्ड के द्वारा अवैध शिकार की रोकथाम के लिए विशेष दल गठित किया गया है जो समय पर छापा मारकर अवैध शिकारियों की पकड़ करता है। अवैध शिकार से भारतीय शेर को विलुप्ति का खतरा उत्पन्न हो गया है। भारतीय हाथियों की संख्या में अत्यधिक कमी आ गई है अतः अवैध शिकार जैव विविधता के लिए एक बड़ा संकट है।

4.4.5.3. मानव तथा वन्य जीवों में प्रतिस्पर्धा

बढ़ती जनसंख्या एक आवास की बढ़ती समस्या के कारण मानव एवं वन्य जीवों में प्रतिस्पर्धा होने लगी है। वन्यजीवों को अपने लिए आवास, भोजन की आवश्यकता होती है साथ ही मानव को अपने आवास, कारखाने, भोजन के लिए कृषि क्षेत्रों की आवश्यकता होती है। स्थान ही तलाश में वन खत्म होते जा रहे हैं। वन्य जीवों को अपने जीवन के लिए संघर्ष करना पड़ता है इसलिए उन्हें अपने प्राकृतिक आवासों से बाहर निकलना पड़ता है जहां वे मानव द्वारा मार दिये जाते हैं। जमीन पर सफाई करते समय अनेक सरीसृपों का विनाश हो जाता है। चूहों को खत्म करने पर सर्पों में वृद्धि होती है जब वे आबादी क्षेत्रों में आ जाते हैं तब मानव द्वारा मार दिये जाते हैं। वनों में मानव द्वारा अत्यधिक शोर उत्पन्न होने के कारण जीवों में उद्विग्नता आ जाती है तथा वे मानव पर हमला करने लगते हैं। यदि सभी जंगली सूअरों को मानव द्वारा मारकर खा लिये जायेगा तो वन में शेर के लिए शिकार नहीं बचेगा तथा वे आदमखोर भी हो सकते हैं तथा प्राकृतिक आदतों को छोड़ने के लिए बाध्य हो जावेंगे तथा मानव एवं वन्य जीवों में आवास एवं भोजन के लिए स्पर्धा बढ़ती जायेगी। अंततोगत्वा, वन्य जीवों के जीवन को खतरा हो जायेगा तथा जैव विविधता को भारी संकट उत्पन्न हो जायेगा।

4-4-6 Hkkjr dh ldVxLr ,o {k= lhfer iztkfr;k

भारत देश में ऐसी बहुत–सी वन्यजीव प्रजातियां हैं जो कि मानवजनित अथवा प्राकृतिक कारणों से विलुप्ति के कगार पर है। विलुप्ति के मुख्य कारण निम्न हैं–

- अनियंत्रित आखेट
- प्राकृतिक विपदा
- महामारी।

अनियंत्रित आखेट से शेर बाघ एवं घड़ियालों की संख्या में निरंतर कमी आ गयी है। ऐसे बहुत से पक्षी हैं जिन्हें मारकर खाया जाता रहा है जैसे मरूस्थलीय पक्षी गोड़ावन। प्राकृतिक विपदा में दुर्भिक्ष, उल्कापात आदि कारण हैं। डाइनोसौर के खात्मे के लिए आधुनिक शोध के अनुसार इनके नष्ट होने का कारण भीषण उल्कापात हो सकता है। महामारी भी एक ऐसा कारण है जो किसी भी प्राणियों की प्रजाति को संकटग्रस्त प्रजाति की श्रेणी में ला सकता है। हाल ही में किसी अज्ञात बीमारी से नन्दनकानन में सफेद बाघ

बड़ी संख्या में मर गये। ये प्राणी पहले से ही समाप्ति की कगार पर हैं। गाय, भैंस, बकरी जो खुर वाले प्राणि हैं, भी खुर पका, मुंह पका, बीमारी अचानक महामारी की तरह फैलती है यह बीमारी जंगलों के जानवर तक पहुंचती है तथा इनसे एक पूरी प्रजाति का, एक क्षेत्र, से विनाश हो सकता है।

4-4-6-1 Hkkjr esa ladVxLr izkf.k

भारत में संकटग्रस्त प्राणि निम्न हैं–

- शेर, बाघ, सफेद तेन्दुआ
- सिंह, पूछ बंदर, लघु पुच्छ बंदर, नीलगीर लंगूर
- स्लोलोरिस, वनमानुष, चिम्पैंजी, ओरांग ऊटान
- मगरमच्छ, घड़ियाल, जलछिपकली, सफेदपूंछ बतख, गुलाबी सिर वाली बतख
- सोन चिरैया, पहाड़ी बटेर, तीतर,
- जंगली भैंस, डाल्फिन, लाल पान्डा, कस्तूरी हिरण, चौसिंगा
- बाहरसिंघा, जंगली गधा, छोटे सूअर, गोल्डन कैट
- अजगर, पीवण सर्प, दुम्बी आदि
- कछुआ पैगोलिन, उद्बलाव।

4-4-6-2 Hkkjr dh {ks= lhfer izkt kfr;k

वनस्पति की ऐसी प्रजातियां जो कि एक बहुत ही सीमित क्षेत्र में पायी जाती है। सीमित क्षेत्रीय कहलाती हैं। ऐसी बहुत सी वनस्पतियां हैं जो कि बहुत ही कम तथा बहुत ही सीमित क्षेत्र में पायी जाती है उदाहरणार्थ ऐसी बहुत सी वनस्पतियां हैं जो कि किसी द्वीप पर पाई जाती है, अन्यत्र नहीं। कुछ अतिमुख्य सीमित क्षेत्रीय वनस्पतियां जो कि भारत के मरूस्थलीय क्षेत्र में पायी जाती हैं निम्न हैं–

1. एम्फीकम
2. डिटोसीरस
3. गेडेकेलिया
4. अल्टेरिया
5. कूरूदेसिया
6. हेलेन्डिया
7. लेगेनेन्ड्रा
8. जाईलेन्डियम
9. हिचेनिया
10. ब्लेफारिस्टेमा
11. फाईकस
12. रिलिजिओसा
13. फाईकस बैन्गालेंसिस
14. इन्डिगोफेरा
15. अरेटाकार्पस
16. सीसेमम इन्डिकम
17. मीमासाईलम
18. फेरोनिया गैन्डीफ्लोरा
19. शीरिया रोबस्टा

20. कैरियोटा अर्नस

- iqjk lhfer {k=h; & ये वे सीमित क्षेत्र प्रजातियां हैं जो हजारों वर्षों पहले बहुतायत से पायी जाती थीं तथा अब अतिसीमित क्षेत्रों में पायी जाती हैं। इनके प्रमुख उदाहरण–जिन्कोवाईलोबा, सैक्वोईया सेमीपर्वीरूस तथा ट्रापा नेटनस है।
- uo lhfer {k=h; & इसे माइक्रोइन्डेमिक भी कहते हैं।ये वह वनस्पति प्रजातियां हैं जो कि अभी कुछ समय पूर्व विकसित हुई है। एवं उन्हें पूरी तरह से भूमंडल पर फैलने का मौका नहीं मिल पाया है।

4-4-7 tho fofo/krk dk lqj{k.k

जैव विविधता के संरक्षण से तात्पर्य है कि वन्यजीव एवं वनस्पति को बचाने के तथा उन्हें उनके प्राकृतिक आवासों में संरक्षित करने के प्रयास। जिससे कि विभिन्न प्रजातियां विनष्ट अथवा विलुप्त नहीं हो जायें। मानव अपने उपयोग के लिए प्रकृति को अविवेकपूर्ण तरीकों से उपयोग कर रहा है। अपनी बुद्धिमत्ता से मानव भूमंडल पर अपनी इच्छानुसार वन्यजीवों तथा वनस्पति का उपयोग कर रहा है। जिससे पारिस्थितिकी तंत्र में असंतुलन उत्पन्न हो रहा है। इसी कारण बहुत से वन्य जीव एवं वनस्पति विलुप्त हो रही हैं तथा बहुत सी विलुप्ति की कगार पर है। इन्टरनेशनल यूनियन फॉर कन्जरवेशन ऑफ नेचर एण्ड नेचुरल रिसोर्सेज के द्वारा प्रकाशित रेड डाटा बुक के अनुसार लगभग 5000 प्रकार की वनस्पति पिछले 30 वर्षों में विलुप्त हो चुकी हैं। 139 पक्षी प्रजातियां विलुप्त हो चुकी हैं तथा लगभग 600 से अधिक प्राणी प्रजातियां विलुप्ति के कगार पर हैं। इससे हमारे पारिस्थितिकी तंत्र पर सीधा प्रभाव पड़ा है तथा खाद्य श्रृंखला में परिवर्तन होने से तंत्र विकृत हो जाता है।

सम्पूर्ण जैविक क्षेत्र एक बहुत बड़ा पारिस्थितिकी तंत्र है अब वैज्ञानिकों तथा अन्य साधारण मानवों द्वारा यह बात स्वीकार कर ली गई है कि जैव विविधता को नष्ट होने से बचाना अति आवश्यक है।प्रायोगिक पारिस्थितिकीतंत्र की अवधारणा एवं उपयोगिता संपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र के संरक्षण एवं संधारण के लिए अति आवश्यक है।

वैयक्तिक स्तर पर दो मुख्य कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं जो कि जैव मण्डल के लिए अति आवश्यक है–

- इन्टरनेशनल बायोलोजीकल प्रोग्राम
- मैन एण्ड बायोस्फीयर

जैव विविधता का संरक्षण तथा वन्यजीव संरक्षण, इन दोनों कार्यक्रमों का मुख्य ध्येय है। इसके सदस्य देशों में भी इसी प्रकार की संस्थायें बनी हुई हैं। इसके अलावा ऐसी बहुत सी संस्थाएं हैं जो कि संयुक्त राष्ट्र संघ की ओर से चलाई जा रही हैं जो कि वन्य जीव एवं वनस्पति संख्या के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करती हैं इनमें प्रमुख वर्ल्ड वाइल्ड लाईफ फंड है।

वन्य जीव एवं वनस्पति की जैव विविधता के संरक्षण के लिए प्रयास निम्न हैं–

- वन्य जीवों एवं वनस्पतियों की उत्पत्ति की निरन्तरता अनिवार्य रूप से रहे।
- विलुप्त प्रायः, संकटग्रस्त जीव एवं वनस्पति को बचाने के लिए विशेष प्रयास करना।
- वन्य जीवों की संख्या का निर्धारण करने के प्रयास।
- ऐसी प्रजातियों का पता लगाना जिनका आर्थिक कारणों से खात्मा एवं शोषण, मानव द्वारा किया जा रहा है।

- देश में तथा विश्व में इस प्रकार की नियंत्रण व्यवस्था बनना जिससे यह जानकारी प्राप्त हो सके कि किसी विशिष्ट प्रजाति का शोषण, आवश्यकता से अधिक तो नहीं रहा अर्थात् उसकी वृद्धि की दर से उनके शोषण की दर अधिक तो नहीं।
- प्रजातियों एवं उनके आवास व्यवस्था को सुचारू करने के लिए दिशा निर्देश का निर्धारण करना। हमारे देश में भी जैव विविधता को संरक्षित करने के लिए बहुत से उपाये किये जा रहे हैं।

जैव विविधता के संरक्षण के मुख्य तरीके दो प्रकार के हैं–

4-4-7-1 Ñf=e vkokl h; l qj{k.k

इस प्रकार के संरक्षण में जैव विविधता की पहचान कर उनकी संख्या का निर्धारण किया जाता है तत्पश्चात् जिन जीवों एवं वनस्पतियों की संख्या कम हो रही है अथवा जो संकट में हैं उन जैव संपदा के लिए उपयुक्त आवास की रचना की जाती है तथा संकटग्रस्त प्रजातियों को उसके प्राकृतिक आवास के ही समान कृत्रिम रूप से रचित आवास में स्थानान्तरित किया जाता है एवं उनके संवर्द्धन के उपाय किये जाते हैं। हमारे देश में चिड़ियाघरों एवं जन्तुआलयों का निर्माण किया जात रहा है। उदाहरणार्थ मगरमच्छ की संख्या निरंतर कम होती जा रही है इसके लिए मगरमच्छ प्रजनन क्षेत्र का जयपुर (राजस्थान) में निर्माण किया गया है यहां पर मगरमच्छों का प्रजनन करा कर उन्हें विकसित होने पर उनके प्राकृतिक आवास में पहुंचा दिया जाता है।इसी प्रकार रेगिस्तानी जीव ऊँट की आबादी के संवर्द्धन के लिये बीकानेर (राजस्थान) में उष्ट्र प्रजनन केन्द्र की स्थापना की गई है। चिड़ियाघरों में कृत्रिम रूप से विभिन्न पक्षियों का संरक्षण व संवर्द्धन किया जाता है। भारत सरकार की नीतियों के अनुसार जन्तुआलय का निर्माण किया जा रहा है।

जैव विविधता के संरक्षण के लिये संपूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र का ज्ञान होना आवश्यक है। इसके निर्माण के लिये निम्नानुसार कार्य प्रणाली अपनाई जाती है–

- सर्वप्रथम संकटग्रस्त जीव एवं वनस्पति की सर्वेक्षण द्वारा पहचान की जाती है।
- संरक्षण योग्य प्राणि की खाद्य श्रृंखला में क्या स्थिति है एवं उसके लिये उपयुक्त स्थान की तलाश की जाती है ताकि उचित जलवायु की स्थिति प्राप्त हो सके।
- संरक्षण योग्य प्रजाति के लिये कम से कम कितने स्थान की आवश्यकता होगी तथा उसके दैनिक जीवनचर्या में किस प्रकार की प्राकृतिक वस्तुओं की आवश्यकता होगी, उसका निर्धारण एवं उनका कृत्रिम रूप से निर्माण किया जाता है।
- संरक्षण योग्य प्रजाति के साहचर्य के लिये किस प्राणि एवं परजीवी अथवा उत्पादक की आवश्यकता होगी वह उस प्राणि को उपलब्ध कराई जाती है। जैसे शाकाहारी प्राणि को उसके प्राकृतिक आवास में प्राप्त होने वाली शाक व वनस्पति उपलब्ध कराते हैं तथा मांसाहारी प्राणि को उसके द्वारा सामान्यतः खाये जाने वाले मांस की आपूर्त की जाती है।
- वनस्पति जगत के विलुप्त प्रायः वनस्पतियों के लिये उचित जलवायु प्रबन्ध की आवश्यकता होती है तथा कृत्रिम ग्रीन हाउस बनाये जाते हैं। जहां प्रकाश की उचित व्यवस्था की जाती है। नमी की व्यवस्था के लिये स्प्रिंकलर लगाये जाते हैं। रेगिस्तानी वनस्पति को उनके अनुसार शुष्क वातावरण दिया जाता है। भारत में इस प्रकार के अनेक आवास बनाये गये हैं इनके बहुत से नेशनल पार्क हैं।

foyqIr gks jgs thoksa dh l qa[;k

i tkfr;k	foyqIr	lqdVxLr
स्तनधारी	104	499

पक्षी	144	1046
सरीसृप	32	205
मछलियां	42	423
वनस्पतियां	396	19773

हमारे देश में जूलोजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया तथा बोटनीकल सर्वे ऑफ इण्डिया संकटग्रस्त तथा विलुप्त प्राणियों के बारे में सूचना तथा सूची तैयार करते हैं।

भारत सरकार एवं राज्य सरकार द्वारा वन्य जीवों को संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से वन्यजीव सप्ताह का आयोजन किया जाता है जो कि एक अक्टूबर से सात अक्टूबर तक निर्धारित किया गया है।

4.4.7.2 स्व–आवासीय संरक्षण

कृत्रिम आवासीय संरक्षण के विपरीत स्वआवासीय संरक्षण को अधिक महत्त्व दिया जाता है क्योंकि इस प्रकार की व्यवस्था में उपयुक्त स्थल का चयन किया जाता है जो प्राकृतिक रूप से उपलब्ध है अथवा अन्य जीवों के प्रमुखतः पाये जाने वाले स्थान होते हैं वहां पर अभ्यारण्य बनाये जाते हैं तथा एक साथ पूरे खाद्य–जाल एवं खाद्य–शृंखला के अनुसार सभी जीवों व वनस्पतियों का संरक्षण किय जाता है तथा इन अभ्यारण्यों को प्रमुख वन्यजीव जिसको कि संरक्षित करना है के आधार पर सुविधाजनक परिस्थितियां दी जाती हैं जिससे वन्य जीव प्राकृतिक परिस्थितियों में अपनी सुरक्षा तथा वंश वृद्धि कर सके।

- वन्य जीवों तथा वनस्पतियों को संरक्षण देने के ध्येय से हमारे देश में अभ्यारण्य तथा राष्ट्रीय उद्यान का निर्माण किया गया है।
- वन्य प्राणि अधिनियम 1972 बनाया गया है।
- वन्यप्राणियों से संबंधित परियोजनाओं को बढ़ावा दिया जा रहा है।
- वन नीति 1998 भी बनाई गई है।

4-4-7-3 ou o oU; tho lqj{k.k

वन समस्त जीव घाटियों के लिये ऑक्सीजन का स्रोत है। वास्तव में वनों को पृथ्वी के फेफड़े कहा जाय तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य और कृषि संगठन के अनुसार प्रतिवर्ष लगभग 6000 वर्ग मील के जंगल समाप्त हो रहे हैं। यदि वन संरक्षित रहेंगे तो वन्य जीव भी सुरक्षित रहेंगे।

राजस्थान के कुछ अभयारण्य तथा उद्यान निम्नलिखित हैं–

1. घना पक्षी विहार, भरतपुर
2. ताल छापर, चूरू
3. दरा अभयारण्य, कोटा
4. जमवारामगढ़, जयपुर
5. नाहरगढ़, जयपुर
6. राष्ट्रीय मरू उद्यान, जैसलमेर
7. जयसमन्द अभयारण्य, उदयपुर
8. सीतामाता अभयारण्य, चित्तौड़गढ़ व उदयपुर
9. राष्ट्रीय चम्बल अभयारण्य, कोटा
10. केलादेवी अभयारण्य, करोली
11. माछिया सफारी पार्क, जोधपुर
12. रणथम्भोर अभयारण्य, सवाईमाधोपुर

13. सरिस्का वन्यजीव अभयारण्य, अलवर
14. फुलवारी नाल, उदयपुर
15. रावली टाटगढ़, अजमेर
16. बन्धबारेठा, भरतपुर
17. वनविहार, धोलपुर
18. रामगढ़, बून्दी
19. जवाहर सागर, कोटा

राजस्थान में 25 वन्यजीव अभयारण्य 31 निषिद्ध क्षेत्र तथा 3 राष्ट्रीय उद्यान हैं।

भारत के प्रमुख उद्यान और अभयारण्य निम्नलिखित हैं–

1. काजीरंगा उद्यान, आसाम : यह गैण्डा तथा हाथी के लिये है।
2. जिम कार्बेट राष्ट्रीय उद्यान नैनीताल : बाघ व हाथी के लिये है।
3. कान्हा राष्ट्रीय उद्यान, बालाघाट, मध्य प्रदेश : बाघ तथा जंगली कुत्तों के लिये।
4. अन्नामलाई अभयारण्य, तमिलनाडू : सिंह, बन्दर, जंगली सांड के लिये।
5. डाचीग्राम राष्ट्रीय उद्यान, श्रीनगर जम्मू एवं कश्मीर : काश्मीरी हिरण के लिये।
6. केवलादेव, भरतपुर राजस्थान : साईबेरियन पक्षी के लिये।
7. बान्दीपुर राष्ट्रीय उद्यान, मैसूर कर्नाटक : बाघ व हाथी के लिये।
8. गिर राष्ट्रीय उद्यान, जूनागढ़ गुजरात : सिंह तथा जंगली गधों के लिये।
9. चिल्का झील, उड़ीसा : खारे पानी के प्रवासी पक्षियों के लिये।
10. काचेंगजंगा राष्ट्रीय उद्यान, गंगटोक सिक्किम : वफाती तेन्दुओं के लिये।
11. केलामेरू पक्षी अभयारण्य, आन्ध्रप्रदेश : पेलिकन व समुद्री पक्षी के लिये।
12. सलीमअली राष्ट्रीय उद्यान, जम्मू कश्मीर : पक्षी तथा डीपों के लिये।
13. नन्दन कानन उड़ीसा : सफेद बाघ व पैंगोलिन के लिये।
14. जंगली गधा अभयारण्य, कच्छ का रन : जंगली गधा, भेड़िया, नील गाय।
15. विक्रमशिला उद्यान, बिहार : गंगा डाल्फिन के लिये।
16. पेरियार अभयारण्य, केरल : बाघ, हाथी, सूअर, तेन्दुआ।
17. पलामू अभयारण्य, झारखंड : बाघ, हाथी, चीता, तेन्दुआ।
18. चन्द्रप्रभा अभयारण्य, उत्तर प्रदेश : बाघ, तेन्दुआ, भालू के लिये।
19. दूधवा राष्ट्रीय उद्यान, उत्तर प्रदेश : बाघ, तेन्दुआ, भालू।
20. हजारी बाग राष्ट्रीय उद्यान, झारखंड : बाघ, तेन्दुआ, सांभर के लिये।

4-4-8 जैव विविधता की आवश्यकता

भारत में लगभग सभी तरह की जलवायु पायी जाती है तथा अति सुन्दर वनस्पति तथा जीव पाये जाते हैं। इनका आर्थिक महत्त्व भी अत्यधिक है। मुख्य उपयोगी क्षेत्र जिनमें जैव विविधता अति आवश्यक है निम्न हैं–

4.4.8.1. पारिस्थिति कारण

वन्य जीव शेर, भेड़िया, तेन्दुआ खाद्य श्रृंखला के सर्वोच्च या चरम उपभोक्ता होते हैं। यदि इनकी संख्या में कमी आती है तो निश्चित रूप से शाकाहारी प्राणियों की संख्या को बढ़ने की संभावना प्रबल हो जायेगी जो कि कालांतर में अधिक वनस्पति का खाद्य के रूप में उपभोग करने लगेगीं जिसमें पारिस्थितिकी

तंत्र में असंतुलन की स्थिति हो सकती है। अतः विभिन्न पारिस्थितिकी तंत्र को सुचारू रखने के लिए जैव विविधता अति महत्त्वपूर्ण है।

4.4.8.2. वंशानुगत कारण

कुछ प्रजातियों में किसी रोग से लड़ने की विशिष्ट क्षमता पाई जाती है। कुछ ताप की विषम परिस्थिति को सहन कर सकती है किंतु कुछ उत्पादन नहीं देती हैं ऐसे प्राणियों, वनस्पतियों की प्रजातियों से जीन की प्राप्ति कर अच्छे उत्पादन देने वाली प्रजातियों में सुधार किया जा सकता है तथा एक अच्छी रोग प्रतिरोधक एवं उच्च उत्पादन देने वाली प्रजाति प्राप्त की जा सकती है। उदाहरणार्थ आलू की किस्में, तथा मुर्गी पालन इसके लिए जैव विविधता का संरक्षण किया जाना आवश्यक है।

4.4.8.3. सौन्दर्य सम्बन्धी कारण

मानव स्वभाव को मधुर रखने के लिए मनोरंजन तथा शांति की आवश्यकता होती है। कुछ पलों के लिए परेशानियों से हटकर शांति के साथ मनोरंजन के लिए मानव है। कुछ पलों के लिए परेशानियों से हट कर शांति के साथ मनोरंजन के लिए मानव एक्वेरियम बनाता है, सुन्दर पक्षियों के कलरव को एवं उनके क्रियाकलापों को देखता है तथा प्रसन्न होता है। इसके लिए भी जैव–विविधता का संरक्षण आवश्यक है।

4.4.8.4. आर्थिक कारण

वनस्पतियां हमारे देश की आर्थिक आय के बड़े साधन हैं। अफीम से बहुत सी औषधि बनती है। ऐसे अन्य औषध वनस्पति हैं जिनसे देश को आय होती है। इसको विवेकपूर्ण तरीके से उपयोग करें तो ये हमारे देश के लिए अन्य आय के स्रोत बन सकते हैं।

5. पर्यावरणीय समस्याएं और तृतीय विश्व

प्रतिदिन पत्र–पत्रिकाओं एवं संचार–माध्यमों से प्रकाशित एवं प्रसारित हो रहे समाचारों में विश्वव्यापी पारिस्थितिकी–संतुलन की समस्या को मानव के लिए गंभीर एवं चौकानेवाली बताया जा रहा है। तृतीय विश्व के राष्ट्र तो इस गंभीर समस्या की गिरफ्त में जकड़ ही गए हैं। समस्या के निदान एवं समाधान में जितना ध्यान आकर्षित करने की चेष्टा की जाती है, उतनी ही गंभीर एवं लाइलाज बनती जा रही है यह समस्या। जिस प्रकार दलदल में फंसा मनुष्य बाहर निकलने के लिए जितना जोर लगाता है उतना ही गहरा फंसता चला जाता है, ठीक यही स्थिति पर्यावरण–समस्या के बारे में भी बनी हुई है।

यद्यपि तृतीय विश्व के राष्ट्रों की तुलना में विकसित राष्ट्रों से पर्यावरण समस्या अपेक्षाकृत अधिक गंभीर है, फिर भी विकासशील देशों में इस समस्या के प्रति चेतना न होने के कारण इसने गंभीर रूप धारण कर लिया है। भारत जैसे देश को उदाहरण के रूप में लें, तो पाएंगे कि जहां अमेरिका का क्षेत्रफल हमारे देश से तीन गुना अधिक है, वहां जनसंख्या अमेरिका से तीन गुना अधिक हमारे देश में है। विकसित देश पर्यावरण शुद्ध रखने तथा जनसंख्या–वृद्धि न होने देने के प्रति सचेत हैं; जबकि भारत जैसे विकासशील देशों में अभी इस चेतना को जागृत करने की आवश्यकता बनी हुई है। यहां का आम नागरिक अभी भी न तो जनसंख्या को सीमित करने के प्रति कटिबद्ध है और न उसे पर्यावरण से होने वाले लाभ–हानियों का पूर्णतया ज्ञान ही है।

5-1 Hkkjr esa i;koj.kh; pukfr;k

भारत भौतिक, पारिस्थितिकी, सामाजिक, सांस्कृतिक और भाषात्मक विविधता की भूमि है। यहाँ 15 मुख्य भाषाएँ और 1652 स्थानीय भाषाएँ हैं जो इसकी सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक स्तर की विविधता को भिन्न इन्द्रधनुषी रंग प्रदान करती है। बढ़ती जनसंख्या तक एक बहुत बड़ी चुनौती है। 844 मिलियन जनसंख्या प्रत्येक वर्ष 2.11% पर बढ़ रही है। प्रत्येक वर्ष 17 मिलियन लोगों की बढ़ती जनसंख्या इसकी

प्राकृतिक सम्पदाओं पर दबाव डालती है और विकास के लाभें को कम करती है। हमारे सामने सबसे बड़ी चुनौती जनसंख्या वृद्धि को सीमित करना है। यह नहीं है कि जनसंख्या नियंत्रण स्वतः विकास करेगा, परन्तु विकास जनसंख्या वृद्धि दरों में ह्रास करेगा। इसके लिए महिलाओं के विकास की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए, महिलाओं में साक्षरता जनसंख्या नियंत्रण में बहुत उपयोगी है। जनसंख्या, गरीबी और पर्यावरण परस्पर सम्बन्धित हैं। भारत प्रायः गरीब लोगों से समृद्ध भूमि है। गरीबी और पर्यावरण निम्नीकरण के बीच संधि कठिनता से अति–दृढ़ हो सकती है। यह मुख्य मुद्दा और सबसे बड़ी चुनौती है। हमारे देश में अधिक लोग अभी अधिकतम देश की प्राकृतिक सम्पदाओं– खाद्य, ईंधन, आवास और चारे की मुख्य आवश्यकताओं के लिए निर्भर करते हैं। यहाँ लोग लगभग 40% अभी भी गरीबी रेखा के नीचे हैं। पर्यावरणीय निम्नीकरण ने गरीबों को बुरी तरह प्रभावित किया जो उनकी तात्कालिक परिवेश की सम्पदाओं पर निर्भर करते हैं। इस प्रकार गरीबी की चुनौती और पर्यावरणीय निम्नीकरण की चुनौती दो अलग–अलग चुनौतियाँ नहीं हैं, बल्कि एक ही चुनौती के दो पहलू हैं। गरीबी और आवश्यकता सबसे बड़े दूषित करने वाले हैं। गरीबी और जनसंख्या वृद्धि के बीच का सम्बन्ध अब अच्छी तरह से समझ सकते हैं। यह विस्तृत रूप से पहचान लिया है कि जनसंख्या वृद्धि अनिवार्यता से गरीबी का फलन है। अत्यधिक गरीब के लिए प्रत्येक बच्चा कमाऊँ और सहायक है और विश्व सम्बन्ध उनके लिए थोड़ी अनुरूपता हेतु रखते हैं।

अन्य चुनौती है पर्यावरण को क्षति पहुँचाए बिना कृषि वृद्धि प्रतिपालित करना और वृद्धित करना। उच्च–उत्पादिज जातियों के परिणामस्वरूप मृदा स्वास्थ्य कठिनाइयाँ होती हैं जैसे पोषक हीनता, जैविक पदार्थों की कमी, मृदा लवणता, और मृदा के भौतिक संरचना की क्षति। मृदा की रासायनिक निवेश के लिए आवश्यकता 1960 में 1.9 किग्रा प्रति हैक्टेयर से मध्य 80 तक 50 किग्रा प्रति हैक्टेयर से ज्यादा तक वृद्धित हुई। भूमि निम्नीकरण भारत के सामने बड़ी चुनौती है। भूमि के कुल 329 मिलियन हैक्टेयर का, यह आकलित है कि केवल 266 मिलियन हैक्टेयर उत्पादन के लिए विभवता रखता है। इसमें से, 143 मिलियन हैक्टेयर कृषि भूमि है और यह आकलित है कि 85 मिलियन हैक्टेयर का, 40 पूरी तरह अउत्पादित है। शेष 83 मिलियन हैक्टेयर वन्य भूमि की तरह वर्गीकृत है जिसका आधे से ज्यादा भिन्न कोटियों के लिए अनाच्छादित है। भारत में विश्व की सबसे ज्यादा पशु जनसंख्या है। ये पशुधन का 406 मिलियन व्यक्ति या पशु की इकाई 13 मिलियन हैक्टेयर, या प्रतिशत से कम भूमि पर आधारित होने चाहिए जो चरागाह की तरह वर्गीकृत हैं, जिसका अधिकतम अति चारित होता है। इस प्रकार, 266 मिलियन हैक्टयर में से लगभग 175 मिलियन हैक्टेयर या 66% भिन्न कोटियों तक निम्नीकृत है। भारत की भूमि सम्पदाओं का अपरदन से बचाना और पुनः स्थापन जटिलता से भूमि, जल और वनस्पति आवरण के प्रबंधन के लिए युक्तियाँ से संबंधित है। वन और कृषि मैदानों में गहरे संबंध हैं। वन आमतौर पर नदियों के लिए जल ग्रहण की तरह कार्य करते हैं। जल की बढ़ती माँग के साथ, बड़ी जल सिंचाई परियोजनाओं द्वारा ताकतवर नदियों को हार्नेस की योजनाएँ बनाई गई हैं। निश्चिततः ये वनों को निमग्न कर देंगे, स्थानीय लोगों का विस्थापित, वनस्पतिजात और प्राणिजात को क्षतिग्रस्त करेंगे और मैदानों में कृषि लाभ करेंगे। आज, नर्मदा, भागीरथी और अन्य किसी नदी पर इस प्रकार के बाँध राजनैतिक और वैज्ञानिक बहस के क्षेत्र बन गए हैं। यह वह मुद्दा है जो पर्यावरण और विकास के बीच संबंधों के बारे में बहुत कठिन प्रश्न उत्पन्न करता है और इनका उत्तर निकालना भारत के सम्मुख चुनौती है।

भारत में वन कई शताब्दी से कृषि और अन्य उपयोगों के दबाव के कारण सिकुड़ते जा रहे हैं। यह स्वतंत्रता के बाद जारी हुआ। बहुत बड़े क्षेत्रफल जो कभी हरे खड़े थे आज व्यर्थ भूमि बन चुके हैं। इन्हें फिर से वनस्पति आवरण के अंतर्गत लाना एक बड़ी चुनौती है। देशज लोगों की तरह पूरी विश्व में, जनजातीय समुदाय जो वन में रहते हैं वे पेड़ों और पक्षियों और प्राणियों का आदर करते हैं ये इनका निर्वाह करते हैं। वनों के प्रत्यानयन और संरक्षण में इन लोगों के रोल अब ज्यादा पहचाने गए हैं। चुनौती यह है कि वन्य विभाग का नया ज्ञान और हुनर स्थानीय समुदायों के परम्परागत ज्ञान और अनुभव का साथ समाकलन करने

की कोशिश की जाए और वनों के एक साथ प्रबंधन के लिए युक्तियाँ निकाली जाएँ। अन्य चुनौती पुनः अभिविन्यासी संस्थाओं, अभिवृत्ति और अवसंरचना की है जो उपनिवेशी काल के दौरान वस्तुतः आज की आवश्यकताओं और परिस्थितियों के साथ मेल खाने के लिए निर्मित किए गए थे। यह समपदा उपयोग प्रबन्ध, शिक्षा इत्यादि के लिए यह बदलाव भारत की परम्पराओं को ध्यान में रखते हुए लाना चाहिए। बदलाव आना चाहिए शिक्षा में, अभिवृत्ति में प्रशासनिक कार्यवाहियों में और संस्थाओं में, यह लोगों को प्रौद्योगिकी, सम्पदाओं और स्वयं विकास के देखने के नजरिए को प्रभावित करेगा।

मानव बस्तियाँ अन्य मुख्य कठिनाई है। बढ़ती हुई जनसंख्या और तीव्र नगरीकरण मानव बस्तियों पर अत्यधिक बोझ डाल सकता है। यद्यपि भारत ग्रामीण और कृषि प्रधान है, 27% भारतीय नगरीय क्षेत्रों में रहते हैं जो स्थिर पद में बड़ी संख्या ग्रहण करते हैं। इनमें से बड़ी संख्या नगरीय गरीब की है जो निम्नीकृत गंदी बस्तियों में रहते हैं। नगरीकरण और औद्योगीकरण पर्यावरणीय समस्याओं का मेजबान करते हैं जिसे शीघ्र ही ध्यान देने की आवश्यकता है। नगरीय भारतीयों की 30% से अधिक गंदी बस्तियों में रहते हैं। भारत के 3,245 कस्बों और शहरों में से, केवल 21 में अर्ध या पूर्ण मल व्यवस्था और मल व्यवस्था उपचार की सुगमताएँ हैं। तीव्र नगरीकरण के साथ लड़ना आज बहुत बड़ी चुनौती है। कई भारतीय शहरों ने कृषि क्षेत्रों में व्यापार नगर केन्द्रित करने शुरू कर दिए हैं। जैसे–जैसे यह प्रवृत्ति बढ़ी है वैसे–वैसे प्रदूषणकारी प्रौद्योगिकियों और कामचलाऊ सुगमताओं का प्रयोग बढ़ा है और उनके अपशिष्ट की अभिक्रिया की कोई व्यवस्था नहीं हैं। जिसके परिणामस्वरूप, कई शहर और औद्योगिक क्षेत्रों की पहचान की गई है जो वायु और जल प्रदूषण के संबंध में सबसे खराब हैं। यद्यपि देश में नियम चालू किए हैं उनका लागू करना इतना आसान नहीं है। इन नियमों को लागू करने के लिए आवश्यक है मजबूत सम्पदाओं, तकनीकी विशेषज्ञों राजनैतिक और सामाजिक इच्छा, लोगों में जागरूकता और सहायता की। अपशिष्ट से निपटने के लिए उद्योगों को नए उपकरण की आवश्यकता है। पुरानी वाली की जगह विस्तापित करने हेतु नई, साफ प्रौद्योगिकी की आवश्यकता है। मुख्यतः विकासशील देशों में यह कठिन विकल्प है।

ऊर्जा संकट भी एक मुख्य प्रश्न है। रूढ़ ऊर्जा स्रोतों, तापीय और जलविद्युत शक्ति का प्रसार करने हेतु काफी कुछ किया जा सकता है। परंतु अब भी हमें पर्यावरणीय साफ रूप में देश की ऊर्जा आवश्यकताओं को पूरा करना है।जैविविधता भी अतिशोषण और आवास विनाश के कारण गंभीर भय का सामना कर रही है और यह भी हमारे लिए बड़ी चुनौती बन गई है। भारत वह देश है जो जैवविविधता के सभी रूपों– पारिस्थितिक तंत्र, प्रजातियां और आनुवांशिकी में अद्वितीयतः समृद्ध हैं। भारत विश्व की महाविविधता जोन में से एक है और विश्व की लगभग सभी जीव–भौगोलिक जोन यहाँ निरूपित है। यह आकलित है कि प्राणियों की 75,000 प्रजातियां से अधिक और पादपों की 45,000 भारत में पाई जाती है।

यह कदाचित पक्षपातहीनता है कि विश्व का पहला अभिलिखित संरक्षण माप भारत में मुख्यतः वन्यजीवन के लिए, तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व में कानून बनाया गया। शहंशाह अशोका ने अपनी परोपकारिता सभी जीवित जन्तुओं तक विस्तृत की, उन्होंने वन्य प्राणियों और पक्षियों के लिए अस्पताल और आरक्षित स्थापित किए और अपना रक्षण कई प्रजातियां तक विस्तृत किया। सिर्फ शासक ही नहीं, बल्कि भारत के सामान्य लोग भी इस बपौती के रक्षण में जुटे हैं। इसका उदाहरण है विश्नोई सम्प्रदाय, का जिसे 15वीं शताब्दी के अंत में राजपूत ऋषि द्वारा स्थापित किया गया। विश्नोइयों ने जोर दिया सभी जीवन के लिए अहिंसा और आदर होना चाहिए। उन्होंने अपने क्षेत्रों में शिकार या पेड़ों को गिराने की आज्ञा नहीं दी। 1730 में, खेजड़ी गांव के विश्नोइयों ने अपने विश्वास की बड़ी कीमत चुकाई जब जोधपुर के महाराजा ने अपने आदमियों को उनके गाँव से टिम्बर लाने की आज्ञा दी। गाँव वालों ने पेड़ों को लकडहारे से बचाने के लिए गले लगाया, और उनमें से 363 अधिकतर औरतें और बच्चे जब तक राजा के आदमी छोड़ते उन्हें टुकड़े करके मार देते थे। यह परम्परा चलती रही। सामान्य लोगों से वन्यजीवन रक्षण के लिए 1973 का चिपको

आंदोलन, अपीको आंदोलन और अन्य समान आंदोलन हैं। पवित्र उपवन वह क्षेत्र है जो महत्त्वपूर्ण वनस्पति सम्पदाएँ हैं जो स्थान या क्षेत्र की मौलिक वनस्पति प्रजाति को प्रदर्शित करती है, जो प्राकृतिक रूप में बिना बाहरी बाधा के रक्षित की जाती हैं। जाति विविधता भी गंभीर संकट का सामना कर रही है। जूलाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, बॉटनीकल सर्वे ऑफ इंडिया और फॉरेस्ट सर्वे ऑफ इंडिया भारत की पादप और प्राणि विविधता का लेखन कर रहे हैं। आकलित 45,000 पादप जातियों में से 15,000 पुष्पी पादपों की लगभग 15,000 जातियाँ उल्लेखित हैं। अन्य वर्ग दर्शाते हैं, शैवाल 5000; लाइकेन 1600; कवक 20,000; ब्रायोफाइट 2700 और टेरीडोफाइट 600। प्राणियों की लगभग 75,000 जातियाँ हैं, जिसके अंतर्गत 50,000 कीट, 4000 मोलस्का, 2000 मछलियाँ, 140 एम्फीबियन, 420 रेप्टाइल, 1200 पक्षी और 340 स्तनधारी हैं, और शेष अकशेरुकी हैं। यह आकलित है कि आगे खोज लगभग 200,000 जातियों का घर है। कुल वर्णित जातियों में से कई, भारत तक स्थानिक हैं। बड़े प्राणियों में 79 स्तनधारी, 44 पक्षी, 15 रेप्टाइल और 3 एम्फीबियन आज आशंकित हैं और 1500 पादप जातियाँ संकटापन्न मानी जाती हैं। जाति के संरक्षण के लिए मुख्य युक्ति है– निरूपक पारिस्थितिक तंत्र में जीवनक्षम आवासों का रक्षण।

आनुवंशिक विविधता के संरक्षण को भी गंभीरता से लेना चाहिए क्योंकि बहुत जंगली आनुवंशिक पशुधन प्रकृति से विलुप्त होते जा रहे हैं। वन्यजीवन साथ ही एशियाई शेर, आनुवांशिक विविधता के हनन की समस्याओं का समना कर रहे हैं। रक्षित क्षेत्रों के जाल का विकास जनसंख्या को पार्थक्य कर रहा है और इस तरह एक समूह प्रजनन के दूसरे के साथ की संभावनाएँ कम हो रही हैं। इस प्रकार, यह कोशिशें की जानी चाहिए कि छोटी जनसंख्या के अंदर ही घटती आनुवंशिक विविधता की रोकथाम करने के लिए संकरण को टालना चाहिए।हमारे यहां प्रधान विशेषकों के लिए घरेलू प्रणी नस्ल पालने की पुरानी परम्परा है। इसके अंतर्गत आते हैं– पशु दुग्ध उत्पादन बढ़ाने पर जोर देने से, कुछ मौलिक पशु नस्लें विलुप्त के कगार पर हैं। इसी प्रकार, उच्च उत्पादित संकर पादप उपजातियाँ को स्थानीय ली गई घरेलू उपजातियों से पुनः स्थापित करना चाहिए। यह हमारी कृषि के लिए वास्तविक चुनौती है। भारत पादप और प्राणी जाति के अधिकतर आनुवंशिक पशुधन के उद्‌गम के लिए केन्द्र है। इसे संरक्षित और पुनः स्थापित करना चाहिए।

5-2 भारत और विश्व/भूमंडलीय मुद्दे

भारत ने शुरुआती सत्तर से, पर्यावरणीय समस्याओं से निपटने के लिए भूमंडलीय प्रयत्नों में सक्रियता से भाग लिया। श्रीमती इंदिरा गांधी ही एक ऐसी देश की अध्यक्षा थीं जिन्होंने 1972 में स्टाकहोम में मानवीय पर्यावरण पर हुई संयुक्त राष्ट्र सभा में भाग लिया। हमने इस सभा के सिद्धान्तों को पूरा बढ़ावा दिया। श्रीमती गांधी द्वारा इस सभा में इस बात पर भी जोर दिया कि विश्व के लिए पर्यावरणीय युक्ति के लक्ष्य का एकीकृत भाग है गरीबी को हटाना। गृह का भूमंडलीय नागरिकता मुद्दों तक ही प्रतिबंधित नहीं रह सकती, बल्कि पर्यावरण और विकास की साझेदारी और अंतराबंधित जिम्मेदारी पर प्रयुक्त हैं। विश्व समुदाय को भूमंडलीय विकास के मुद्दे को इस तरह संबोधित करना होगा कि हम पर्यावरणीय स्वस्थ यह बनाए। परंतु गरीबी की समस्या आज भी उतनी ही गंभीर है जितनी तब थी। अभी हाल ही में कोलंबिया में UNCTAD की मुक्त सभा में, यू.एन. सेक्रेटरी जनरल, बोटरोस धाली ने जोर देकर कहा गरीबी एक सबसे जरूरी मुद्दा है जिसका अंतर्राष्ट्रीय समुदाय सामना कर रहा है। विश्व स्तर पर विकास के लिए गरीबी हटाव का लक्ष्य है जिसे पूरा करना होगा यदि पर्यावरणीय समस्याओं से निपटना है।

समयानुसार भारत ने अनुभव किया कि पर्यावरण और विकास के मुद्दों से व्यवहार में अंतर्राष्ट्रीय समन्वय, द्विपक्षी और बहुपक्षी कार्यक्रमों और प्रादेशिक प्रारंभिक कदम कार्यवाही करने की आवश्यकता है। सरकार स्तर पर, पर्यावरण और वन मंत्रिमण्डल नोडल एजेन्सीज की तरह कार्य करता है अंतर्राष्ट्रीय एजेन्सियों जैसे UNEP, SACEP, IUCN, विश्व बैंक– FAO, UNDP SAARC और EEC से संबंधों के लिए। स्वतंत्र रूप से, भारत में NGOs ने भूमण्डलीय समन्वय और विचारों के आदान–प्रदान की ओर कई

पहल किये हैं।अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर इस प्रकार के मुद्दों के हमारे संबंधों के उदाहरण निम्नलिखित हैं जहां भारत–

- विएना सभा पर ओजोन परत के रक्षण के लिए, सहमति मार्च 1985। इस ढांचा के अंतर्गत ओजोन परत को अवक्षयित करने वाले तत्वों पर मॉनट्रियल प्रोटोकॉल को अपनाया सितम्बर 1987 में। CFC की रोकथाम के लिए प्रोटोकॉल को 1.1.1989 में कार्य में लाया गया। भारत को अभी इस पर हस्ताक्षर करने बाकी हैं, केवल लंदन संशोधन के पश्चात्।
- वन्य प्राणियों की प्रवासी जातियों के संरक्षण की प्रतिज्ञा पर 1979 में हस्ताक्षर किए। यह 1.11.1983 में कार्य में लाया गया। भारत और पहले वाला यू.एस.एस.आर. के बीच प्रवासी पक्षियों के रक्षा की सभा पर दोनों देशों द्वारा सहमति हुई और यह 1986 में कार्य में आया।
- तेल द्वारा समुद्र के प्रदूषण की रोकथाम के लिए अंतर्राष्ट्रीय परिपाटी हस्ताक्षरित 1954 (लंदन), तेल प्रदूषण क्षति जैसाकि शोधित है, के लिए सिविल उत्तरदायित्व, पर राष्ट्रीय परिपाटी 1969 (ब्रूसल्स), पोतों से प्रदूषण की रोक के लिए अंतर्राष्ट्रीय परिपाटी पर 1978 का प्रोटोहेकोल; समुद्र के कानून पर यू.एन. परिपाटी, 1982 (मॉनटेज खाड़ी); और मूलभूत अधिवेशन आपत्तिजनक अपशिष्टों और उनके प्रबंधन का एक दूसरे की सीमा से जाने पर के नियंत्रण पर था।
- अंटार्कटिका की परिपाटी हस्ताक्षरित; और अंटार्कटिका समझौते के अंतर्गत अंटार्कटिका को पर्यावरणीय रक्षा पर प्रोटोकाल पर ध्यान दिया।
- बहुपक्षीय संस्थाओं जैसे– विश्व बैंक, FAO, UNDP, UNIDO और EEC से और द्विपक्षीय आधार पर संयुक्त राज्य अमेरिका, पूर्व सोवियत संघ, जापान, कनाडा, स्वीडन, जर्मनी, नीदरलैण्ड, फ्रांस, नार्वे, आस्ट्रेलिया और अन्य से आर्थिक और तकनीकी सहायता प्राप्त की।
- भूमण्डलीय पर्यावरणीय मुद्दों को करने के लिए विकासशील देशों की दक्षिण सार्वजनिकरण कौशल विकसित करने के लिये प्रयत्न।

विकासशील देशों के सामने एक कठिन समस्या है। इसको अपने पर्यावरण को न्यूनतम क्षति पहुंचाकर अपना आर्थिक विकास प्राप्त करना होगा, केवल इस तरीके से ये विकास प्रतिपालित कर सकते हैं। हम अपने आर्थिक विकास के लिए प्रतिपालित एवं पर्यावरणीय मितव्यय विकास के लिए गंदे उद्योगीय रास्तों को त्याग कर देख रहे हैं। हमारे केन्द्र बिन्दु इस प्रकार हैं–

- हमारा सामान्य भविष्य केवल हमारी साझी जिम्मेदारी वर्तमान और भूतकाल के लिए अच्छी समझ से प्राप्त किया जा सकता है।
- सामान्य भविष्य है प्राकृतिक सम्पदाओं के प्रतिपालित उपयोग पर निर्भर करता अतः उत्तर को अति उपभोक्ता की पुरानी गलतियों को समझना होगा।
- साझी जिम्मेदारी का अर्थ है साझी लागत बजाय दान या मदद के। कोष बाध्यकारी बन गया।
- विकासशील देश किसी भी प्रक्रम में बराबर के भागीदार हैं पर्यावरणीय मुद्दों जैसे पर्यावरण और विकास।
- पर्यावरणीय मानकों और क्रियाविधि को पर्यावरणीय मुद्दों से व्यवहार करना चाहिए, इन्हें देश आधार पर देश द्वारा क्रियान्वित करने की आवश्यकता है।
- दक्षिण जैवविविधता में समृद्ध है। अत्यधिक आनुवंशिक सम्पदाएँ जो दक्षिण से इकट्ठे किए गए हैं वे उत्तर के पेटेन्ट हो गए हैं, जहां औषधि और कृषि में उत्पादों की श्रेणी उत्पन्न की जाती है। ये उत्पाद अब दक्षिण को विकसित विश्व की कम्पनियों द्वारा बेच दिए जाते हैं। क्यों धन उन देशों को नहीं दिया जा रहा है जहां से मौलिक आनुवंशिक सम्पदा प्राप्त की जाती है।

- जैवविविधता के मुद्दों को जैव प्रौद्योगिकी के सहभाजन, और R & D के परिणामों का सहभाजन और जैव उत्पादों से व्युत्पन्न व्यवसायिक लाभों के साथ समझना चाहिए। वर्तमान प्रबल तंत्र जिसे बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार के जो कि डंकल ड्राफ्ट में उल्लेखित है क्रियाविधि आवश्यक है। अनुसंधायकों को उपयोग की रोक के बिना प्रोत्सहित करना चाहिए जैसाकि IPR में उल्लेखित है।
- पर्यावरणीय मितव्यय प्रौद्योगिकी को बढ़ावा और उन्हें अधिक विस्तृत, सस्ता और आसान करने की आवश्यकता है।
- भारत ओजोन अवक्षय के संबंधों में साझेदार है। परंतु समस्या विकसित विश्व द्वारा उत्पन्न हुई है। हम प्रभावसीमा स्तर से बहुत नीचे हैं। दक्षिण में ब्ब्ै को बंद करने के वैकल्पिक तरीके कम महंगे होने चाहिए अंतर्राष्ट्रीय कोष भंडार के सहयोग से।
- भारत अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के साथ भूमण्डलीय कोष्णता में बराबर की साझेदारी करता है। किंतु, विकसित विश्व द्वारा, कुल उत्सर्जन दक्षिण के मुकाबले अत्यधिक है और इसलिए उत्तर को उत्सर्जन कम करने का प्रधान भार अवश्य उठाना चाहिए।

5-3 i;koj.k lqj{kk d; i;kl

इन प्रयत्नों को समन्वय के आगे बढ़ाने के लिए और भूमण्डली पर्यावरण मुद्दों से व्यवहार करने हेतु, विकासशील देशों में एक सामान्य युक्ति उत्पन्न करने के लिए 21 विकासशील देशों की अंतर्राष्ट्रीय बैठक का आयोजन भारत द्वारा नई दिल्ली में अप्रैल, 1990 में हुआ। इसी को आगे बढ़ाने के लिए, विकासशील देशों की मंत्रिमण्डली स्तरीय बैठक गणतंत्र चीन में बीजिंग में जून, 1991 में हुई, यह अपने प्रकार का विकासशील विश्व का प्रथम अधिवेशन था। इस बैठक में 41 भाग लेने वाले देशों ने घोषणा को अपनाया जो इन देशों की चिंताओं को स्पष्ट करती है। भारत ने 77 देशों के समूहों के समक्ष चिंता प्रकट करने में सक्रियता से भाग लिया। 1991 में जेनेवा में हुई प्रारंभिक समिति बैठक पर G77 की पहल पर पर्यावरण और विकास संयुक्त राष्ट्र बैठक, 1992 के एजेन्डे में कुछ विकास के चिंतन की केन्द्रियता पर जोर दिया। नेरोबी में फरवरी, 1992 में UNEP गवर्निंग सभा की विशेष सत्र पर पर्यावरण और वन्य राज्य मंत्री कमलनाथ द्वारा UNCED से पहले भारत का मत प्रस्तुत किया। उसने इस तरीके से सारांश किया ''यह सहयोग या मदद का प्रश्न नहीं है बल्कि विश्व भागिता का है कि वह हमारे ग्रह को स्वस्थ, सुरक्षित और अधिक उत्पादक बनाने की ओर कार्य करें'' यह वह पृष्ठभूमि है जिसके साथ भारत ने हाल ही में समाप्त हुई पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्रों की बैठक या अर्थ सम्मिट वो रीओ डि जेनीएरो, 2–14 जून, 1992 में हुई है उस तक पहुंचा है। अत्यधिक अभ्यास करने के पश्चात्, भारत ने पर्यावरण और विकास के मुद्दे पर प्रमाण तैयार किए जो कि देश के द्वारा सामना किए जाने वाली चुनौतियों और सरकार तथा NGOs द्वारा उन्हें पूरा करने के लिए किए जा रहे प्रयत्नों का प्रकाश है। UNCED-92 पर भारत के मत को शामिल करने वाले लिखित प्रमाण, संक्षिप्त में नीचे दिए गए हैं–

- UNCED पर बहस में ये मुद्दे शामिल किए जाने चाहिए, अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक स्थिरता की प्रकृति, व्यापार ढांचे, सहायक मुद्दे, अंतर्राष्ट्रीय कोषीय संस्थाओं की कार्यप्रणाली और संयुक्त राष्ट्र तंत्र को भी।
- बैठक निम्न से संबंधित मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित करेगी–
    - भूमि सम्पदाओं की रक्षा 'वनोन्मूलन' मृदा हनन; मरुस्थलीकरण; सूखा।
    - जैवविविधता का संरक्षण।
    - वातावरण की रक्षा– जलवायु परिवर्तन; ओजोन परत का अवक्षय; भूमण्डलीय कोष्णता, एक दूसरे की सीमा पर वायु प्रदूषण।

- अलवणजलीय संपदाओं का रक्षण।
- महासागरों, समुद्रों और तटीय क्षेत्रों की रक्षा और उचित उपयोग और उनकी जीवित सम्पदाओं का विकास।
- जैव प्रौद्योगिकी और आपत्तिजनक अपशिष्टों विषैले रसायनों का पर्यावरणीय स्वस्थ प्रबंधन।
- विषैले तत्वों और अपशिष्टों में गैरकानूनी वाहनों की रोक।
- जीवन और स्वास्थ्य की गुणवत्ता में सुधार।
- गरीबों की जीवनशैली और गरीबी हटाकर पर्यावरण निम्नीकरण रोककर कार्यप्रणाली में सुधार।
- विकासशील देशों द्वारा भोगी जा रही कोष और तकनीकी स्थानान्तरण की समस्याओं के उत्तर ढूंढने हेतु।

- **अर्थ चार्टर बनाना–** जिसमें कि मूल सिद्धान्त हों, व्यक्तियों और राष्ट्रों के आर्थिक और पर्यावरणीय स्वभाव के लिए एक 'सामान्य भविष्य' हेतु।इसे सभी राष्ट्रों और सभी लोगों के लिए एक साधारण कार्य करने की शैली की नियमावली की तरह देखा गया। भारत यह मानता है कि अर्थ चार्टर को प्रतिपालित विकास के सिद्धान्तों पर जोर देना चाहिए। इसे समानता के चिन्तन को पहचानना चाहिए। हम यह मानते हैं कि पुरानी या पिछली गलतियों को वर्तमान में सुधारना चाहिए, हम यह भी मानते हैं कि यह भविष्य की आवश्यकताओं के बारे में सोचने की जिम्मेदारी हमारी है। राजपत्र को नई प्रतिबन्धता के विन्यसन के विरुद्ध व्यापार पद्धतियों इत्यादि द्वारा सुरक्षा करनी चाहिए। यह भी पहचानना जाना चाहिए कि विकसित और विकासशील देशों की भिन्न–भिन्न पर्यावरणीय प्रबंध विकल्प और प्राथमिकताएँ हैं। राजपत्र को उन मुद्दों तक विस्तृत होना चाहिए जैसे अंतर्राष्ट्रीय व्यापार संबंध, प्रौद्योगिकी तक पहुंच और जीवनशैली में असमानताएँ जल प्रदूषण, भूमि निम्नीकरण और मरुस्थलीकरण, साथ ही साथ गरीबी को जड़ से उखाड़ना।
- **एजेन्डा 21–** अगले कुछ दशकों के दौरान पर्यावरण और अर्थव्यवस्था के संबंधों पर जो प्रभाव पड़ेगा उन सभी मुख्य क्षेत्रों में कार्य की योजना की अंतिम रूप रेखा।एजेण्डा में पर्यावरण और विकास क्रियाओं के लिए लक्ष्य और मूल्य आकलन के साथ कार्यप्रणाली कार्यक्रम दिया गया है। लक्ष्य सम्पदाओं की उपलब्धता और विकासशील देशों की प्रौद्योगिकियों को दूसरी जगह उपलब्ध कराने से जुड़ा होना चाहिए। कठिन प्रश्न होगा कि कितनी पूँजी दी जाए और किसके द्वारा दी जाए? अभी तक इस मुद्दे पर कोई समझौता नहीं हुआ है। भारत मजबूती से यह मानता है कि कोण देने वाली संस्थाएं या क्रियाविधियों गणतंत्रता से प्रशासित किया जाए और कुछ व्यक्तियों को प्रमुखता न दी जाए। हमें न तो निवहता न ही दान की जरूरत है। विकसित देशों को बाध्यकारी रूप से शामिल होने की आवश्यकता है न कि ऐच्छिक आधार पर।

भारत यह मानता है कि पद्धतियों या सिद्धान्तों को लागू करने का काम राष्ट्रीय स्तर पर होना चाहिए। उदाहरण के लिए, सम्पदाएँ जैसे वनों का व्यष्टि देश की राष्ट्रीय सम्पदा माना जाना चाहिए और उनका उपयोग सिर्फ उस देश के संबंध में होना चाहिए। मृदा और जल निम्नीकरण नियंत्रण, पारिस्थितिकी पुनरुदभवन इसमें शामिल है वनरोपण और व्यवसाय उत्पन्न करने के अन्य कार्यक्रमों को ज्यादा सार्वत्रिक बढ़ावा देने की आवश्यकता है।

5-3-1 i;koj.k vkj fodkl ij l;qDr jk"V cBd ¼vFk lfEeV] 1992½

वर्ष 1992 अंतर्राष्ट्रीय संबंधों और आर्थिक विकास में ग्लोबल एजेन्डा निर्धारण करने में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रहा है। यह UNCED या अर्थ सम्मिट ब्राजील की राजधानी, रीओ डी जेनीएरो में **3–14** जून, 1992 के बीच में विश्व साझेदारी स्तर पर पर्यावरण और विकास के बीच संबंध सुनिश्चित करने के लिए हुई।

यह विश्व नेताओं की ऐतिहासिक सबसे बड़ी बैठक थी जिसमें 170 देशों से अधिक के प्रतिनिधियों साथ ही राज्य और सरकार के 115 प्रधानों ने भाग लिया। 3 और 11 जून, 1992 के बीच मंत्रिमण्डलीय और कार्यालय स्तर पर बहस हुई, राज्य और सरकार के प्रधानों ने मतों का आदान प्रदान किया तथा घोषणाओं और प्रतिज्ञाओं पर 12 से 14 जून 1992 के बीच हस्ताक्षर किए अंतिम दिन, 14 जून, ब्राजीलियाई राष्ट्रपति, यू.एन. सेक्रेटरी जनरल और UNCED सेक्रेटरी जनरल, मोरीस एफ स्ट्रांग ने रीओ पर भाषण दिए।यू.एन. की श्रृंखलाबद्ध वार्ताओं का रीओ वास्तव में चरम सीमापर पहुंचना है। ये बैठकें अंतर्राष्ट्रीय समन्वय, ग्लोबल साझेदारी उत्पन्न करने के लिए जिम्मेदारी है और पवित्र विश्व में पर्यावरणीय आपदाओं और असंतुलन तथा असमानताओं से व्यवहार करने के लिए व्यवस्थित की गईं।

यह सोवियत संघ, संयुक्त राज्य अमेरिका और जापान मेंपचास और साठ के दशकों के दौरान हुई। वह पर्यावरणीय आपदाएँ हैं जिन्होंने पर्यावरणीय प्रदूषण के खतरों के बारे में जागरूकता विस्तृत की। पर्यावरणीय निम्नीकरण बिना रोकथाम के लगातार इस तक बढ़ता रहा की अब जीवन के लिए केवल एकतिहाई पृथ्वी सुरक्षित है। वायु जिसमें हम सांस लेते हैं वह विषैली गैसों से प्रदूषित है। जल जिसकी हमें जरूरत है या तो बहुत कम है एशिया और अफ्रीका की बड़ी जनसंख्या के लिए या संदूषित ये गरीबों में जो विश्व जनसंख्या का 80ः है में मारक बीमारियाँ उत्पन्न करता है। पृथ्वी स्थिरता से बढ़ती हुई जनसंख्या का भार बढ़ रहा है। यह 5.4 मिलियन को छू गया है जिसमें 93 मिलियन प्रति वर्ष जुड़ते हैं।

भूमण्डलीय पर्यावरण के बढ़ते निम्नीकरण के बारे में विश्व में जागरूकता और सामान्य चिंता बढ़ रही है। अधिकतर अवनति औद्योगिक देशों में उत्पादन और उपभोक्ता के प्रतिरूपों द्वारा होती है। विकासशील देश, जिनमें विश्व की जनसंख्या का 80ः है, पर्यावरण पर दुष्प्रभावों से बोझिल है। विश्व में असंतुलन और असमानताएं बहुत भयानक हैं। विश्व में 41 सबसे गरीब देशों में प्रति व्यक्ति आय ै+300 से कम है, जो तीक्ष्ण विपर्यास के +14500 पश्चिम में विकसित बाजार मुक्त अर्थव्यवस्था में है। जबकि विश्व की आय का 70ः उत्पादित और उपभोगिता पृथ्वी पर 15ः व्यक्तियों द्वारा होती है, एशिया अफ्रीका और लेटिन अमेरिका में अरब लोग पूरी तरह गरीबी और भूख में रहते हैं। कुछ समृद्ध देशों में बहु चैनल टीवी कार्यक्रम 24 घंटे चलते हैं परंतु 31 विकासशील देशों में टीवी सेवा नहीं हैं, और 34 गरीब देशों में, अभी भी एक दैनिक समाचार पत्र नहीं है। भूमि सम्पदाएं केवल 20ः की विश्व जनसंख्या द्वारा खा ली गई है, जबकि पृथ्वी केवल एक है।यह एक नई विश्व सहभागिता बनाता है औद्योगिक विकसित और विकासशील देशों में जीवन की आवश्यकताआं की पूर्ति के विकास के लिए। किंतु, विकास के दृष्टिकोण भिन्न हैं। विकासशील देशों ने पर्यावरणीय मुद्दों को पश्चिम और समृद्ध का विलास समझा, और उन्होंने गरीबी को मुख्य महत्त्व दिया। विकसित विश्व के लिए प्रदूषण और आनुवांशिक और प्राकृतिक सम्पदाओं के संरक्षण के क्षेत्र अधिक चिंतन के हैं।

यह इस पृष्ठभूमि में था कि पहली UN Conference on Human Environment स्टॉकहोम के वन में सम्पदाओं के ह्रास, खनिज सम्पत्ति, समुद्री जीवन और अन्य प्राकृतिक सम्पत्ति पर चिंता जाहिर करने हेतु, और साथ ही वायु और जल प्रदूषण की चिंता पर मत व्यक्त करने हेतु 5–10 जून, 1972 में हुई। श्रीमती इंदिरा गांधी ने इस बैठक में भाषण देते हुए भूमंडलीय स्तर पर पर्यावरण को विकास के साथ जोड़ने की आवश्यकता पर बल दिया। उन्होंने गरीबी को हमारे पर्यावरण का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रदूषक माना। इस बैठक पर संयुक्त राष्ट्रों का पर्यावरण कार्यक्रम की भी स्थापना हुई। यह ऐतिहासिक सभा थी स्टॉकहोम पर 1972 में जहाँ विश्व समुदाय एक बैनर सिर्फ एक पृथ्वी के अंतर्गत इकट्ठा हुआ और भविष्यवाणी की गई कि इस आशा के साथ ही हमस ब भागीदार हैं और यह अंतर्राष्ट्रीय समन्वय का नया युग। सार्वत्रिक सहकारिता परस्पर सम्बन्ध उत्पादन में निष्पक्षता और पर्यावरण रक्षण शुरू हो चुका है। इस प्रकार की आशाएँ स्टॉकहोम

घोषणा में प्रतिबिम्बित हुई जिसकी शुरूआत सभी लोगों के सहयोग से हुई 'वर्तमान तथा भावी पीढ़ियों के लिए पर्यावरण की रक्षा और सुधार की जिम्मेदारी संभालना।'

5.3.1.1 1972 (स्टॉकहोम) और 1992 (रीओ डी जेनीरो) का अंतराल

1983 में, UN General Assembly पर्यावरण पर विश्व कमीशन, नोर्वे प्रधानमंत्री श्रीमती ग्रोहारलेम ब्रंडलेट के प्रतिनिधित्व में 2000 के बाद विश्व पर्यावरण और विकस की अवस्था परीक्षण के लिए एक कमीशन बनाया। हमारा सामान्य भविष्य कमीशन की रिपोर्ट ने यह लिखा कि यदि हम इसी तरह अनियोजित विकास को संतत रखेंगे तो मानव भविष्य खतरे में है। कमीशन ने पर्यावरण को विकास के साथ एकीकृत करने की आवश्यकता पर जोर दिया।

विश्व पर्यावरण दिवस कीट में, UNEP की 1972–1992 पर्यावरण की अवस्था' के सारांश को एकत्रित किया, इसमें निम्नलिखित पर्यावरणीय मुद्दे शामिल हैं–

- ओजोन परत अवक्षय खराब हो गया है, जिससे त्वचा कैंसर, आँख मोतियाबिन्द किसी कमजोर बीमारी से टक्कर लेने की क्षमता मनुष्य में कमजोर हो जाना, और निम्न पादप उत्पादकता के खतरे हो गए हैं।
- भूमण्डल का गर्म होना, विश्व के समुद्र स्तर को बढ़ा रहा है, निम्न क्षेत्रों में बंगलादेश से यू.एस. पूर्वी सीबोर्ड तक में बाढ़ आ जाएगी, कई प्रदेशों में वृष्टि प्रतिरूपों को परिवर्तित करने और कम कृषि उत्पादन होना। केवल 1991 में, 5.7 मिलियन टन ब्2 का वातावरण में निकास हुआ।
- मानवीय क्रियाएं जैसे वनों का सफाया, अम्ल वर्षा, समुद्री प्रदूषण, कृषि रसायन और नगरीय विस्तारीकरण ने हमारी प्राकृतिक सम्पदाओं को नष्ट कर दिया है। जैवविविधता अब समूह विलुप्तता की बुरी लहर का मुख देख रही है।

5.3.1.2 देखभाल चिंता और साझेदारी

विश्व पर्यावरण दिवस 5 जून, 1992 पर डॉ. मुस्तफा के तोलबा, एक्जीक्यूटिव डायरेक्टर, UNEP ने कहा कि चिंता और साझेदारी 1992 का सीधा विषय है। इसके अनुसार, हम अब तक पर्यावरण और विकास पर हुए सर्वाधिक प्रयत्नों में केवल आधे रास्ते तक पहुंचे हैं। व्यक्तियों ने यह साबित कर दिया है वे पर्यावरणीय मुद्दों के बारे में गंभीरता से चिंता करते हैं। विश्व असमानता की हाल की परेशानी में विकासशील विश्व में तीसरा विश्व उधार मुद्दे, चीजों के मूल्य स्तर और क्षमता निर्माण में बड़ा रूपान्तरण हो रहा है, हमारे एक ही भविष्य के लिए आवश्यकता है ज्यादा जिम्मेदारियों की साझेदारी की। साझेदारी का अर्थ है–

1. चल रही विश्व अवस्था का परिवर्तन जिसमें औद्योगिक विश्व में बहुत कम विश्व की अत्यधिक सम्पदाओं का उपभोग करते और इससे प्रदूषण उत्पन्न करते हैं, जबकि अधिकतम कुछ भी उपभोग नहीं करते,
2. नई और अतिरिक्त आर्थिक सम्पदाएँ प्रदान करना। भूमण्डलीय समस्याओं का सामना करने के लिए और एक स्वस्थ तथा एकसमान भविष्य के लिए एक मार्ग तैयार करना, और
3. नई 'हरित' प्रौद्योगिकियाँ सुनिश्चित करना, जो विकसित विश्व में आकार ले रही हैं उन्हें सही, खरीदने योग्य तरीके से विकासशील देशों में मुहैया कराएँ।

पिछले 20 वर्षों में हमने, पर्यावरण कार्य योजनाओं, कंक्रीट एजेन्डा, समय सारिणी निर्धारण आवश्यक स्तर संरक्षण युक्तियाँ और विकासशील प्राथमिकताओं को अमल में लाने हेतु एक साथ मिलकर कार्य किया है। परंतु सफलता के लिए हमें विचारों, नैतिकताओं और जीवन के लिए सभी मूल आदर्शों को बांटना होगा।

हमने चिंता और साझेदारी को सुनिश्चित करने के लिए सिर्फ लड़ाई शुरू की है। 21वीं शताब्दी के लिये यह संतरी का संकेत वाक्य है।

5.3.1.3 जीवन का आधारभूत अधिकार

विकसित और विकासशील राष्ट्र जीने के अधिकार का दर्शन शास्त्र एक दूसरे से भिन्न है। विकसित विश्व के लिए, पूरी तरह परिकल्पनात्मक विचार, जीने के अधिकार का अर्थ है युद्ध के अधिकार की गैरहाजरी जैसे कि अहिंसा का अर्थ है हिंसा की गैरहाजिरी। विकासशील देशों के लिए, जीने के अधिकार का अर्थ न केवल युद्ध की गैर हाजरी है अपितु इसके आगे भी है। उनके लिए, जीने का अधिकार शांति के अधिकार से जुड़ा है। विकासशील राष्ट्रों की राय में जो इस समस्या का प्रयोगात्मक नजरिया लेते हैं, जन्म और मृत्यु अर्थात् सृष्टि और विनाश प्राकृतिक चक्र के भाग हैं। सृष्टि और विनाश के बीच में आता है जीवन का परीक्षण। यदि लाखों मनुष्य भूखे पेट, गंदे कपड़े और रोग से ग्रस्त होकर जिएंगे तो इन लोगों के लिए जीने के अधिकार का कोई अर्थ नहीं है। जब तक गरीबी और कुपोषणता रहेगी, बड़ी संख्या में लोगों तक की जरूरतें पूरी नहीं होंगी जैसे साफ पीने का पानी, भोजन इत्यादि, इनके लिए जीने के अधिकार को छीनना है। इसलिए किसी भी राष्ट्रीय तंत्र या भूमण्डलीय चलन या विधान के अनुसार जीने के अधिकार का अर्थ सिर्फ युद्ध द्वारा विनाश की गैरहाजरी नहीं है इसका अर्थ यह भी है कि जीवन के अपरदन की गैरहाजरी जीवन प्रतिपालन चीजों के इंकार द्वारा भी है। जीवन के अधिकार में शामिल है सभी जीवन और सभी जीव रूपों, मनुष्य, प्राणी, पादप और अन्य रूपों के अधिकार। इस प्रकार जीने के अधिकार का साकल्यवादी विचार लिया जाना चाहिये। जीने के अधिकार का यह तीसरा रहस्य सिर्फ तीसरे विश्व द्वारा पहचाना गया जिसके लिए विकसित लोग मुश्किल से जीवन की गुणवत्ता के बारे में सोचते हैं और चिंतित होते हैं– जीवन के पश्चिमी रीति का एक अन्य नाम। जीने के ढंग के स्तर में उद्धार पृथ्वी पर अन्य जीवन के मूल्य की कीमत पर नहीं होना चाहिए। पूंजीवादी, साम्यवादी और मिश्रित आर्थिक तंत्र सभी अर्थव्यवस्था की अधिकतम वृद्धि और उच्च उपभोक्ता समाज के समान आदर्शों की ओर बढ़ते जा रहे हैं।

UN General Assembly ने दिसम्बर 1989 में ब्रंटलैण्ड कमीशन की रिपोर्ट का जवाब देते हुए रीओ डी जेनेरो में जून 1992 में पर्यावरण और विकास से संबंधित मुद्दों पर अंतर्राष्ट्रीय बैठक बुलाने का निश्चय किया पृथ्वी ग्रह की रक्षा और भविष्य के लिए जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए विकास के लिए नई सार्वत्रिक साझेदारी के विषय के साथ। यह निश्चय किया गया कि न्छब्म्क राज्य और सरकार के नेतृत्व पर होगी। इसने अब तक की पहली 'अर्थ शिखर वार्ता' बनाई।

5.3.1.4 अर्थ सम्मिट पर हस्ताक्षरित घोषणाएँ पत्र तथा अधिवेशन

रीओ अर्थ सम्मिट 20वीं वार्षिकोत्सव स्टॉकहोम बैठक और UNEP की स्थापना का था। परिघटनाओं जैसे जलवायु परिवर्तन, जैवविविधता और प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्रों का संरक्षण जैसे वन की वैज्ञानिक समझ की आवश्यकता इस शिखर वार्ता का मुख्य विषय था, इस प्रकार का पहला जिसमें विश्व नेता शामिल थे पर्यावरण और विकास पर। राज्य और सरकार के मुख्य नेता रीओ ने एकत्रित हुए आखरी मौका पाकर कार्य योजना तैयार करने के लिए, जो भावी पीढ़ियों के लिए पृथ्वी ग्रह सुरक्षित करने हेतु विश्व साझेदारी पर आधारित हो।

घोषणाएं में निर्दिष्ट सिद्धांत जो पृथ्वी के पारिस्थितिक तंत्र के स्वास्थ्य और समाकलन के संरक्षण, परिरक्षण और पुनः स्थापन से जुड़े हैं। सभी देशों ने यह समझा कि यह एक मुख्य जिम्मेदारी है और इसलिए, राज्य और सरकार के सभी प्रमुखों द्वारा हस्ताक्षर किए गए। प्रलेख ने यह भी पहचाना कि 'प्रदूषणकारी की कीमत चुकानी होगी।' तीसरे विश्व ने यह अनुभव किया कि अत्यधिक पर्यावरणीय क्षति विकसित देशों द्वारा होती है उन्हें पर्यावरण साफ करने के लिए अपने कृति को सहन करना होगा। यह

आकलित है कि अब तक हुई क्षति से निपटने के लिए लगभग 625 अरब डालर मूल्य लगेगा और विकासशील देशों को पैसा देने के लिए नहीं कहा जाएगा क्योंकि वह यह नहीं झेल सकते। विकसित विश्व जिसका संयुक्त राज्य अमेरिका प्रतिनिधि है समान जिम्मेदारी की बात कर रहा है। इसके अलावा, 'अंतरात्मक जिम्मेदारी' शब्द का प्रलेख में समावेशन विकासशील देशों के लिए कामयाबी है। ड्राफ्ट का अंतिम मुख्य वाक्यांश है कि पृथ्वी के पारिस्थितिक तंत्र की रक्षा हेतु देशों की एक सामान्य परंतु विभेदित जिम्मेदारी होनी चाहिए।

अर्थ शिखर वार्ता पर मुख्य अवरोध थे संयुक्त राज्य अमेरिका और तीसरे विश्व के बीच वन परिरक्षा और धन मुद्दों पर भिन्नताएँ : कौन पर्यावरण साफ करने का मूल्य चुकाएगा और किन दशाओं के अंतर्गत? जलवायु परिवर्तन और जैवविविधता तथा वानिकी के सिद्धांतों की परिपाटियों पर अत्यधिक भिन्नता है विकसित विश्व मुख्यतः संयुक्त राज्य अमेरिका और विकासशील देशों, प्रतिनिधि भारत के बीच में। यह 42 लेखों वाली सभा मुख्यतः भूमण्डलीय ऊष्णता, ओजोन अवक्षय और जैवविविधता के संरक्षण से जुड़ती है। ट्रान्स बाउन्ड्री जल प्रदूषण के नियंत्रण का भी विधान है। विश्व में 200 से अधिक नदियाँ या झीलें दो या अधिक देशों द्वारा हिस्सेदार हैं। इन नौ की द्रोणियाँ अमेजन, लेक चद, डेन्यूब, मेक्कोंग, नीगर, नील, रीन, जाएरे और नाम्बेजी छः या अधिक देशों द्वारा साझेदारी है। ये नदियाँ मुख्यतः वाहित मल, औद्योगिक बहिःस्राव और कृषि वाह ले जाती है जिसमें रासायनिक उर्वरक और कीटनाशक भी शामिल हैं।

औद्योगिक देशों की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा निकलने वाली विषैली गैसें ग्रीन हाऊस प्रभाव का कारण है। ये CFC भूमण्डलीय ऊष्णता, अम्ल वर्षा, जल प्रदूषण, ओजोन अवक्षय और रासायनिक उर्वरकों के लिए जिम्मेदार हैं। विषैली गैसों जैसे CO_2 CFCs और हैलोन का लगभग 25% उत्सर्जन संयुक्त राज्यों में होता है, 14% EEC देशों, 11% जापान में और सिर्फ 3% भारत में। जापान और जर्मनी पिछले कुछ वर्षों से इन स्तरों को स्थिर करने के लिए प्रभावी कदम उठाए हैं।वास्तव में विश्व अब एक ध्रुव हो गया है, जलवायु परिवर्तन और जैवविविधता की परिपाटी पर देश तीन केम्पों में विभाजित है–

- संयुक्त राज्य अमेरिका स्पेक्ट्रम के एक ओर है ये जलवायु परिवर्तन पर सही है परंतु जैवविविधता प्रतिज्ञा पर हस्ताक्षर करने से इन्कार,
- जर्मनी द्वारा प्रतिनिधित्व EEC का अन्य कैम्प विकसित देशों की मूल दायित्व पर विकासशील राष्ट्रों द्वारा बढ़ावा और समर्थन दिया गया। विकासशील विश्व को पर्यावरणीय अनुकूल प्रौद्योगिकी और धन प्रदान करने की आवश्यकता पर किसी दान या सहायता की तरह नहीं, अपितु विषैली गैसों के उत्सर्जन के उच्च स्तरों द्वारा पर्यावरण प्रदूषण करने का ऋण चुकाने के लिये कुछ यूरोपीय देशों में मजबूत 'हरित' आंदोलन चला। इसमें जर्मनी और नोर्वे भी शामिल हैं उत्सर्जन स्तरों का कम करने के लिए। इस दल के अनुसार अंतर्राष्ट्रीय कानून विषैली गैसों जैसे CO_2 के उत्सर्जन स्तरों का कम तथा सीमित करने हेतु बनना चाहिए।
- तीसरी शक्ति, तीसरे विश्व देश, संख्यातः मजबूत समूह अपने अधिकारों पर बल दे रहा है कि विश्व के भावी विकास में बराबर साझेदारी की और प्रमुख सम्पन्न अधिकार अपनी प्राकृतिक सम्पदाओं, साथ ही वन को व्यवस्थित करने के लिए बिना अंतर्राष्ट्रीय तकनीकी पर्यवेक्षण के या वन पर भूमण्डलीय परिपाटी के होना चाहिए। विकसित देशों में विषैली गैसों के उत्सर्जन की उत्पत्ति और स्रोत हैं और ये इसके लिए शेष विश्व का ऋणी है। विकसित राष्ट्रों को विकासशील विश्व को इस विपत्ति से लड़ने के लिए उसी समय अतिरिक्त तथा नई आर्थिक सम्पदाएँ प्रदान करनी होगी। इस समूह ने नए विकसित देशों की नई पारिस्थितिकी विस्तारवाद का भी प्रतिरोध किया और भविष्य में पृथ्वी ग्रह बचाने के वास्ते उद्योगों का पारिस्थितिकीकरण करने का सिद्धान्त प्रेरित किया। इन देशों

ने वनों के रूप में बनाने से इंकार कर दिया है जो समुचित पर्यावरणीय प्रदूषकों को अवशोषित करता है।

भारत ने विकासशील राष्ट्रों के रक्षित करने के लिए नीति निर्धारण में सदस्यों पर प्रभाव डालने के लिये मजबूत प्रतिनिधि का कार्य किया। सार्क देशों की बैठक अप्रैल में नई दिल्ली में हुई, इसके पश्चात् क्वालालामपुर में 77 देशों की बैठक हुई इस अभ्यास का एक भाग है। जलवायु परिवर्तन और जैवविविधता पर दोनों अधिवेशन ने दी मूल माँगों को पहचाना जो भारत और वन्य विकासशील देशों द्वारा आगे रखी गई–

1. राष्ट्रों का उनकी प्राकृतिक सम्पदाओं पर सर्व–सत्ताधारी अधिकार है, और
2. इकसार विकास के लिए भू–विश्व साझेदारी के सिद्धांत का आदर होना चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रदूषणकारी इतनी सरलता से नहीं जा सकते हैं। उत्पादन और उपभोग का फिजूल खर्च करने वाले जीवन शैली के साथ नहीं रह सकते जो विकासशील देशों में लाखों व्यक्तियों की खाद्य, जल और स्वास्थ्य की आवश्यकताओं पर ट्रेम्पलिंग करते हैं।जलवायु परिवर्तन पर अधिवेशन का मलयेशिया को छोड़कर सभी देशों द्वारा हस्ताक्षरित हुए जिसमें यह पाया कि यह अधिक अस्पष्ट है कि ग्रीन हाऊस गैसों को कम करने में अधिक प्रभाव डालेगा। अधिवेशन का कोई निर्धारित लक्ष्य नहीं है।

जैवविविधता पर अधिवेशन में स्वीकार्य मूलपाठ पर सहमति से स्वीकार किया वर्ग सभी देशों का सोवरेन अधिकार है उसकी जैवविविधता पर सर्व–सत्ताधारी अधिकार है और इसके परिरक्षण तथा संरक्षण के लिए, कदम उठाने का दायित्व है। यह भी दिया गया है कि विकसित देशों का दायित्व है कि नई और अतिरिक्त धन विकासशील देशों को प्रदान करे ताकि संरक्षण योजनाएँ चलाई जा सकें। परंतु आनुवंशिकी सम्पदाओं और प्रौद्योगिकी के स्थानान्तरण की विकसित देशों से विकासशील देशों में मुहैया कराने को विधान ने अधिक विवाद उत्पन्न किया और यह वह मुख्य कारण है जिससे संयुक्त राज्य अमेरिका इस प्रलेख पर हस्ताक्षर करने को राजी नहीं है। सभी देशों ने साथ ही विकसित विश्व ने सिवाय, संयुक्त राज्य अमेरिका को छोड़कर इस अधिवेशन पर हस्ताक्षर किए। संयुक्त राज्य अमेरिका ने न केवल हस्ताक्षर करने से इंकार किया अपितु यह भी चाहता है कि तीसरे विश्व देशों को उनके वनों को विकसित और उपभोग सह–सिंक की तरह करें जो अमेरिकी विशिष्ट शब्दावली में उनके द्वारा उत्पादित अत्यधिक विषैली गैसों का उत्सर्जन और ग्रीनहाऊस प्रभाव अवशोषित करने हेतु। रसेल मिटर मियर अध्यक्ष, संरक्षण अंतर्राष्ट्रीय वाशिंगटन डिसी ने भी कहा 'जैवविविधता अधिवेशन अधिक महत्त्वपूर्ण है बजाय अन्य प्रलेख की शिखरवार्ता भूमण्डलीय ऊष्णता समझौता, क्योंकि जैवविविधता का ह्रास एक अपरिवर्तनीय प्रक्रम है। हमारे पास अन्य पर्यावरण आपदाओं से लड़ने के लिये प्रौद्योगिकियाँ हैं परंतु एक बार पादप या प्राणी की जाति का हनन होगा तो वह सदैव के लिए लुप्त होगा।' संयुक्त राज्य अमेरिका ने इस अधिवेशन पर पेटेन्ट कानूनों के लिए निर्मित डन्कल ड्राफ्ट के कारण और बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार के कारण हस्ताक्षर नहीं किए।

डन्कल ड्राफ्ट जो गैट का भाग है जिसमें एक मुश्त सौदा प्रस्तावित किया से निष्कर्ष निकलता है कि जिसमें उत्तर के औद्योगिक संगठन देशों ने पादप जातियों को भी पेटेन्ट करने का दावा किया है। यह हानि रहित मांग सेक्शन 5 के लेख में है, ये पेटेन्ट से सम्बन्ध रखता है, यदि इसे अपनाया जाए तो भारत और अन्य विकासशील देशों के लिए बुरे नतीजे होंगे। यदि इस प्रकार के पादप जातियों और पादप जीन को पेटेन्ट करने की आज्ञा दी जाएगी, तो हमारी अमूल्य आनुवंशिक सम्पदाओं का अधिकार पेटेन्ट धारकों के हाथों में चला जाएगा, मुख्यतः उत्तर की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथों में। यह इसके परिणामस्वरूप भारतीय विज्ञान और अनुसंधान का दम घुट जाएगा और स्थानीय प्रौद्योगिकी का निर्माण रुक जाएगा। इससे भी बुरा यह होगा, कि यह हमारी कृषि की नींव ही हिला देगा।इस ड्राफ्ट के जरिए विकसित देश इन आनुवंशिक

असम्पदाओं से न केवल अत्यधिक लाभ उठाएंगे अपितु पेटेन्ट द्वारा उन पर एकाधिकार स्थापित करेंगे। ड्राफ्ट के अनुसार, यदि नई प्रजाति का विकास बहुराष्ट्रीय कम्पनी के लिए कार्य कर रहे जैव प्रौद्योगिकियों से होती है। निम्न उत्पादक गेहूँ जाति से रोग नियंत्रक के लिए जीन का स्थानान्तरण अन्य जाति में उच्च उत्पादक और रोग सुग्राही में किया, फिर बहुराष्ट्रीय कम्पनी इस नई जाति को पेटेन्ट करने में सक्षम होगी। इसका अर्थ है नई गेहूँ प्रजाति बहुराष्ट्रीय कम्पनी का एकमात्र और अलग सम्पत्ति होगी। केवल इतना ही नहीं, पेटेन्ट प्रजाति की अगली पीढ़ी अर्थात् बीज भी पेटेन्ट परिरक्षण का विषय होगा। यदि यह उच्च उत्पादक गेहूँ प्रजाति किसी अन्य द्वारा उगाई जाएगी जैसे कि कनाडा में, और IARI में वैज्ञानिक नई दिल्ली, भारत इसे भारतीय रोग नियंत्रक गेहूँ से संकर करे इसकी उत्पादकता बढ़ाने हेतु, तो वह बिना एक पुष्ट शुल्क अदा किए, ऐसा नहीं कर सकते। यह सब करने के पश्चात् भी नई प्रजाति स्वतः कनाडा की सम्पत्ति हो जाएगी।

आनुवांशिक सम्पदाएँ जो औद्योगिक देशों में बहुराष्ट्रों द्वारा उपयुक्त एक्स सिट् संरक्षण द्वारा और पेटेन्ट हैं वो वास्तव में विकासशील देशों के किसानों की अधिकृत सम्पत्ति है। ये वो हैं जिन्होंने लगभग वनों में वन्य पादपों से खाद्य और नकदी फसल की सभी ज्ञात प्रजातियों का पता लगाया, ध्यान से निरीक्षण जनन और पीढ़ियों तक वरण करके किया। पादप प्रजातियों और आनुवंशिक सम्पदाओं पर अधिकार प्राप्त करने के लिए जो असल में किसी और की सम्पत्ति है, तीसरे विश्व की जो कि उत्तेजन के कारण बैलेटेन्ट एक्ट एक्ट है और यह तीसरे विश्व के किसानों के कार्यों के मूल्य पर आक्रमण, पूर्णतया छीना–झपटा हुआ माल है। अब तक आनुवंशिकी सम्पदाएँ जो उष्णकटिबंधीय और उपोष्ण क्षेत्रों में है, अर्थात् विकासशील देशों के सर्व सत्ताधारी प्रदेशों के भीतर, जिसे सुविधा से मनुष्य जाति का एक सामान्य बपौती की तरह माना जाता था और इसलिए सभी के लिए मुक्त रूप से प्राप्त है। जब ये उनकी रुचि पर खरा उतरा, विश्व ने हमारी आनुवंशिक सम्पदाओं को सामान्य बपौती घोषित कर दिया, जिससे कि वो हमारी जीन को उनकी अपनी जीन पीड़ित देशों में लाभकारी कृषि स्थापित करने के लिए हमें इसके लिए बिना कोई पैसा दिए। अब बड़ी कृषि व्यवस्था और मजबूत कृषि आधार स्थापित होने से, सामान्य बपौती के रीति का प्रतिवलित खोज गया जिससे कि विकसित देश कृषि, बीज उत्पादन, और जैव प्रौद्योगिकी पर पेटेन्ट द्वारा एकाधिकृत कर सके और हमारे लिए द्वार बंद कर दिए जिसका कि इस सम्पत्ति पर पहला अधिकार है। संयुक्त राज्य पेटेन्ट कानून 1980 तक जीवरूपों के पेटेन्ट को स्वीकृत नहीं देते। फिर प्रलाभी जैव प्रौद्योगिकी उद्योग के लाभों को प्राप्त करने हेतु, संयुक्त राज्य ने पेटेन्ट कानून बदलने शुरू कर दिए, उन्होंने स्वीकृति देनी शुरू कर दी उन उत्पादों के पेटेन्ट करने के लिए जो पुनर्योगज DNA तकनीक द्वारा उत्पन्न उत्पाद और साथ ही जीवाणु और पादप और अंततः 1988 में प्राणी को भी इसमें जोड़ दिया गया।

5.3.2 वानिकी पर अधिवेशन

मध्य यूरोप में अम्ल वर्षा के कारण बड़े पैमाने पर वनों का विनाश हुआ। अंतर्राष्ट्रीय वन्य अधिवेशन के मुद्दे पर काफी विवाद था, जिसमें अंतर्राष्ट्रीय कानूनी बंदिश करना सम्मिलित था। EEC द्वारा इस गोष्ठी का प्रस्ताव रखा गया जिसका जर्मनी ने प्रतिनिधित्व किया तथा संयुक्त राज्य अमेरिका ने सहमति जताई। EEC ने यह मत रखा कि रीओ शिखरवार्ता के पश्चात् दो वर्षों के भीतर वन के व्यापक प्रबंधन और संरक्षण पर विश्व एकमतता के लिए अंतर्राष्ट्रीय बंधन दायित्व होने चाहिए। पश्चिम और संयुक्त राज्य अमेरिका दोनों ने वनों को उद्योग से विषैले CO_2 प्रदूषक ग्रहण और अवशोषित करने वाला CO_2 कहा। संयुक्त राज्य अमेरिका का लक्ष्य था विकासशील देशों की प्राकृतिक सम्पदाओं को विश्वव्यापी करना जबकि अपने वनों को वह किसी भी तरीके से शोषित करे क्योंकि वह उसकी अपनी निजी सम्पत्ति है। भारत ने इसका विरोध किया और उसने किसी भी अंतर्राष्ट्रीय रूपरेखाओं को मानने से इंकार किया। अन्य विकासशील देशों मलयेशिया ने भी इस अधिवेशन का विरोध किया। उन्होंने यह निश्चय किया हमारे वन विकसित विश्व द्वारा खतरनाक अपशिष्ट डालने के लिए अब और आगे मैदानों की तरह प्राप्त नहीं होंगे। विकासशील देशों में औद्योगिक

विश्व के मुकाबले राष्ट्रीय सम्पत्ति है। एशिया, अफ्रीका और लेटिन अमेरिका में, वन करोड़ों जनजातियों के जीवन और संस्कृति का घर है। इन क्षेत्रों में वनों का प्रबंध विकसित देशों से भिन्न है। वनों की जलावयवी जोन में भी भिन्नताएँ हैं। विकसित विश्व ने सभी जोन के प्रबंध पर जोर दिया, जबकि विकासशील केवल उष्णकटिबंधीय वनों तक सीमित हैं। अधिवेशन पर सभी देशों ने हस्ताक्षर किये इससे वनों पर पहली विश्व एकमतता झलकती है। यह भी निश्चय किया गया कि वनों को अंतर्राष्ट्रीय समन्वयन के लिए नियमित कर निर्धारण के अंतर्गत रखा जाएगा।

5.3.3 एजेन्डा–21 (कार्य योजना)

यह कार्य योजना 21वीं शताब्दी के लिए है जो पर्यावरण और आर्थिक वृद्धि के सभी क्षेत्रों के लिये है। एजेन्डा में पर्यावरण और विकास के सभी क्षेत्रों में कार्यक्रम पर विचार करना, तथा लक्ष्यों और मूल्य आकलन शामिल हैं। लक्ष्य सम्पदाओं की उपलब्धता से जुड़ा होना चाहिए। प्रश्न यह उठता है कि कितना धन प्रदान किया जाए और किसके द्वारा तथा धन प्रदान करने के लिए क्या क्रियाविधि होनी चाहिए? परस्पर रुचि और आवश्यकताओं पर आधारित नई विश्वव्यापी साझेदारी के लिए ईमानदार कार्य योजना, एक जिसमें कि विकासशील देशों में प्रोत्साहन होना चाहिए और भूमण्डलीय पर्यावरण परीक्षण करने के लिए मिलकर कार्य करने के लिये तरीके होने चाहिए। इसमें 150 मद हैं जिसमें से नौ वित्तीय क्रियाविधि पर निर्भर हैं। UNCED के अनुसार इस शताब्दी के अंत तक इस कार्य योजना को लागू करने के लिए 625 बिलियन डालर की आवश्यकता होगी। परंतु विकासशील देश ये अनुभव करते हैं कि प्रतिपालित विकास के लिए उन्हें 'नई और अतिरिक्त' सम्पदाओं और आंकलित स्तरों से अधिक की आवश्यकता है।

वित्तीय क्रियाविधि कोष ज्यादा के संबंध में भारत ज्यादा स्पष्टवादी था। भारत, अन्य सार्क देशों और G77 देशों ने इस मुद्दे पर जोर दिया है कि विश्वव्यापी कोष ज्यादा पक्षपातरहित होना चाहिए, बिना दानदाता एक तरफा झुकाव के या बिना दानकर्ताओं के प्रभाव के मुख्य महत्त्व है कि नई क्रियाविधि ज्यादा प्रजातांत्रिक और पारदर्शी होनी चाहिए और UNCED को जीवन की आवश्यकताओं की प्रतिपालित विकास के लिए कार्यक्रम लागू करने हेतु विकासशील देशों से सहमत होना चाहिए। इस सिद्धान्त के आधार पर कि प्रदूषणकारी को कीमत चुकानी होगी, औद्योगिकी समृद्ध देशों की अपनी जिम्मेदारी होनी चाहिए। पर्यावरण निम्नीकरण के लिए, और उन्हें विकासशील देशों को वृद्धित मूल्य चुकाना चाहिए तथा साफ प्रौद्योगिकी को रियायती दरों पर इन्हें इनके यहां स्थानान्तरित करनी चाहिए जिससे कि वह अपनी सीमित सम्पदाओं को जो कि प्राथमिक रूप से गरीबी अपशमन योजनाओं में लगी है उन्हें हटाए बिना संशोधित तरीके से चलाने में समर्थ हो सके। अप्रैल में नई दिल्ली में सार्क देशों, और क्वालालाम्पुर में G-77 सभा में पहले के इन मूल मुद्दों पर पूर्ण रूप से सहमति हुई। जर्मनी और जापान भी सहमत हैं परंतु बड़े बहुराष्ट्रीय उद्योग के अत्यधिक आंतरिक दबाव के कारण संयुक्त राज्य अमेरिका इस प्रस्ताव से सहमत नहीं हुआ। 41 विकासशील देशों के मंत्रियों द्वारा हुई बिजिंग घोषणा आर्थिक प्रवाह बनाए रखने हेतु हरित कोष की स्थापना के लिए पहले बुलाई गई थी।

यह वह इतिहास था कि रीओ पर भूमण्डलीय पर्यावरण सुगमता के निर्धारण के लिए मध्यकालीन तरीके की तरह विकास के नए स्तर के लिए विकासशील देशों को धन प्रदान करने हेतु नया एजेन्डा–21 में जोड़ा गया। GEF की सदस्यता विश्वव्यापी होगी। नए और अतिरिक्त धनकोष समृद्ध उन्नत राष्ट्रों द्वारा प्रदान किए जाने चाहिए। सम्पदाओं के नए कुंड के प्रबंधन का प्रश्न ळम्थ् से जटिलता से जुड़ा था। विकासशील देशों से सुझाया कि यह दानकर्ता देशों द्वारा अधिकृत नहीं होना चाहिए अपितु प्रजातांत्रिक रूप से UNDP, UNEP और विश्व बैंक से व्यवस्थित होना चाहिए जिस पर सभी सहमत थे। विश्व बैंक अध्यक्ष, लेविस प्रेसटन को अंतर्राष्ट्रीय विकास संघ, बनाने के लिए बुलाया, विश्व बैंक की रियायती शाखा 1993–95 के दौरान अर्थ इन्क्रीमेन्ट। इन्होंने विकासशील विश्व को बढ़ावा दिया कि भूमण्डलीय पर्यारणीय

मुद्दों के आर्थिक मूल्यों में मुख्य जिम्मेदारी औद्योगिक देशों की है। श्रीमति ब्रंटलैंड ने भी इस प्रस्ताव को बढ़ावा दिया। उनके अनुसार ऋण सहायता विशेषकर निम्न–आय वाले देशों को दी जानी चाहिए। मोरिस एफ. स्ट्रांग ने भी इस बात को बढ़ावा दिया कि ऋण–सहायता उन्हें प्रतिपालित विकास हेतु संक्रमण के लिए नई और अतिरिक्त सम्पदाएँ प्रदान करेगी। भारत सम्पदाओं का प्रत्यक्ष प्रण और प्रवाह उत्तर से दक्षिण की ओर देखना चाहता है।

भारत भी ग्रह परिरक्षण कोष के लिए प्रस्ताव रख सकता है। विश्वव्यापी पर्यावरणीय कल्याणकारी प्रौद्योगिकी खरीदने के लिए तथा इसे मुफ्त में किसी भी देश को उपलब्ध करने के लिए, चाहे वह विकासशील या विकसित हो, जो इसे पाना चाहता हो। यह विचार सर्वप्रथम स्वर्गीय राजीव गांधी ने बेलग्रेड में गुट निरपेक्ष सभा में 1989 में रखा। PPF किसी UN आयोग द्वारा प्रचलित हो सकता है और योगदान जैसे UN सदस्यता राष्ट्रों द्वारा। PPF में साझेदारी किसी भी देश द्वारा की गई क्षति के समानुपात में होनी चाहिए। यह सुझाव रखा गया कि प्रत्येक राष्ट्र कम से कम 1% GDP का योगदान PPF में करे।

5-3-4 SACEP ट्रस्ट फंड

दक्षिण एशिया सहकारी पर्यावरण कार्यक्रम के नियंत्रण करने को अधिकृत परिषद् की दो दिन की सभा कोलम्बो में 21–22 सितम्बर 1992 में SACEP ट्रस्ट फंड स्थापित करने पर विचार करने हेतु हुई। SACEP सदस्य देश सिद्धान्त से सहमत हैं कि अंतर्राज्यीय पर्यावरणीय परियोजनाएं और कार्यक्रमों को आर्थिक सहायता देने के लिए ट्रस्ट फंड स्थापित करने चाहिए। यह निश्चय सार्कवार्ता के सामने रखा जाएगा जो ढाका में दिसम्बर 1992 में होगी। कोलम्बो में भारत, भूटान, बांग्लादेश और श्रीलंका मंत्रिमण्डलीय स्तर पर प्रतिनिधि थे।

वास्तव में इस प्रकार के प्रादेशिक सहकारिता का अभ्यास UNCED से जो रीओ डी जेनेरो में जून 1992 में हुई थी उससे पहले शुरू हो चुका था, और आगे UNCED के दौरान क्रिस्टलित हुआ और अब स्थिर हो गया, यह इससे निर्णय लिया गया जो आगे बढ़ने के लिए उत्साह दिखाया गया था। हमारे राज्य, पर्यावरण और वनों के मंत्रि, श्री कमलनाथ ने यह मत रखा कि ईमानदारी के साथ हम SACEP के संगठन और प्रकार्य में इसमें अच्छा योगदान कर सकते हैं। नियमित मुद्रा योगदान का मसला अभी हल होना शेष है। UNCED ने प्रतिपालित विकास पर यू.एन. कमीशन स्थापित करने हेतु पहले ही निश्चय कर लिया जिसमें उत्तर मजबूती से योगदान करेगा। ये SACEP ट्रस्ट फंड जैसी संकल्पना चालित कर सकता है। एक बार SACEP सदस्य देशों ने बीज धन में योगदान किया तो ट्रस्ट फंड आगे आया द्विपक्षीय और बहुपक्षीय विचित्र वित्तीय संस्थानों से सम्पर्क किया ताकि प्रादेशिक और द्विपक्षीय पर्यावरण परियोजनाएं लागू करने के लिए धन दिया जाये।

सभा ने समय–सीमा कार्यक्रम भी बनाए अगले चार वर्षों के लिए अंतर्राज्यीय विषयों पर कार्य करने हेतु जैसे हिमालय पारिस्थितिकी, नदी, जल, संरक्षण, समुद्रविज्ञान और जैव प्रौद्योगिकी। SACEP नियंत्रण करने को अधिकृत परिषद ने यह भी अनुभव किया कि प्रतिपादित विकास पर प्रस्तावित यू.एन. कमीशन अति शक्तिशाली होना चाहिए जिससे कि ये समृद्ध देशों से विकासशील देशों के लिए धन के प्रवाह पर नियंत्रण रख सकें। सबसे कठिन पर्यावरणीय मुद्दा था गरीब देशों का प्रभावशाली संतुलन पर्यावरण परिरक्षण की आवश्यकता के साथ तीव्र विकास होना चाहिए।

6- vH;kl iz'u

fuc/kkRed iz'u

1. पर्यावरण की सुरक्षा के लिए विश्व स्तर पर हुए मुख्य सम्मेलनों व कार्यक्रमों का संक्षिप्त परिचय दिजीए।

y?kRrjkRed i'u

1- भारत के संदर्भ में जैव विविधता व संरक्षण समझाइये।

2- वैश्विक वातावरण परिवर्तन से आप क्या समझते हैं?

vfry?kRrjkRed i'u

1. राश्ट्रीय जनसंख्या शिक्षा आयोजना का सूत्रपात कब हुआ?
   (a) 1979 (b) 1980
   (c) 1989 (d) 1969
2. विश्व के पारिस्थितिकी तंत्रो के संबंध में सूचनाएँ प्रदान करने वाली संख्या है–
   (a) SAGE (b) WHO
   (c) PAGE (d) IMF
3- निम्न में से कौनसे जीव नमीचुक्त घने जंगलों में पाए जाते हैं–
   (a) इयोपीयन जीव (b) मलायन
   (c) यूरोपीयन जीव (d) उपरोक्त सभी
4- खारे पानी के प्रवासी पक्षियों के लिए प्रसिद्ध चिल्का झील, किस राज्य में हैं?
   (a) राजस्थान (d) उपरोक्त सभी
   (c) महाराश्ट्र (d) तमिल नाडू
5- जैव विविधता की दृश्टि से भारत किस क्षेत्र में आता है?
   (a) इथोपियन क्षेत्र (b) आरिएन्टल क्षेत्र
   (c) ऑस्ट्रेलियन क्षेत्र (d) निआट्रापिक क्षेत्र
6- राजस्थान में कुल कितने वन जीव अभ्यारण है?
   (a) 20 (b) 18
   (c) 25 (d) 19
7- पौधों की प्रजातियों को पेटेन्ट करने का प्रस्ताव कौनसा है?
   (a) डन्कल ड्राफ्ट (b) अर्थ चार्टर
   (c) फजेन्टा– 2 (d) उपरोक्त में से कोई नहीं
8- जनसंख्या, – और – परस्पर सम्बन्धित है।
9- विश्व की – भूमि भारत में है जबकि विश्व की जनसंख्या का – प्रतिशत यहॉ है।
10- रेड़ डेटा बुक – द्वारा प्रकाशित है।

bdkbZ & 2
ekuo ikfjLFkfrdh

mís';

1. मानव पारिस्थितिकी की अवधारणा को जानना।
2. मनुश्य और पर्यावरण के अर्न्तर्संबध को समझना।
3. मानवीय क्रियाकलापों से हुए पर्यावरण ह्रास के स्वरूप का अध्ययन करना।

lajpuk

1. मानव पारिस्थैतिकी की अवधारणा
2. मानव–पर्यावरण सम्बन्ध : ऐतिहासिक परिवेश
3. मनुष्य पर्यावरण अंतर्सम्बन्ध
    - 3.1 मनुष्य प्रकृति सम्बन्ध
        - 3.1.1 आखेट और भोजन संग्रह काल
        - 3.1.2 पशुपालन एवं पशुचारण काल
        - 3.1.3 पौध पालन और कृषि युग
        - 3.1.4. विज्ञान, तकनीक और औद्योगिक काल
    - 3.2 मानवीय अनुक्रियायें और पर्यावरण
        - 3.2.1 आधारभूत आवश्यकतायें और पर्यावरण
        - 3.2.2 प्रमुख क्रिया–कलाप और पर्यावरण
        - 3.2.3 सामाजिक आवश्यकतायें और पर्यावरण
        - 3.2.4 उच्च आवश्यकतायें और पर्यावरण
        - 3.2.5 सौर मण्डलीय क्रियाकलाप और पर्यावरण
    - 3.3 पर्यावरण और मानवीय विकास
        - 3.3.1 पर्यावरण सुरक्षा और मानवीय विकास
        - 3.3.2 पर्यावरण का मानवीय विकास पर प्रभाव
        - 3.3.3 मानवीय विकास का पर्यावरण पर प्रभाव
        - 3.3.4 भारत में मानवीय विकास की बदलती स्थिति
4. पर्यावरण पर मनुश्य का प्रभाव
5. अभ्यास प्रश्न

1- ekuo ikfjLFkfrdh dh vo/kkj.kk

मानव जीवमण्डल का एक ऐसा घटक है जो विशिष्ट गुणों से सम्पन्न है। सभी जीवों के समान मनुष्य प्रकृति का उत्पादन है जो जन्म, बुद्धि, और मृत्यु की सीमाओं में आबद्ध है। लेकिन अन्य जीवों की तुलना में इसके जैवीय गुण कुछ भिन्न हैं। जीवमण्डल का यह एकमात्र प्राणी है जिसके पास पूर्ण विकसित मस्तिष्क, सुगठित शरीर और तकनीकी सुधार की क्षमता है। इन गुणों के कारण मनुष्य ने अपनी पारिस्थैतिकी में मनचाहा सुधार करके एक नई पारिस्थैतिकी को सृजित किया है जिसे मानवकृत पारिस्थैतिकी कहा जाता है। मनुष्य को छोड़कर जीवमण्डल के सभी जीवधारी अपने पर्यावरण के दास हैं। सभी जीव प्राकृतिक नियमों के अनुसार शारीरिक अनुकूलन कर अपनी जैवी क्रियाओं को स्थान, ऋतु एवं काल के संदर्भ में संपादित करते हैं। इन जीवों में केवल मनुष्य एक ऐसा जीव है जो पर्यावरण का कुछ हद तक अपने अनुकूल बनाकर आवश्यक ढंग से अपनी अनुक्रियायें संपादित करता है। इस प्रकार मनुष्य पर्यावरण का दास न होकर उसका स्वामी बनने का स्वप्न देखने लगा है। लेकिन यह सत्य है कि मनुष्य पर्यावरण से उत्पन्न हुआ है, अस्तु इसके आधारभूत जैविक गुणों पर प्रकृति का प्रभाव बना हुआ है। यही कारण है कि सारी उन्नति और तकनीकी विकास के बावजूद पर्यावरणीय प्रकोपों के सामने वह झुकने के लिये बाध्य है। प्रकृति विजय के आवेश में मानव समुदाय ने ऐसी गलतियों की है जिसके फलस्वरूप सभी जीवों का अस्तित्व खतरे में पड़ता नजर आ रहा है। अपने सम्पूर्ण सभ्यता काल में जबतक वह प्रकृति के साथ मित्रवत व्यवहार करता रहा है ऐसे संकट कदाचित ही आते रहे हैं। आज मानव पारिस्थैतिकी के सामने अनेक प्रश्न चिन्ह लगते जा रहे हैं। स्पष्ट है कि प्रकृति और मानव के सम्बन्ध में ऐसे बदलाव आये हैं जो प्रकृति की सहन सीमा का अतिक्रमण करते हैं। ऐसी दशा में यह आवश्यक है कि पर्यावरण और मनुष्य के बदलते अंतर्सम्बन्धों पर दृष्टिपात किया जाय।

2- ekuo&i;koj.k lEcU/k % ,frgkfld ifjos'k

मनुश्य की प्राकृतिक पर्यावरण के साथ दो तरफा भूमिका होती है। अर्थात् मनुश्य एक तरफ तो भौतिक पर्यावरण के जैविक संघटक का एक महत्त्वपूर्ण भाग तथा घटक है तो दूसरी तरफ वह पर्यावरण का एक महत्त्वपूर्ण कारक भी है। इस तरह मनुश्य प्राकृतिक पर्यावरण तंत्र को विभिन्न हैसियत से विभिन्न रूपों में प्रभावित करता है यथा–'जीवीय या भौतिक मनुश्य' के रूप में, 'सामाजिक मनुश्य' के रूप में तथा 'प्रौद्योगिक मानव' के रूप में। मनुश्य के सभी प्राकृतिक गुण यथा जन्म, वृद्धि, स्वास्थ्य, मृत्यु आदि प्राकृतिक पर्यावरण द्वारा उसी तरह प्रभावित तथा नियंत्रित होते हैं जैसे कि पर्यावरण के अन्य जीवों के प्राकृतिक गुण प्रभावित तथा नियंत्रित होते हैं। परंतु चूंकि मानव अन्य प्राणियों की तुलना में भाारीरिक एवं मानसिक स्तरों अतः प्रौद्योगिक स्तर पर भी सर्वाधिक विकसित प्राणी है अतः वह प्राकृतिक पर्यावरण को बड़े स्तर पर परिवर्तित करके अपने अनुकूल बनाने में समर्थ भी है। प्रारंभ में आदिमानव की भौतिक पर्यावरण की कार्यात्मकता में भूमिका दो तरह की होती थी– पाता तथा दाता की। अर्थात् मनुश्य भौतिक पर्यावरण से अन्य जीवों के समान संसाधन प्राप्त करता था तथा पर्यावरणीय संसाधनों में अपना योगदान भी करता था। इस तरह मानव संस्कृति के विकास के प्रथम चरण में मनुश्य भौतिक पर्यावरण का अन्य कारकों के समान एक कारक मात्र था परंतु जैसे–जैसे उसके समाज तथा उसकी संस्कृति के विकास के साथ उसकी बुद्धि, उसका कौशल तथा उसकी प्रौद्योगिकी विकसित होती गयी पर्यावरण के साथ उसकी भूमिका तथा सम्बन्ध में भी उत्तरोत्तर परिवर्तन होता गया। इस तरह यदि ऐतिहासिक परिवेश में देखा जाय तो मानव की प्राकृतिक पर्यावरण के साथ भूमिका प्रारंभ में पर्यावरण के कारक के रूप में थी, जो समय के साथ बदलती गयी यथा– पर्यावरणीय कारक–पर्यावरण का रूपान्तरणकर्त्ता–पर्यावरण का परिवर्तनकर्त्ता–तथ पर्यावरण का विध्वंसकर्त्ता। जो मानव प्रारंभ में प्रकृति का अंग तथा साझीदार था वहीं आगे चलकर उसका स्वामी बन बैठा। अतः मानव

एवं पर्यावरण के मध्य सहभागिता तथा परस्परावलम्बन का सम्बन्ध चरमरा गया और मानव प्राकृतिक पर्यावरण का कारक एवं पालक न होकर उसका विध्वंसक हो गया।

ज्ञातव्य है कि मानव–पर्यावरण के मध्य बदलते या बिगड़ते सम्बन्धों का मूल कारण मानव की प्रौद्योगिकी ही है क्योंकि इसी ने प्रागैतिहासिक काल से लेकर वर्तमान प्रगत औद्योगिक काल तक मानव–पर्यावरण सम्बन्धों में आमूल–चूल परिवर्तन किया है। वास्तव में प्रौद्योगिकी, चाहे वह अति पुरातन हो या वर्तमान समय की अत्यधिक आधुनिक एवं प्रगत हो, पर्यावरण में किसी न किसी प्रकार का परिवर्तन अवश्य करती है। स्मरणीय है कि मानव की धार्मिक विचारधारा तथा भौतिकवादी दृश्टिकोण ने भी मानव–पर्यावरण सम्बन्धों को बड़े पैमाने पर बदलने में अहम तथा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। अत्यधिक विकसित प्रौद्योगिकी तथा भौतिकवादी दृश्टिकोण के नशे में धुत्त आधुनिक 'प्रौद्योगिक मानव' ने अपने निहित स्वार्थों की पूर्ति के लिए प्राकृतिक पर्यावरण को बड़े पैमाने पर कुप्रभावित किया है तथा उसका विध्वंसात्मक कार्य अब भी अबाध गति से चल रहा है। परिणामस्वरूप न केवल पर्यावरण में बड़े पैमाने पर ह्रास तथा अवनयन हुआ है अपितु उसका अस्तित्व भी खतरे में पड़ गया है। यदि हम मानव–पर्यावरण के सम्बन्धों के ऐतिहासिक क्रमविकास पर दृश्टिपात करें तो स्पश्ट हो जाता है कि प्रागैतिहासिक काल में आदि मानव तथा पर्यावरण के मध्य मित्रवत सम्बन्ध अब भात्रुतापूर्ण सम्बन्ध में बदल गया है। मनुश्य के प्राकृतिक पर्यावरण के साथ सम्बन्धों में इतने व्यापक परिवर्तन के कारण भयंकर परिणाम वाली कई पर्यावरणीय समस्यायें पैदा हो गयी हैं। ज्ञातव्य है कि प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र/प्राकृतिक पर्यावरण में बाह्य परिवर्तनों को आत्मसात् करने की क्षमता होती है परंतु जब बाह्य परिवर्तन प्राकृतिक पर्यावरण की आत्मसात करने की क्षमता से अधिक हो जाते हैं तो पर्यावरण अवनयन प्रारंभ हो जाता है तथा दूरगामी प्रभाव वाली पर्यावरणीय समस्यायें पैदा हो जाती हैं। वर्तमान प्रौद्योगिक मानव द्वारा प्राकृतिक पर्यावरण में किये गये परिवर्तन उसकी सहन भाक्ति से कहीं अधिक हो गये हैं, अतः कई जानलेवा पर्यावरणीय समस्यायें मनुश्य को निगलने के लिए मुंह बाये खड़ी हो गयी हैं।

3- eu"; i;koj.k vr lEcU/k

मानव–पर्यावरण के अंतर्सम्बन्धों के विविध पक्षों का लेखा–जोखा भिन्न संदर्भों में अब तक किया गया है जिससे प्रकट होता है कि मनुष्य पर्यावरण का एक प्रमुख तत्त्व होने के साथ एक महत्त्वपूर्ण कारक भी है। अतः मानव प्रकृति के अंतर्सम्बन्धों की बदलती परिस्थितियों का मूल्यांकन ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में करने से वस्तुस्थिति को और स्पष्ट किया जा सकता है।

3-1 eu"; izÑfr lEcU/k

आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक मनुष्य प्रकृति के बदलते सम्बन्धों को चार चरणों में बांटा जा सकता है यथा–

- आखेट और भोजर संग्रह काल
- पशुपालन एवं पशुचारण काल
- पौधपालन एवं कृषि काल
- विज्ञान, तकनीक एवं औद्योगिक काल

इन युगों को मानव सभ्यता का युग भी कहा जा सकता है क्योंकि ये मानव प्रकृति के नये सम्बन्धों के प्रतीक हैं। मनुष्य की सभ्यता पर्यावरण सहयोग पर आधारित है। यही कारण है कि जब मानव–प्रकृति सम्बन्धों में किसी कारण दुराव आया तो वह सभ्यता खतरे में पड़ गई। पृथ्वी के धरातल पर मानवीय पराक्रम को प्रकृति के उत्पादन के रूप में जब तक देखा जाता है तब तक उस सभ्यता का विकास होता है और जब उसे इतर प्रकृति के रूप में देखा जाता है तब संकट की स्थिति उत्पन्न होती है।

3-1-1 vk[kV vkj Hkkstu lxg dky

इसे मानव सभ्यता का आदिकाल कहा जा सकता है जब अन्य जीवों के समान मनुष्य भी पूर्णतः प्रकृति पर आधारित था। आदिवासी मनुष्य अपने अस्तित्व के लिए वैसा ही आचरण करता था जैसा अन्य जीव करते थे। भोजन और विज्ञान की आवश्यकता को पूरा करने के लिये वह जंगली जानवरों का शिकार और फल–फूल का संग्रह तथा गुफाओं का सहारा लेता था। स्पष्ट है उस समय उनकी सीमित आवश्यकताओं को प्रकृति आसानी से पूरा कर देती थी। आदिवासियों की सीमित संख्या और सीमित आवश्यकता के कारण मानव–प्रकृति सम्बन्ध अति मधुर थे। उसके छोटे–मोटे विघटनकारी कार्यों को प्रकृति अपनी शक्ति और व्यवस्था से भरपाई कर देती थी। कह सकते हैं कि इस काल में मानव पारिस्थैतिकी पूर्णतः संतुलित थी क्योंकि प्रकृति के सभी घटक स्वाभाविक गुणवत्ता के तहत कार्यरत थे। इस काल में मानव की गुणवत्ता सामान्य पशुओं जैसी थी अर्थात् मनुष्य पर्यावरण का एक जैवीय घटक मात्र था। सर्वहारा उपभोक्ता के रूप में वह जितना फल–फूल का संग्रह और पशुओं का शिकार करता था प्रकृति उसे संतुलित कर लेती थी। अग्नि के आविष्कार के बाद उसके क्रिया–कलाप में बदलाव आया क्योंकि मांस पकाने के लिए वनस्पतियों का प्रयोग करने लगा। कभी–कभी उसकी गलती से जंगल में आग भी लगने लगी जिससे उसमें विनाश का बोध हुआ। कालांतर में वह आग लगाकर जंगल साफ करने लगा और हिंसक पशुओं को आग का भय दिखाकर अपनी रक्षा करने लगा। फिर भी उसका विनाशकारी प्रभाव बहुत सीमित था।

इस प्रकार मनुष्य प्रहला प्राणी है जिसने प्रकृति के इस उपादान को अपने वश में किया। स्पेन्सर ने इसे आदि मानव की सबसे बड़ी उपलब्धि कहा है।शिकार और फल–फूल एकत्र करने वाले मानव समूह की गतिशीलता अनिवार्य थी। फलतः एक स्थान पर अधिक देर न रहने के कारण इनका संघटनात्मक पक्ष इतना कमजोर था कि ये प्रकृति की व्यवस्था से समायोजन करने के लिए बाध्य थे।

3-1-2 i'kikyu ,oa i'kqpkj.k dky

पशुओं के शिकार के क्रम में दो स्थितियां आई होगी– पशुओं को जीवित पकड़ने की स्थिति में छोटे बच्चों को अगले दिनों के भोजन के लिए पालना तथा पशुओं को पकड़ने के बाद उससे दूध प्राप्त करने के लिए पालना। आदि मानव की इसी उत्कंठा और सुविधा ने पशुपालन को जन्म दिया होगा। शिकार में मदद करने के कारण कुत्ता मनुष्य का दोस्त बन गया। पशुओं के प्रति बढ़ता स्नेह और भोजन में सुविधा ने पशुचारण को जन्म दिया। आज भी मध्य एशिया के चरवाहे अपनी आवश्यकता की तीन चौथाई सामग्री भोजन, वस्त्र, मकान, हथियार, मनोरंजन, सुरक्षा, व्यापार आदि अपने पशुओं से प्राप्त करते हैं। अफ्रीका के मसाई और अरब के बद्दू आदिवासी पूर्णतः पशुपालन से जीवन–यापन करते हैं।

पशुपालन मानव का प्रथम ऐसा कार्य कहा जा सकता है जब वह पर्यावरण से संघर्ष शुरू किया होगा। पशुओं के लिए चारा, बाड़ा, और सुरक्षा प्रदान करने के लिए संसाधनों का दोहन शुरू हुआ। पशुओं की बढ़ती संख्या से जहां एक ओर प्राकृतिक स्रोतों पर बढ़ता बदल गया वहीं पशुधन की बढ़ती सम्पन्नता के साथ मानव जनसंख्या बढ़ती गई। लेकिन पशुओं के लिए चारा और पानी की तलाश में मानव का जीवन घुमक्कड़ बना रहा। इस अवधि में मानव–प्रकृति सम्बन्ध इस लिए मधुर बना रहा क्योंकि इस युग में भी मानव की आवश्यकतायें सीमित थी। इनके द्वारा प्रकृति के साधनों का जितना दोहन किया जाता था उसकी क्षतिपूर्ति आसानी से कर लेती थी।

3-1-3 ik/k ikyu vkj Ñf"k ;qx

पौध पालन का प्रारंभ कब हुआ यह विवाद का प्रश्न है। अधिकांश विद्वानों का विचार है कि प्राचीन काल में घुमक्कड़ चरवाहों एवं शिकारियों में मछुआरे ऐसे लोग थे जिन्हें नदी या झील के किनारे शिकार की आशा में अधिक देर रूकना पड़ता था। ऐसे ही मछुआरों के घर के पिछवाड़े जंगली फलों के बीज या ठंडल

धूरे पर उग आये होंगे जिन्हें पालने की ललक इनकी स्त्रियों में जगी होगी। यह पौध पालन का प्रारंभ हो सकता है। रोपित पौधों से भोजन की प्राप्ति स्थाई निवास का कारण बना होगा। इस प्रकार उत्तरोत्तर पौधों पर निर्भरता बढ़ती गई। खेती की कला में मानव–प्रकृति के सम्बन्धों को नया आयाम दिया क्योंकि खेती के लिये भूमि की प्राप्ति, कृषि कार्य में पशुओं का सहयोग, कृषकों के लिये स्थाई बस्तियां और उनके निर्माण के लिये विविध सामग्री, पशुओं के लिये बाड़ा और चारा, कृषि फसलों की सिंचाई के लिये सिंचन जल की सुविधा, कृषि उत्पादन के लिए भण्डारण की सुविधा, आवश्यकता की वस्तुओं का आपस में विनिमय और ऐसे ही अनेक कार्यों ने सामाजिक चेतना और संगठन के लिये प्रेरित किया होगा। इस अवस्था में मानव समाज की प्रकृति पर निर्भरता घट गई और वह नये स्तर पर अपने संबंधों को बनाने लगा। कृषि के लिये उपयुक्त क्षेत्रों का चुनाव मानव इतिहास की एक ऐसी घटना है जो इंगित करता है कि इसकी चयन क्षमता में गुणात्मक परिवर्तन आ गया था। विश्व की नदी घाटी सभ्यतायें इसका प्रमाण हैं।

कृषि काल में भरण–पोषण की बढ़ती सुविधा के कारण जहां एक ओर जलसंख्या की उत्तरोत्तर वृद्धि होती गयी वहीं दूसरी ओर जनसंख्या का विस्तार नये क्षेत्रों में होता गया। इस प्रक्रिया से जनभार वितरित होकर पारिस्थैतिकी को नया आयाम दिया। कृषि भूमि के लिये वन विनाश, सिंचाई के लिये बांधों का निर्माण, प्शुओं के लिये चारागाह का प्रबन्ध आबादी के लिये भूमि एवं साज–सामान, आने–जाने के लिये रास्ते का निर्माण और अन्य सांस्कृतिक कार्यों के लिये प्रबंध की प्रक्रिया में प्रकृति के साथ संघर्ष प्रारंभ हुआ। लेकिन इस युग तक विशाल पृथ्वकी के परिप्रेक्ष्य में आबादी इतनी कम थी कि इस छेड़–छाड़ को प्रकृति वरदारत करने में समर्थ थी। फलतः पर्यावरण अनुकूल बना रहा।

समाज के विकास के साथ मनुष्य की प्रकृति पर प्रहार करने की क्षमता का भी विकास हुआ। ''प्रकृति लाभ देती नहीं है, लाभ प्रकृति से लिया जाता है'' जैसी भावना से मनुष्य ने अपनी आवश्यकता के अनुसार प्रकृति का भरपूर उपयोग करना प्रारंभ किया। प्राकृतिक संसाधनों के भरपूर उपयोग के लिये तकनीकी सुधार होता गया जिससे उत्तरोत्तर उत्पादन में वृद्धि होती गई। अधिक उत्पादन से जनसंख्या का भरण पोषण आसान होता गया, फलतः जनसंख्या बढ़ती गई। औद्योगिक क्रांति से पूर्व जनसंख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही क्योंकि इस समय तक कृषि प्रधान देश सबसे अधिक जनसंख्या वाले हो गये थे। एशिया के कृषि प्रधान देश सबसे अधिक जनसंख्या पुंज बन चुके थे क्योंकि यहां की उपजाऊ जमीन, उपयुक्त जलवायु और सिंचाई के साधनों का उपयोग कृषि उपयोग कृषि उत्पादन के आधार थे। इनके अतिरिक्त अफ्रीका, दक्षिणी यूरोप और दोनों अमेरिका के कुछ अंचलों में कृषि का पर्याप्त विकास हो चुका था। इस काल की कृषि व्यवस्था मूलतः आजीविका प्रधान थी। फलतः कृषि उत्पादन और खपत में संतुलन था क्योंकि उत्पादनों का व्यापारिक महत्त्व केवल स्थानीय था। कृषि के लिए सीमित स्तर पर प्रकृति के साथ छेड़–छाड़ किया जाता था। फिर भी ऐसी परिस्थितियां बनने लगी थी जिससे स्थानीय पर्यावरण असंतुलित होने लगा होगा। परिवर्तनशील कृषि के लिये बड़े पैमाने पर वन विनाश, जो उस युग में शुरू हुआ आज तक कुछ क्षेत्रों में कायम है। कृषि के कारण बड़ी बस्तियां–नगर एवं ग्राम, यातायात के मार्ग, सामाजिक संगठन अस्तित्व में आये। इनका गहरा प्रभाव पर्यावरण के साथ मानव निर्मित प्राकृतिक पर्यावरण पर भी हुआ। यह मानव के पराक्रम का प्रतीक बनकर उभड़ा। इस युग को मानव–प्रकृति सम्बन्ध के संदर्भ में सहभागिता का युग कहा जा सकता है।

3.1.4. विज्ञान, तकनीक और औद्योगिक काल

उन्नीसवीं सदी के मध्य से एक साथ विज्ञान, तकनीक और औद्योगिक विकास का युग शुरू हुआ। इसके साथ–साथ नये अनुसंधान और विकास से तकनीकी क्रांति का एक क्रम शुरू हुआ जिससे वस्तु निर्माण, यातायात नगरीकरण कृषि, पशुपालन और मानव की जीवन–पद्धति को नया आयाम दिया। बढ़ते उत्पादन और सुख सुविधा के कारण जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ने लगी। इस बड़ी जनसंख्या के लिये

भोजन, वस्त्र, मकान आदि जुटाने के लिये वृहद पैमाने पर संसाधनों का दोहन शुरू हुआ। ऊर्जा के विविध साधनों–कोयला, तेल, बिजली, गैस ने मनुष्य को अपार शक्ति प्रदान कि। इस क्रांतिकारी क्रियाकलाप से एक नये पर्यावरण का सूत्रपात हुआ जिसे सांस्कृतिक पर्यावरण कहा गया। प्रकृति पर्यावरण के समानान्तर निर्मित मानवीय पर्यावरण इंगित करने लगा कि प्रकृति की निरंकुशता पर विजय पाई जा सकती है। इस मानसिकता के कारण मानव प्रकृति सम्बन्ध में दुराव आने लगा। प्रकृति के प्रति बढ़ती उदासीनता के कारण वन विनाश, खनिज दोहन, ऊर्जा उपयोग आदि कार्यों को करते समय यह भुला दिया गया कि प्रकृति के नियमों का उल्लंघन दुखदायी भी हो सकता है। औद्योगिक संस्कृति ने जो मानसिकता प्रदान की उससे कृषि और पशुपालन के कारण प्रकृति पर प्रहार बढ़ता गया। अधिक उत्पादन के लिये भूमि को इतना प्रयोग किया जाने लगा कि वह थकने लगी। लेकिन आधुनिकता के आवेश में उसे आराम देने के स्थान पर कृत्रिम साधनों से उत्पादन देने के लिये बाध्य किया गया। इस जोर–जबरदस्ती का कुफल जल्दी ही प्रकट होने लगा। मानव के तकनीकी विकास का अहंकार पर्यावरणीय समस्याओं के रूप में प्रकट होने लगा है जो उसके अस्तित्व के लिये खतरा बनता जा रहा है। विगत सौ सालों की तीव्र आर्थिक सामाजिक प्रगति ने प्रदूषण, प्राकृतिक प्रकोप और विविध सांस्कृतिक समस्याओं के घेरे में प्रदूषण, प्राकृतिक प्रकोप और विविध सांस्कृतिक समस्याओं के घेरे में ला खड़ी दिया है। अब सवाल यह उठ रहा है कि क्या हम इक्कीसवीं सदी झेल पायेंगे।

उपरोक्त तथ्यों के अवलोकन से स्पष्ट है कि वर्तमान समय में मानव प्रकृति सम्बन्ध दिनोंदिन बिगड़ता जा रहा है। यह एक बड़ी विडम्बना है कि विज्ञान और तकनीक में जहां हमने इतनी प्रगति की वहीं प्रकृति को व्यवस्थाओं से हम अनभिज्ञ रहे। वास्तव में हमारा भौतिकवादी दृष्टिकोण इसके लिये जिम्मेदार है। पहले यह विचारधारा प्रधान थी कि प्रकृति हमें अपना उपहार देती है जबकि अब यह विचारधारा प्रधान हो गई है कि प्रकृति से उपहार लिया जाता है। इसी बदले दृष्टिकोण के कारण मानव–प्रकृति सम्बन्धों में बिगाड़ आया है जिसका दुष्परिणाम मानवता के लिये प्रश्न चिन्ह बन गया है।

3-2 ekuoh; vufØ;k;sa vkj i;koj.k

आज विचारणीय प्रश्न यह है कि मानव के भविष्य की क्या संभावनायें हैं। यह एक सामान्य उक्ति है कि जहां चाह होती है वहां राह भी होती है। यदि मनुष्य के भविष्य का चित्र बनाया जाय तो दो संभावनायें प्रकट होती हैं–एक उज्ज्वल भविष्य की और दूसरी संकटमय भविष्य की। इन दोनों में निःसंदेह हम उज्ज्वल भविष्य का मार्ग पकड़ना चाहेंगे। लेकिन इसके साथ–साथ यह भी प्रश्न उभड़ता है कि क्या हम अपनी प्रगति के नाम पर अपनाये गये मार्ग में संशोधन कर सकेंगे? वास्तविकता यह है कि बीसवीं सदी की हमारी छलांग ने हमें इतना दिग्भ्रमित कर दिया है कि हम प्रकृति को मां का आसन न देकर दासी का व्यवहार देने लगे हैं। प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन और उसके साधनों के उपयोग के समय हम आवश्यक सावधानी बरतने की आदत छोड़ चुके हैं। इस संबंध में महान जर्मन भूगोल वेत्ता अलेक्जेण्डर वोन हम्बोल्टर (1889–1857) की याद बार–बार आ जाती है। उन्होंने प्रतिपादित किया था कि प्रकृति जड़ पदार्थ नहीं है, प्रकृति एक पवित्र देन है तथा पृथ्वी का आधारभूत बल है। प्राकृतिक विद्वानों का लक्ष्य विविधता में एकता को खोजना है। इनका लक्ष्य उस परमशक्ति की खोज है जिसमें सभी तथ्य एवं शक्तियां एक इकाई के रूप में प्रकट होती हैं।'' स्पष्ट है कि चेतावनी के बावजूद प्रकृति को जड़ मानने वालों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती गई और जब प्राकृतिक प्रकोपों ने हमें बाध्य कर दिया तो प्रकृति की वास्तविकता की ओर ध्यान गया। यह भी उललेखनीय है कि भारत की विचारधारा जो प्रकृति को मां मानकर हजारों साल तक जनमानस पर छायी रही है, आधुनिकता की दौड़ में दिल–दिमाग से ओस्ल हो गई है। फिर भी हम उतने दोषी नहीं है जितने पश्चिमी देशों के लोग। आज उनकी बढ़ती पर्यावरणीय समस्यायें विकट रूप लेती जा रही हैं। लेकिन हम भी उससे मुक्त नहीं हैं। कुछ समस्याओं का सम्बन्ध सम्पूर्ण मानवता से है। स्पष्ट है कि सम्पूर्ण मानव समाज एक

चौराहे पर आ खड़ा हुआ है। जहां यह निश्चित करना है कि आगे प्रकृति–मानव सम्बन्धों को क्या रूप दिया जाय।

मानव जाति दो पारिस्थैतिक व्यवस्था का निर्वाह करती है– प्राकृतिक पारिस्थैतिकी और सांस्कृतिक पारिस्थैतिकी। सांस्कृतिक पारिस्थैतिकी के प्रति इसका बढ़ता मोह और भौतिक पारिस्थैतिकी की उपेक्षा ने खतरनाक मोड़ ले लिया है। अपनी अनुक्रियाओं का विस्तार जिस रूप में मानव समाज कर रहा है उससे प्रकृति के विधान पंगु हो रहे हैं। अतः यह आवश्यक है कि भविष्य का मूल्यांकन मानवीय अनुक्रियाओं के संदर्भ में किया जाय क्योंकि मनुष्य के क्रियाकलाप की परिधि प्रकृति भी बनाती है।मानवीय अनुक्रियाओं को पांच समूहों में बांटा गया है–

- आधारभूत आवश्यकतायें– भोजन, वस्त्र, मकान, उपकरण और परिवहन।
- प्रमुख क्रियाकलाप– आखेट, पशुपालन, कृषि, उत्खनन, उद्योग, यातायात और परिवहन।
- सामाजिक आवश्यकतायें–समाज, धर्म, विज्ञान, सरकार और अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध।
- उच्च आवश्यकतायें– कला, शिक्षा, मनोरंजन और स्वास्थ्य।
- सौर मण्डलीय क्रियाकलाप–संचार उपग्रह, खोजी उपग्रह और शटल स्टेशन।

3-2-1 आधारभूत आवश्यकतायें और पर्यावरण

अपनी अनुक्रियाओं के संपादन में मनुष्य प्रकृति के घटकों– अजैविक एवं जैविक से अंतर्प्रक्रिया करता आ रहा है और आगे करना पड़ेगा क्योंकि अन्य जीवों के समान यह भी प्रकृति का उपादान है। अंतर यह है कि उसके पास विज्ञान और प्रविधि से निर्मित तकनीक है जिसका उपयोग वह अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए करता है। यहां विचारणीय प्रश्न यह है कि अनुक्रियाओं के संपादन से कौनसी चुनौतियां आने वाली हैं और उनके लिये क्या उपाय किया जा सकता है। आधारभूत आवश्यकताओं से संबंधित भविष्य की चुनौतियों में विश्व की बढ़ती जनसंख्या के लिये भोजन जुटाना सबसे बड़ी चुनौती है। इसके लिये केवल दो उपाय किये जा सकते हैं– पहला बढ़ती जनसंख्या पर अंकुश लगाना और दूसा खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाना। जनसंख्या पर अंकुश तभी संभव है जब इसे सामाजिक समस्या के रूप में स्वीकार किया जाय। विविध धर्म, विचार और आस्था के कारण जन्म दर को नियंत्रित करना कठिन प्रमाणित हो रहा है जबकि पौष्टिक आहार, सुख सुविधा और स्वास्थ्य सुविधाओं के विकास और विस्तार के द्वारा मृत्यु दर पर काफी हद तक नियंत्रण प्रभावी रहा है। ऐसी दशा में जनसंख्या की वृद्धि को रोकना एक कठिन कार्य है। लेकिन सद्प्रयासों का अच्छा परिणाम पश्चिमी देशों में देखने को मिला है जहां जनसंख्या वृद्धि को काफी हद तक नियंत्रित कर लिया गय है। लेकिन जनसंख्या पुंजों में (भारत, चीन आदि) अभी, इसमें सफलता नहीं मिल पाई है।

खाद्यान्नों का उत्पादन बढ़ाना समस्या समाधन का दूसरा पक्ष है। इसमें संदेह नहीं कि विश्व स्तर पर अभी कृषि के विस्तार और वृद्धि की बहुत संभावना है। भारत की भूमि अभी कई गुना कृषि उत्पादन के लिए सक्षम है। लेकिन कृषि भूमि के विस्तार की संभावना केवल कुछ देशों में है जहां कृषिगत भूमि का प्रतिशत कम है। यह सर्वविदित है कि पर्यावरणीय संतुलन के लिए एक तिहाई भूमि का जंगल के अंतर्गत होना आवश्यक है। ऐसी दशा में भारत जैसे देशों में वन विनाश कर भूमि को कृषि के अंतर्गत लाना भविष्य के प्रति खिलवाड़ है। कृषि की गहनता का अनुभव भी सुखदायी नहीं है। अधिक उत्पादन और फसलों के व्यावसायिकरण के लिए जिस ढंग से रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक और सिंचाई का प्रयोग हुआ है उससे मृदा, वनस्पति और जीव–जन्तुआं के प्रदूषण की घटना संकट के रूप में प्रकट हुई है। अतः भविष्य के लिए भोजन जुटाना एक समस्याग्रस्त कार्य है।

अधिक उत्पादन के लिए पौधों के वंशगुण में परिवर्तन, उन्नत किस्म के बीजों का प्रचलन, बौनी जातियों का विकास आदि कार्य भविष्य के सुख के आधार माने जा रहे हैं, लेकिन इसके साथ पर्यावरणीय और जैवीय समस्यायें भी संलग्न हैं। पौधों के वंशगुण सुधार के नाम पर पौधों के नैसर्गिक गुण को विनष्ट किया जा रहा है जिससे अनेक पौधें के विलुप्त होने का खतरा भी है। यदि नये किस्म के पौधों का समायोजन बिगड़ गया तो एक भयंकर संकट उपस्थित हो सकता है। अतः भोजन की समस्या का समाधान केवल प्रकृति के शोषण पर आधारित न होकर पर्यावरण के अनूकूल पारिस्थैतिकी तंत्र की गुणवत्ता के अनुसार होना चाहिए। हमें केवल जीवन की कामना नहीं करनी है अपितु एक सुव्यवस्थित सुखी जीवन की कामना करनी है। विकसित देश कम खाद्यान्न उत्पादित करते हुए भोजन की समस्या से परे हैं लेकिन जो पर्यावरणीय समस्यायें वहां उपस्थित हैं उससे जीवन की गुणवत्ता पर प्रश्न चिन्ह लग गया है। अतः सादा जीवन उच्च विचार की भावना पुनः जोर पकड़ सकती है। यह भी विचारणीय है कि जिन कृत्रिम उपायों से जनसंख्या नियंत्रण पश्चिमी देशों में किया जा रहा है उसका दूरगामी प्रभाव क्या होगा? गर्भनिरोधक औषधियों के अधिक प्रयोग से अनेक शारीरिक विकृतियां प्रकट होने लगी हैं अतः भविष्य में ऐसे उपायों की खोज आवश्यक है जिनसे स्वास्थ्य सम्बन्धी खतरे कम किये जा सकें।

वस्त्र मनुष्य की आधारभूत आवश्यकता है। छाल के वस्त्र से लेकर कृत्रिम धागों के वस्त्रों तक की कहानी सर्व ज्ञात है। वस्त्रों का विकास पर्यावरणीय स्थितियों के अनुसार मानव समाज ने किया है। औद्योगिक भौतिक संस्कृति के कारण विकसित कृत्रिम धागों का वस्त्र उष्णकटिबंधीय परिवेश में अपना कुप्रभाव प्रमाणित कर चुका है। इसके प्रयोग से चर्म रोगों की जो बाढ़ आई है उससे स्पष्ट है कि पर्यावरण के अनुसार ही वस्त्रों की गुणवत्ता स्वीकार्य है। मकान के निर्माण में तकनीकी विकास ने क्रांतिकारी परिवर्तन लाया है। शहरों की गगनचुम्बी अट्टालिकायें आज मनुष्य के कौशल और सम्पन्नता की प्रतीक हैं। इनके निर्माण से धरातलीय विस्तार के स्थान पर ऊर्ध्वाधर विस्तार निःसंदेह एक उपयोगी विकास है। ऐसे गृहों का विकास सबसे अधिक नगरों में हुआ है। यह सीमेन्ट, कांक्रीट, इस्पात और गृह निर्माण की तकनीकों के द्वारा संभव हुआ है। इन गृहों को जलवायु की विषमताओं से बचने के लिए ताप नियंत्रित भी किया जाता है। आज के नगर इन अट्टालिकाओं से पहचाने जा रहे हैं। इन गृहों की भौतिक सुविधा के कारण जिस रूप में नगर विस्तार हो रहे हैं वह इस शताब्दी की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। संयुक्त परिवार के टूटन और जनसंख्या वृद्धि के कारण घरों की मांग बढ़ती ही जा रही है। भारत के नगरों में उचित गृहों के अभाव में नगरों की एक बड़ी जनसंख्या मलिन बस्तियों और सड़कों के फुटपाथों पर गुजारा करने के लिए बाध्य है। यदि इन सभी के लिए समान लंबाई चौड़ाई के गृह बनाये जाय तो नगर का धरातलीय और ऊर्ध्वाधर विस्तार नगर की आकृति का ड्योढ़ा हो जायेगा। महानगरों की समस्याओं का लेखा–जोखा पहले अनेक संदर्भों में दिया जा चुका है। आबादी विशेषज्ञों का अनुमान है कि इक्कीसवीं सदी के मध्य तक इतनी आबादी बढ़ जायेगी कि सभी को मकान देना संभव नहीं होगा। फिर प्रश्न यह है कि आखिर इसका समाधान क्या है। जापान अपनी सीमित भूमि को अधिवासों के विस्तार से बचाना चाहता है, फलतः आवासों का निर्माण वह समुद्र तली पर करने की योजना बना रहा है। हालैण्ड के लोग बांध बनाकर समुद्र की भूमि छीनने की योजना बना रहे हैं। अमेरिका अंतरिक्ष में कालोनी बनाने की बात कर रहा है। और पर्यावरणवादी प्रकृति के नियमों के अनुसार गृह रचना की बात कर रहे हैं क्योंकि गृहों को ताप नियंत्रित करने के लिये ऊर्जा संकट और बढ़ सकता है। स्पष्ट है कि भविष्य में गृह निर्माण की रूपरेखा सुविचारित होनी चाहिए।

आदि काल में पत्थर के उपकरण से लेकर आज विविध प्रकार के उपकरणों की कहानी मनुष्य की प्रगति को इंगित करती है। जीवन के सभी क्षेत्रों में आधुनिक उपकरणों से क्रांतिकारी परिवर्तन आया है चाहे वह कृषि का क्षेत्र हो या उद्योग का। इन उपकरणों के निर्माण और उपयोग की तकनीक दिनोंदिन जटिल होती जा रही है। इस जटिल प्रणली के विकास में एक ओर जहां मनुष्य की कार्य शक्ति में वृद्धि हो रही है वहीं मानव उपकरणों का गुलाम होता जा रहा है। आधुनिक समाज उपकरण प्रधान है मानव प्रधान नहीं, तो

गलत नहीं होगा। इन उपकरणों के बल पर कभी–कभी मानव समाज राक्षसी रूख अपनाकर प्रकृति पर प्रहार करने लगता है। उदाहरण के लिए खानों से खनिज निकालते समय बारूदी विस्फोट का व्यापक प्रभाव पड़ता है। पर्यावरण को असंतुलित बनाने में आधुनिक उपकरणों से सुसज्जित मानव भयंकर जीव प्रमाणित हो रहा है।

सवारी और माल की ढुलाई के लिए पशुशक्ति से लेकर ऊर्जा शक्ति–आधारित साधनों की कहानी भी कम रोचक नहीं है। आज भी एक साथ इनका उपयोग देखा जा सकता है। ऊर्जा शक्ति से चलने वाले वाहन मनुष्य की उन्नति के प्रतीक बन गये हैं। आज मोटर गाड़ियों की संख्या से आर्थिक–सामाजिक विकास मापा जा रहा है। हवाई यात्रा प्रतिष्ठा की प्रतीक है। लेकिन ऊर्जा संकट और प्रदूषण का सीधा संबंध परिवहन के साधनों से है। यदि यही दशा रही तो भविष्य में इन साधनों के उपयोग के संबंध में सोचना पड़ेगा।

3.2.2 प्रमुख क्रिया–कलाप और पर्यावरण

मनुष्य की श्रेष्ठता इस नाते भी है कि उसमें सामाजिक चेतना, सामाजिक संगठन और सामूहिक दायित्व की अद्‌भूत क्षमता है। आदि युग से लेकर आधुनिक युग तक सामाजिक आवश्यकता में उत्तरोत्तर वृद्धि होती रही है। आज भी आदिवासी समाज और आधुनिक समाज की आवश्यकताओं में बहुत अंतर पाया जाता है। विद्वानों का मानना है कि सामाजिक आवश्यकता की बढ़ोतरी ही मानव सभ्यता के प्रगति का आधार है। आज भी कम आवश्यकता आधारित समाज असभ्य समझा जाता है। इन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए मानव को विविध प्रकार के उद्यम करने पड़ते हैं या प्रकृति से अंतर्प्रक्रिया करनी पड़ती है। आखेट और पशुपालन में प्रकृति से सीधी अंतर्प्रक्रिया होती है। फलतः प्रकृतिदत्त सुविधाओं पर ही निर्भर रहना पड़ता है। इसमें मानव–प्रकृति सम्बन्ध मधुर बना रहता है। कृषि के लिए प्रकृति पर निर्भरता कम करनी पड़ती है क्योंकि अधिक उत्पादन के लिए अनेक मानवीय उपायों को अपनाना पड़ता है जो प्रकृति के नियम के विरूद्ध हो सकते हैं जैसे कृषि भूमि के लिए वन विनाश, सिंचाई के लिए नदी प्रवाह में अवरोध, मृदा की उर्वरता बढ़ाने के लिए कृत्रिम खाद और वनस्पतियों की वंशानुगत गुणों में परिवर्तन आदि। यही से मानव–प्रकृति सम्बन्धों में दुराव आरंभ होता है। लेकिन यदि यह कार्य प्रकृति की क्षम्य सीमा के अंदर होता है तो पारिस्थैतिकी का संतुलन बना रहता है। आधुनिक काल में बढ़ती जनसंख्या और कृषि के व्यावसायीकरण के कारण प्रकृति की क्षम्य सीमा का अतिक्रमण होने लगा है। मृदा प्रदूषण, वनस्पति प्रदूषण और जल प्रदूषण से विकट समस्यायें प्रकट होने लगी हैं। स्पष्ट है कि मानव के इन क्रिया–कलापों से भविष्य संकटों के घेरे में आने लगा है।

उद्योग, उत्खनन, यातायात और व्यापार आधुनिकता के प्रतीक हैं। उद्योगों के विकास से उत्खनन, यातायात और व्यापार में जो गुणात्मक परिवर्तन पिछले सौ सालों में आया है वह विगत हजार वर्ष में संभव न हो सका है। उद्योग के विकास से यूरोप की आदिम जातियां, जो किसी प्रकार कृषि और पशुपालन से गुजारा करती थी आज विश्व की समृद्ध जातियां बन गई हैं। उद्योगों के विकास तकनीकी क्षमता और ऊर्जा के विकास से संभव हुआ है। उद्योगों के कारण वृहद् पैमाने पर नगरीकरण भी हुआ है। कच्चे माल के रूप में खनिजों का दोहन इतना हुआ है कि कुछ खनिज समाप्त होने लगे हैं। स्पष्ट है कि औद्योगिक विकास का मूल अधिक उत्पादन, अधिक भौतिक सुख और प्रकृति नियंत्रण पर आधारित है। अतः मानव–प्रकृति का संघर्ष पर्यावरण संकट का कारण बनता जा रहा है। आज औद्योगिक देश इस संकट से जितने आक्रांत हैं शायद अन्य देश नहीं। उनके इस आचरण से उनका भविष्य तो खतरे में पड़ ही गया है अन्यों के लिए भी वे खतरा पैदा कर रहे हैं। विश्वव्यापी अनेक समस्यायें उन्हीं की देन हैं। अब उन्हें निश्चित करना है िकवे विश्व के मानव समाज को बचाना चाहेंगे या सबको साथ लेकर विनष्ट होना चाहेंगे।

3-2-3 lekftd आवश्यकतायें vkj i;koj.k

अनेक सामाजिक कार्यों के लिए मानव समाज को सामाजिक नियम, धर्म, विज्ञान, सरकार और अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की रचना करनी पड़ती है। विकसित समाज में इन कार्यों का विशेष महत्त्व होा है। सामाजिक नियम बनाते समय सामान्यतः पर्यावरण को आधार बनाया जाता है क्योंकि यह समाज के सदस्यों के आचरण को नियंत्रित करता है। भारतीय समाज में प्रकृति को मां के रूप में स्वीकार कर उससे मधुर संबंध बनाये रखने के लिए अनेक नियम बनाये गये जैसे– पशु और यहां तक की पत्थर में ईश्वर का वास है। इनसे अंतर्प्रक्रिया करते समय सावधानी बरती जानी चाहिए। यही कारण है कि हजारों साल तक मनुष्य और प्रकृति के सम्बन्ध मधुर बने रहे। लेकिन पश्चिमी समाज की औद्योगिक संस्कृति इसके विपरीत प्रकृति विजय पर आधारित हो गई। उसका कुफल सामने है। धर्म आचरण नियंत्रक व्यवस्था है। धर्म के माध्यम से जीव–प्रकृति सम्बन्धों को पर्यावरणीय विशेषताओं के आधार पर परिभाषित किया जाता है। भारत के विविध धर्मों में प्रकृति के प्रति स्नेह और सम्मान आधारी तत्त्व है। यही कारण है कि हजारों साल तक प्रकृति को उत्पीड़ित नहीं किया गया। धर्म के घटते प्रभाव से ऐसी भावना विलुप्त हो गई। पश्चिमी औद्योगिक संस्कृति में घटता प्रभाव प्रकृति के उत्पीड़न का प्रमुख कारण है। वहां प्रकृति को लूटने–खसोटने की मनोवृत्ति इतनी प्रबल हुई कि धर्म की परिभाषा को ही बदल दिया गया। धर्म मात्र दिखावा बन गया। विज्ञान वास्तव में मनुष्य को अधिक और गहन चिंतन प्रदान करता है। प्राचीन काल में हमारे मनीषी सबसे बड़े विज्ञानी थे जो प्रकृति के रहस्यों को उद्घाटित कर बेहतर सम्बन्धों के लिए वैचारिक आधार प्रदान करते थे। जनमानस में विज्ञान स्वतः प्रवेश कर जाता था क्योंकि वह मानव आचरण का अंग बन जाता था। आयुर्वेद का आधार मानव–प्रकृति अंतर्प्रक्रिया है जो काल और स्थान से आबद्ध है। यही कारण है कि इस चिकित्सा पद्धति में शारीरिक नियंत्रण को प्राथमिकता दी गई है। पश्चिमी देशों में विकसित विज्ञान स्थूल ज्ञान और प्रयोगों पर आधारित है। यही कारण है कि वहां विकसित एलोपैथी चिकित्सा पद्धति भौतिक प्रयोग पर आधारित है। पश्चिमी देशों में जो विज्ञान विकसित हुआ उसका सम्बन्ध तकनीकी विकास से अधिक रहा है जिसके फलस्वरूप आर्थिक–सामाजिक प्रगति तो हुई लेकिन नैसर्गिक नियमों पर आधारित जीवन दर्शन के गूढ़ रहस्य अछूते रह गये। भौतिक सुख से उबने वालों के सामने इसीलिए आज कोई विकल्प नहीं है। विज्ञान और अर्थ आधारित पश्चिमी संस्कृति परपीड़क बन गई है। वह परपीड़ा से प्रसन्न होती है चाहे वह जीव हो या प्रकृति के स्थूल तत्व। यही कारण है कि अपने को विज्ञानी कहने वाला पश्चिमी समाज पर्यावरणीय समस्याओं से सबसे अधिक आक्रांत है। वहां प्रदूषण, ऊर्जा संकट, प्राकृतिक प्रकोप और सांस्कृतिक समस्यायें मानव के अस्तित्व के लिए खतरे का कारण बन गई है। आज पश्चिमी समाज इन समस्याओं से ऐसा घिर गया है कि उनका पड़ोसी भी भयाक्रांत है। आये दिन सुनना पड़ रहा है कि पश्चिमी देशों के अंतरिक्ष कार्यक्रम से उच्च वायुमण्डल में विकृतियां आ रही हैं जिससे सम्पूर्ण मानवता को खतरा है।

सामाजिक जीवन को व्यवस्थित बनाये रखने के लिये मानव समाज सरकार और पररराष्ट्रीय सम्बन्धों को स्थायितव देने का प्रयास करता है। यह प्रक्रिया आदिकाल से चली आ रही है। निहित स्वार्थों से सरकार अस्थिर होती है या पड़ोसियों से संघर्ष होता है। संघर्ष से न केवल जन–धन की हानि होती है अपितु इससे पर्यावरण के तत्व भी प्रभावित होकर पंगु बन सकते हैं। आणविक युद्ध इसका सबसे खतरनाक पक्ष है। हिरोशिमा और नागासाकी पर गिराये गये एटम बम का प्रभाव आज भी बना हुआ है। ऐसी आयुद्ध सामग्री का विशाल भण्डार रूस और अमेरिका के पास है। भविष्य की उमड़ती समस्याओं के कारण ही इनके परिसीमन की कार्यवाही शुरू हुई है। यह भी विचारणीय है कि कमजोर राष्ट्रों को आतंकित कर आयुद्ध सामग्री उत्पादन करने वाले देश अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। भारत–पाकिस्तान इसीलिये अच्छे पड़ोसी का सम्बन्ध नहीं बना पा रहे हैं। विश्व के देश अनेक सामरिक, राजनैतिक और आर्थिक गुटों में बंटकर अपने प्रभ्ज्ञाव की वृद्धि कर रहे हैं। इसीलिए सम्पूर्ण मानवता के लिए एकमत होना कठिन प्रमाणित होता है। इन गुटों द्वारा अब आकाश को बांटने की बात भी उठाई जा रही है। अंटार्कटिका के बंटवारे का क्रम चल रहा है। लगता है यह स्वार्थी समाज पर्यावरण को विनष्ट करके ही रुकेगा।

यदि पर्यावरण प्रबंध पर तुरंत ध्यान न दिया गया तो इक्कीसवीं सदी के मध्य तक प्रकृति के अनेक तत्त्व भयंकर रूप धारण कर लेंगे जिससे संपूर्ण मानवता को खतरा है। स्पष्ट है कि मानव समाज की सामाजिकता, राजनीति और विज्ञान का संतुलन इतना बिगड़ता जा रहा है कि उसे रोकने के लिये कोई आधार नहीं दिखाई दे रहा है। प्राचीन काल में यह कार्य धर्म किया करता था जो आज प्रभावहीन हो गया है। आज बार–बार दुहराया जा रहा है कि भगवान बुद्ध द्वारा प्रतिपादित मार्ग संपूर्ण मानवता के लिये मार्गदर्शक है लेकिन जब स्वयं भारत उस पर आचरण नहीं कर पा रहा है तो पश्चिमी देशों से कैसे अपेक्षा की जाय। निःसंदेह आज का समाज भौतिक उलब्धियों की चकाचौंध में यह भूल गया है कि वह प्रकृति का उत्पाद है, इसलिये प्रकृति उसको नियंत्रित करने का हर संभव प्रयास करेगी जिसके फलस्वरूप भारी आपदायें मानवता को ही समाप्त कर सकती है। यदि यह सच है तो हम पतन की ओर बढ़ रहे हैं।

3-2-4 उच्च आवश्यकतायें और पर्यावरण

मानव की उच्च आवश्यकताओं में शिक्षा, कला, मनोरंजन और स्वास्थ्य को समाहित किया जाता है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये मानव समाज विविध रूपों में अपने पर्यावरण से अंतर्प्रक्रिया करता है। चूंकि इन आवश्यकताओं का सम्बन्ध अधिकांश विकसित समाज से है, अतः इनकी पूर्ति के लिये मानव अधिक संवेदनशील बनकर प्रकृति के उपादानों का प्रयोग करता है। शिक्षा के माध्यम से प्रकृति के गूढ़ रहस्यों को जनमानस तक पहुंचाना आसान हो जाता है। फलतः सभी विकसित समाज में शिक्षा अनिवार्य बन जाती है। जब अशिक्षित सदस्य अनजाने में ऐसी गलतियां कर बैठता है तो वह पर्यावरणीय असंतुलन का कारण बन जाता है। उदाहरण के लिये अशिक्षित आदिवासी परिवर्तनशील कृषि को अब भी उचित मानते हैं जबकि शिक्षित समाज व्यावसायिक कृषि को। उसे यह पता नहीं कि वन विनाश का कितना कुप्रभाव पर्यावरण पर होता है। अतः शिक्षा एक ऐसी आवश्यकता है जो पशुता और मानवता को परिभाषित करती है। लेकिन यह दुर्भाग्य की बात है कि शिक्षा का अर्थ केवल पुस्तकीय शिक्षा से लगाया जाता है। वास्तव में शिक्षा ज्ञान प्राप्ति की एक सतत प्रक्रिया है जो परस्पर अंतर्प्रक्रिया से जुड़ी रहती है। परिवार, समाज, प्रकृति, विद्यालय उसकी संस्थायें हैं जहां ज्ञान अर्जित किया जाता है। यहां ज्ञान पर्यावरण सम्मजन की राह प्रशस्त करता है जिससे जीवन–चक्र अबाध गति से चलता रहता है। लेकिन आज शिक्षा का उद्देश्य भौतिक सुख की उपलब्धि तक सिमट जाने के कारण उच्च शिक्षा से सम्पन्न समाज प्रकृति की संवेदनशीलता को समझ जाने में असमर्थ है। उसकी तुलना में अशिक्षित समाज प्रकृति से अधिक सुखदाई सम्बन्ध बनाये हुए है। स्पष्ट है कि आधुनिक शिक्षा का स्वरूप बदले बिना भविष्य को सुखमय बनाना अत्यन्त कठिन है।

कला मानव का नैसर्गिक गुण है। आदिवासी समाज से लेकर आधुनिक समाज में इसके विविध रूप देखने को मिलते हैं। आदिवासी समाज अपनी संवेदनशीलता प्रकृति चित्रण से अभिव्यक्त करता है जबकि विकसित समाज चमत्कारिक अभिव्यक्ति को अधिक महत्त्व देता है। यूरोप में औद्योगिक क्रांति के बढ़ते प्रभाव से व्यथित होकर एक कवि को लिखना पड़ा कि कितनी आपा–धापी में उलझती जा रही है कि हमारे पास एक क्षण भी नहीं है कि हम रुक कर प्रकृति को देख सकें। बिगड़ती मानसिकता को देखते हुए डर लगने लगा है कि भविष्य में सौन्दर्य बोध ही समाप्त हो जायेगा जो मानव को मशीन बना देगा। कम्प्यूटर और रोबोट आदि यंत्रों का स्वभाव मानव–स्वभाव बनाने का खतरा बढ़ता जा रहा है। अतः मानवोचित गुण इतिहास की विषयवस्तु होगी जिसे कम्प्यूटर से वर्गीकृत कराया जायेगा। आज जिस घटिया साहित्य और भद्दी कला से मानसिक प्रदूषण हो रहा है वह सभी उपलब्धियों को भस्म कर सकता है। यदि मां का अपने बच्चे के प्रति ममत्व समाप्त हो जाय तो इसे घोर पशुता कहा जायेगा अर्थात् ऐसा पशु भी नहीं करते। आधुनिक समाज अनेकानेक कारणों से इस महत्त्व को मिटाने पर आमादा हो गया है। यही कारण है कि सौन्दर्य बोध के स्थान पर अपराध बोध बढ़ता जा रहा है। भूगोल में एक नयी शाखा–अपराध भूगोल इसी को उजागर करती है।

मनोरंजन भी मानव की एक ऐसी आवश्यकता है जिसकी चाह सभी वर्ग के समाज में पाई जाती है। इसकी आपूर्ति के लिए मनुष्य प्रकृति के उपादानों का सहारा लेता रहा है अर्थात् प्रकृति के सौन्दर्य का निरीक्षण और प्रकृति की गोद में बैठकर ऐसे क्रियाकलाप करना जिससे मन की थकान मिट सके और जीवन का उत्साह बना रहे। घुड़दौड़ से लेकर दूरदर्शन तक की यह यात्रा मानव को तकनीकी उपलब्धि को उजागर करती है। यंत्रों से बढ़ता मनोरंजन प्रकृति के प्रति बदलते रूख का कारण बनता जा रहा है। आज पर्यटन को उद्योग मानकर जिस बड़े पैमाने पर प्राकृतिक तत्त्वों का विनाश किया जा रहा है वह चिंता का विषय बन गया है। हिमालय के पर्यावरण को पर्यटन उद्योग के नाम पर गड़बड़ करने का काम शुरू हो गया है। इसी तरह अंटार्कटिका में पर्यटन उद्योग का बढ़ता प्रभाव वहां के पर्यावरण के लिए अहितकर बताया जा रहा है। वास्तविकता यह है कि आधुनिक भौतिकवादी समाज जहां भी मनोरंजन के नाम पर जा रहा है अपने सुख–सुविधा की सामग्री इतना इकट्ठा कर लेता है कि उससे पर्यावरण की गुणवत्ता बदल जाती है। वास्तव में आधुनिक समाज अपने प्रदर्शन से अधिक सुख पाता है।

अपने को स्वस्थ बनाये रखने के लिए मानव समाज अनेक उपाय करता है। प्रकृति ने मानव के शरीर को स्वस्थ रखने के लिए नैसर्गिक गुणों से सम्पन्न किया है। किसी प्रकार के स्वास्थ्य असंतुलन को शरीर की प्रतिरोध शक्ति नियंत्रित करने का प्रयास करती है। जब यह शक्ति कमजोर होती है तो औषधि का सहारा लेना पड़ता है। अन्य जीव अपनी प्रतिरोधी शक्ति को इतना प्रबल बनाये रखते हैं कि न्यूनतम बाह्य सहायता की आवश्यकता पड़ती है। मानव के बिगड़ते स्वास्थ्य का प्रमाण असाध्य बीमारियां हैं। आज जितनी प्रगति औषधि विज्ञान की हुई है उतनी ही तेजी से शरीर की प्रतिरोधी शक्ति का ह्रास भी हुआ है। इसका प्रमुख कारण है पर्यावरण का प्रदूषण और सांस्कृतिक विकृतियां। तम्बाकू अनेक बीमारियों का कारण है लेकिन तम्बाकू उद्योग को बनाये रखने का हर संभव प्रयास जारी है। शरीर के लिये शुद्ध हवा और स्वच्छ जल आवश्यक है लेकिन दोनों प्रदूषित हैं। अनाज, फल, सब्जी और यहां तक कि दूध को भी प्रदूषण से बचाना कठिन लग रहा है। यदि भोजन की सामग्री प्रदूषित होती जा रही है तो अच्छे स्वास्थ्य की कामना कैसे की जा सकती है।

3-2-5 lkj e.Myh; fØ;kdyki vkj i;koj.k

मानव की अनुक्रियाओं में सौरमण्डलीय क्रियाकलाप आधुनिकतम उपलब्धि है। चन्द्रमा की यात्रा के बाद मनुष्य की तकनीकी और वैज्ञानिक उपलब्धि नई ऊंचाइयों को छूने लगी है। अन्य ग्रहों की खोज सम्बन्धी अभियान प्रगति पर है। इस उपलब्धि से नई आशायें और महत्वाकांक्षायें भविष्य की थाती कही जा रही हैं। कहा जा रहा है कि चन्द्रमा तल पर खनिजों का भण्डार है जिसका उपयोग भविष्य में हो सकता है। पृथ्वी तल पर घटते खनिज भण्डार के परिप्रेक्ष्य में यह आशाजनक सूचना है। इसी प्रकार अन्य ग्रहों पर मानव समाज आस लगाये हैं। पृथ्वी तल पर भूमि की कमी को देखते हुए अंतरिक्ष में आवासीय कालोनी और कुछ विशिष्ट कारखाना लगाने की योजना है। इस संदर्भ में संयुक्त राज्य अमेरिका अनेक योजनाओं पर कार्यरत है। पृथ्वी तल पर प्रकाश की व्यवस्था भी अंतरिक्ष कार्यक्रम का अंग है। ऐसे उपग्रह छोड़ने का कार्यक्रम बनाया जा रहा है जिससे अंधेरी रात प्रकाशमय हो जायेगी। इससे प्रकाश के लिए प्रयुक्त ऊर्जा को बचाया जा सकेगा। आज जो उपग्रह संचार व्यवस्था में संलग्न हैं उन्हें और उपयोगी बनाने की योजना है। भूगर्भ सर्वेक्षण के लिये और कारगर उपग्रह प्रणाली का विकास किया भी जा रहा है। ये सारी उपलब्धियां उच्चतम तकनीकी विकास की प्रतीक बन गई हैं।

पृथ्वी को जैव आवास के रूप में जाना जाता है। मनुष्य भी इसी पृथ्वी का वासी है लेकिन अंतरिक्ष अभियान के द्वारा उसका आवास विस्तार हो सकता है। हजारों साल तक वायुमण्डल का निचला स्तर जिसे हम परिवर्तन मण्डल के नाम से जानते हैं मनुष्य के क्रियाकलाप का क्षेत्र रहा है। इसके रहस्यों को जानने के लिये विविध उपाय प्रयोग में लाये जाते रहे हैं क्योंकि इस स्तर का सीधा सम्बन्ध मौसम और जलवायु से

है। सदियों तक ऊपरी वायुमण्डल का ज्ञान अनावश्यक रहा है। वायुयान औश्र राकेट के विकास के बाद मानव के क्रियाकलाप का विस्तार होता गया। आज ग्रहीय और उपग्रहीय यात्राओं के साथ ऊपरी वायुमण्डल भी मानव के क्रियाकलाप की परिधि में आ गया है। आज विभिन्न तकनीकों से वायुमण्डल की विशिष्टताओं का ज्ञान मानव का लक्ष्य बन गया है जिस पर एक बड़ी राशि खर्च की जा रही है।यह सत्य है कि प्रकृति के रहस्यों को जानकर आपसी सम्बन्धों में सुधार से जीवन की गुणवत्ता में वृद्धि की जा सकती है। संचार उपग्रह, भूसर्वेक्षण उपग्रह और हवाई जहाज इसके प्रमाण हैं। आज इनके माध्यम से पृथ्वी को छोटा बना लिया गया है। दूरदर्शन पर प्रतिदिन की विश्वव्यापी घटनाओं का प्रदर्शन और अंतर महाद्वीपीय टेलीफोन प्रणाली, उपग्रह से प्रतिदिन मौसम की जानकारी ऐसी उपलब्धियां हैं जिनपर मानव समाज गर्व कर सकता है।

लेकिन उपलब्धियों के साथ संलग्न पर्यावरणीय संकट संपूर्ण मानवता के लिए प्रश्न चिन्ह बनता जा रहा है। प्रदूषण, प्राकृतिक प्रकोपों और विविध सांस्कृतिक समस्याओं से घिरा मानव समाज कल के प्रति चिंतित हो रहा है। यहां तक कहा जा रहा है कि यदि वर्तमान ढंग बना रहा तो पृथ्वी जीवन विहीन हो सकती है। ओजोन गैस के आवरण में जहरीली गैसों से बनता छेद भयानक खतरे की सूचना है। इससे सूर्य की पराबैगनी किरणों का प्रकोप पृथ्वी तल पर इतना बढ़ जायेगा कि अंधापन, चर्मरोग, कैंसर, सूक्ष्म जीवों का विनाश और यहां तक कि जीवों के आनुवंशिक गुणों में भी परिवर्तन कर देगी। इससे मौसम और जलवायु के स्वभाव में इतना परिवर्तन आ सकता है कि बाढ़ और सूखा के प्रकोप से जन–धन की अपार क्षति हो सकती है। आखिर इतने बड़े संकट को क्यों निमंत्रण दिया जा रहा है। वास्तविकता यह है कि हम केवल वर्तमान को देख पा रहे हैं। भूतकालीन अनुभवों से न हम शिक्षा लेना चाहते हैं और न भविष्य के प्रति जागरूक हैं। यदि ऐसा होता तो यह स्थिति नहीं आती जो आज डरा रही है। अतः आवश्यक है कि मानव के भविष्य के लेखा–जोखा पर विचार किया जाए।

मानव के कौशल पर अविश्वास करना आसान नहीं है। अपनी बौद्धिकता और चातुर्य से वह विकट से विकट समस्याओं का समाधान ढूंढने की क्षमता प्रमाणित करता रहा है। आज जो पर्यावरणीय समस्यायें उपस्थित हुई हैं, उनका समाधान भी ढूंढा जा सकता है। लेकिन प्रश्न है समस्या बोध का। अतः कहा जा सकता है कि यदि निम्नलिखित तथ्यों और समस्याओं का समाधान ढूंढने में सफलता मिलती है तो मानव का भविष्य उज्ज्वल है–

- प्रकृति के साथ संवेदनशील सम्बन्ध का विकास अर्थात् प्रकृति को मां के रूप में मान्यता।
- पर्यावरण के अनुरूप तकनीकों का विकास अर्थात् मानवीय अनुक्रियाओं का नियमन।
- संसाधनों की गुणवत्ता और भण्डार के अनुरूप प्रयोग अर्थात् संसाधन संवर्धन और संरक्षण युक्त विदोहन।
- बढ़ती जनसंख्या पर यथासंभव नियंत्रण विशेष कर चारित्रिक नियमन का अनुसरण।
- राजनैतिक प्रतिस्पर्द्धा में सुधार ताकि संसाधनों का दुरुपयोग कम किया जा सके और पर्यावरण के प्रति विश्वव्यापी जनमत बन सके।
- प्रकृतिवादी शिक्षा का प्रचार अर्थात् शिक्षा के माध्यम से पर्यावरण के प्रति आध्यात्मिक दृष्टिकोण का प्रचार–प्रसार।
- औद्योगिक तकनीकों में सुधार ताकि प्रदूषण आदि को कम किया जा सके और अपशिष्टों का पुनर्प्रयोग संभव बनाया जा सके ताकि कचरा कम उत्पादित हो।
- नगरीकरण, विशेषकर महानगरों के विस्तार पर प्रतिबंध।
- कृषि और पशुपालन को पर्यावरण के अनुसार अनुकूलन।
- ऊर्जा संसाधनों का संरक्षण और वैकल्पिक साधनों का विकास।

- समाजिक दृष्टिकोण में परिवर्तन अर्थात् भौतिकवादी दृष्टिकोण में सुधार।
- वैज्ञानिक दर्शन में सुधार अर्थात् विज्ञान का मानवतावादी दृष्टिकोण।

यदि किन्हीं परिस्थिति में उपरोक्त कारणों और तथ्यों की अनदेखी की गई तो मानव का भविष्य अंधकारमय हो सकता है। अंधकारमय भविष्य के लिए निम्न तथ्य सर्वोपरि खतरे हैं–

- जनसंख्या का नियंत्रण आसान नहीं है। जनवृद्धि के प्रति सभी देशों के समान विचार नहीं हैं। सघन और विरल बसे देशों के दृष्टिकोण में काफी अंतर है। इसी प्रकार विविध धर्मों और जातियों में जन्मदर पर अंकुश लगाने की भावना में अंतर है।
- पश्चिम का भौतिकवादी दृष्टिकोण विश्वव्यापी होता जा रहा है जबकि वह अनेक पर्यावरणीय समस्याओं का जनक है। भारत जैसा देश भी अपने को नहीं बचा पा रहा है।
- प्रकृति के प्रति अनुदार व्यवहार का सिलसिला। यदि वर्तमान अनुदार व्यवहार में सुधार नहीं हुआ तो प्रकृति अपने ढंग से दण्ड देगी।
- अंतरिक्ष अभियान पर नियंत्रण अन्यथा वायुमण्डलीय अवक्रमण महा विनाश का कारण बन जायेगा।
- वृक्षारोपण और वन संवर्धन का प्रचार जैसा कि भारत में किया जा रहा है अर्थात् केवल आंकड़ों के रूप में वृक्षारोपण।
- प्रकृति विजय की भावना पर नियंत्रण। इसका फल केवल लघु अवधि में प्रकट होने लगा है।
- वंशानुगत परिवर्तन सम्बन्धी कार्यों पर यथासंभव नियंत्रण अथवा बहुत कुछ तहस–नहस हो सकता है। आज यह कार्य मात्र प्रदर्शन या आर्थिक लाभ के लिए किया जा रहा है।
- मानव के शारीरिक प्रतिरोध क्षमता में सुधार अन्यथा स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्या के कारण महा विनाश हो सकता है।

3-3 i;koj.k vkj ekuoh; fodkl

आजकल आर्थिक विकास, पर्यावरण, निर्धनता व मानवीय विकास के परस्पर सम्बन्धों पर बहुत जोर दिया जाने लगा है। यू.एन.डी.पी. द्वारा प्रकाशित ह्यूमन डेवलपमेण्ट रिपोर्ट 1996 का विशय आर्थिक विकास व मानवीय विकास का आपसी सम्बन्ध रखा गया था जिसमें आर्थिक विकास का प्रभाव मानवीय विकास पर तथ मानवीय विकास का प्रभाव आर्थिक विकास पर दर्शाया गया था। आजकल यह माना जाने लगा है कि केवल आर्थिक विकास से ही मानवीय विकास नहीं हो जाता। इसके लिए कई उपायों को करने की आवश्यकता होती है। मानवीय विकास के लिए शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता व सफाई, आवास, पेयजल, पर्याप्त आमदनी आदि पर बल दिया जाता है। टिकाऊ मानवीय विकास के लिए पर्यावरण की सुरक्षा व विकास पर पर्याप्त रूप से ध्यान देना होता है। यदि किसी भी प्रकार का विकास पर्यावरण को क्षति पहुंचाता है तो वह स्थायी, सुस्थिर व टिकाऊ किस्म का नहीं हो सकता और उससे आगे चलकर समाज पर घातक प्रभाव होता है। अतः आर्थिक विकास तथा मानवीय विकास पर्यावरण–मैत्रीपूर्ण व जन–मैत्रीपूर्ण होना चाहिए। अतः पर्यावरण व मानवीय विकास के अध्ययन का महत्त्व बढ़ गया है। इसके विभिन्न पहलुओं की नीचे चर्चा की जाती है।

3-3-1 i;koj.k lajf{kr vkj ekuoh; fodkl

पर्यावरण–संरक्षण में 'जल, जमीन व जंगल' के संरक्षण पर बल दिया जाता है। पर्यावरण में जल, पेड़, पशु–पक्षी, जीव–जंतु, वायु, भूमि आदि भाामिल किये जाते हैं। मनुश्य की प्रथम आवश्यकता भाुद्ध जल, भाुद्ध हवा व भाुद्ध भोजन की मानी जाती है। इसलिए पर्यावरण को जल–प्रदूषण, वायु–प्रदूशण, ध्वनि–प्रदूशण व मिट्टी प्रदूशण से बचाने की आवश्यकता मानी गयी है। पर्यावरण का प्रदूशण स्थानीय, राश्ट्रीय व अंतर्राश्ट्रीय स्तरों पर निरंतर होता रहता है। स्थानीय स्तर पर प्रदूशण के निम्न रूप देखने को मिलते

हैं–शुद्ध पेयजल का अभाव, भाहरों व गांवों का प्रतिदिन जमा होता कूड़ा–कचरा, गंदे पानी के निकास की व्यवस्था का अभाव, सफाई के प्रबंध में कमी, लकड़ी की ईंधन वाले चूल्हों के धुंए से घरों में स्त्रियों के स्वास्थ्य पर कुप्रभाव, भाहरों में वाहनों से उत्पन्न वायु–प्रदूशण, ध्वनि–प्रदूशण, आदि। इसी प्रकार राश्ट्रीय स्तर पर नदी–प्रदूशण, वृक्षों का नाश, प्रदूशण फैलाने वाले उद्योग, मिट्टी का कटाव, मिट्टी में लवणता व क्षारीयता की वृद्धि तथा मरुस्थलीकरण आदि लिये जा सकते हैं। अंत में भूमण्डलीय पर्यावरणीय प्रदूशण में वायुमण्डल में ग्रीन हाउस गैसों के जमा होने से उश्णीकरण की समस्या उत्पन्न होती है। वायुमण्डल में कार्बन–डाइऑक्साइड के बढ़ने से ग्रीम हाउस–उश्णीकरण बढ़ रहा है। इससे जलवायु में परिवर्तन आता है और पर्यावरण प्रभावित होता है। चावल की खेती व पशु–पालन से मिथैन गैस उत्पन्न होती है जिसको सीमित करना कठिन होता है। भूमण्डलीय स्तर के प्रदूशण में ओजोन परत के ह्रास को भी लिया जाता है। ओजोन की परत के क्षय से सूर्य की अल्ट्रावायलेट रेडियेशन में वृद्धि हो जाती है, जिससे चर्म–केन्सर में वृद्धि होती है और आंखों में केटेरेक्ट की बीमारी हो सकती है। अतः अल्ट्रावायलेट रेडियेशन के बढ़ने से स्वास्थ्य को काफी हानि होने का भय हो जाता है। इससे पौधों को भी हानि होती है। भूमण्डलीय प्रदूशण में तीसरा स्थान जैविक विविधता के ह्रास का आता है। परिवेश–व्यवस्था में नाना प्रकार के पशु–पक्षी, पेड़–पौधे व जीव–जन्तु पाये जाते हैं जो अपने परिवेश में फलते–फूलते रहते हैं। इनसे हमें भोजन, रेशे, दवा व औद्योगिक कार्यों के लिए आवश्यक इन्पुट मिलते रहते हैं। लेकिन जैविक विविधता के निरंतर ह्रास से परिवेश–संतुलन बिगड़ता जा रहा है जिसका प्रतिकूल प्रभाव समस्त मानवीय विकास पर पड़ने वाला है।

पर्यावरण को कई प्रकार से हानि पहुंचने के कारण आर्थिक विकास पर प्रतिकूल असर पड़ता है जिससे आगे चलकर मानवीय विकास में कमी आती है। पर्यावरण के बिगड़ने से लोगों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर पड़ता है और उनकी सुख–समृद्धि कम होती है। इस विवरण से यह स्पश्ट हो जाता है कि जब तक जल–प्रदूशण, वायु–प्रदूशण, ध्वनि–प्रदूशण व मिट्टी अथवा कृशिगत प्रदूशण से लोगों को नहीं बचाया जायगा तब तक सही मायने में मानवीय विकास की कल्पना नहीं की जा सकती। वर्श 1990 से 'ह्यूमन डेवलपमेण्ट रिपोर्ट' में मानवीय विकास का सूचकांक प्रकाशित किया जाता है। इसमें मानवीय विकास जैसी जटिल अवधारणा को तीन मूलभूत आयामों लम्बे व स्वस्थ जीवन, ज्ञान व उत्तम जीवन–स्तर के आधार पर एक संयुक्त सूचकांक में व्यक्त किया जाता है। लम्बे व स्वस्थ जीवन अथवा आयुकाल को जन्म के समय जीने की प्रत्याशा के आधार पर मापा जाता है। भौक्षणिक स्तर या ज्ञान को दो आधारों पर मापा जाता है, एक तो प्रौढ़–साक्षरता की दर तथा दूसरे प्राथमिक, द्वितीयक व सहायक क्षेत्रों में मिले–जुले नामांकन–अनुपात। जीवन–स्तर को प्रति व्यक्ति वास्तविक सकल घरेलू उत्पत्ति के आधार पर मापा जाता है। इस प्रकार मानवीय विकास का माप मानवीय विकास के सूचकांक के आधार पर किया जाता है जिसमें जीने की औसत आयु, शिक्षा का स्तर तथा प्रति व्यक्ति वास्तविक आय को लिया जाता है।

3-3-2 i;koj.k dk ekuoh; fodkl ij izHkko

1. पर्यावरण–संरक्षण से मानवीय विकास में भारी मदद मिलती है। यदि पर्यावरण उत्तम हो और लोगों को जल–प्रदूशण, वायु–प्रदूशण, आदि से बचाया जा सके तो मानवीय विकास में स्वास्थ्य–सुधार के रूप में प्रत्यक्ष लाभ मिलेगा और परोक्ष रूप में लोगों की कार्यकुशलता में वृद्धि के रूप में राश्ट्र की आमदनी भी बढ़ेगी। इसके विपरीत पर्यावरण–प्रदूशण के बने रहने व बढ़ने से लोग नाना प्रकार के रोगों के शिकार होते हैं। जिससे मानवीय विकास का स्तर नीचा होता है। 1994 में भारत में सूरत जैसे अपेक्षाकृत धनी भाहर में पानी की खराब सप्लाई, साफ–सफाई व गंदे जल के निकास की व्यवस्था के अभाव में प्लेग की महामारी फैलने लगी थी और लोग भाहर छोड़कर भागने लगे थे। देश के अनेक भागों में भाुद्ध पेयजल के अभाव में लोगों को कई प्रकार के रोगों का शिकार होना पड़ता है। वायु–प्रदूशण से सांस की बीमारियां बढ़ती जा रही हैं। ऐसी स्थिति में केवल आर्थिक

विकास की चर्चा तक सीमित रहना पर्याप्त नहीं माना जा सकता। आर्थिक विकास से आमदनी अवश्य बढ़ती है, लेकिन प्रदूशण को न रोकने पर मानवीय विकास में सुधार करना कठिन बना रहता है।

2. पर्यावरण प्रदूशण रोकने से, अर्थात् वृक्षारोपण करने, वायुमण्डल को स्वच्छ रखने व प्रदूशण को रोकने के अन्य उपाय करने से, वर्तमान पीढ़ी व भावी पीढ़ी के बीच साधनों का संतुलित वितरण करने में मदद मिलती है। इससे सुस्थिर मानवीय विकास व सुस्थिर आर्थिक विकास को बढ़ावा मिलता है। वर्तमान पीढ़ी को राश्ट्र के साधनों का उपयोग केवल अपने लिए ही नहीं करना चाहिए, बल्कि भावी पीढ़ी के हितों को भी ध्यान में रखना चाहिए, इसलिए पर्यावरण के संरक्षण व विकास की क्रिया सतत चलनी चाहिए। जहां वृक्ष काटे जाते हैं वहां साथ में नये पेड़–पौधे भी लगाते जाना चाहिए ताकि भावी पीढ़ी को विरासत में केवल वीरान भूमि ही न मिले। यदि ऐसा नहीं किया गया तो भावी पीढ़ी अपने पूर्वजों को उलाहना देगी।

3-3-3 ekuoh; fodkl dk i;kZoj.k ij izHkko

स्वयं मानवीय विकास के स्तर व अवस्था का भी पर्यावरण पर प्रभाव पड़ता है। यदि एक देश में मानवीय विकास का स्तर नीचा होता है; अर्थात् काफी संख्या में लोग निरक्षर पाये जाते हैं और उनकी प्रति व्यक्ति आमदनी कम होती है तथा अधिकांश व्यक्ति गरीब होते हैं तो वे पर्यावरण को क्षति पहुंचाने के लिए मजबूर हो जाते हैं। गरीबी प्रदूशण का मुख्य कारण बन जाती है। लोग वृक्षों की कटाई करने लगते हैं ताकि लकड़ी बेचकर अपनी जीविका चला सकें। लेकिन मानवीय विकास का स्तर ऊंचा होने पर भी पर्यावरण में गिरावट का खतरा बना रह सकता है। जैसे विकसित औद्योगिक देशों में मानवीय विकास का स्तर तो ऊंचा हो जाता है– स्वास्थ्य, शिक्षा व आमदनी के स्तरों के बढ़ जाने से, लेकिन उनमें ऊर्जा की खपत अधिक होने से वे पर्यावरण में कार्बन–डाइऑक्साइड व अन्य गैसों की मात्रा ज्यादा पहुंचाते हैं जिससे ग्रीनहाउस गैसों की वजह से प्रदूशण ज्यादा फैलता है जो भूमण्डलीय प्रदूशण का अंग होने के कारण न केवल विकसित देशों को हानि पहुंचाता है, बल्कि साथ में अपनी गिरफ्त में विकासशील व पिछड़े देशों को भी ले लेता है। विकसित देशों के उपभोगवाद व लोभ–लालच की प्रवृत्ति के कारण ही विकासशील देशों की जैविक विविधता का विनाश हो रहा है। उनमें पशु–पक्षियों व पेड़–पौधों की प्रजातियां कम होती जा रही हैं। इसलिए हमें एक विभिन्न प्रकार की विडम्बना देखने को मिलती है औ वह यह है कि मानवीय विकास के नीचे स्तर पर तथा मानवीय विकास के ऊँचे स्तर पर पर्यावरण की गिरावट की प्रक्रिया चलती रही है। दोनों ही दशाओं में मानव की नासमझी का शिकार पर्यावरण को बनना पड़ता है। अतः पर्यावरण–संरक्षण की जिम्मेदारी समस्त मानव समाज की है जिस पर ध्यान देने की आवश्यकता है। स्मरण रहे कि यदि विश्व के समस्त देशों ने पर्यावरण की रक्षा नहीं की तो पर्यावरण भी उनकी रक्षा करने वाला नहीं है। प्रकृति जितनी दयालु है उतनी ही कठोर भी है। इसलिए पर्यावरण से जुड़े प्रश्नों की कभी अनदेखी नहीं की जानी चाहिए। पर्यावरण व मानवीय विकास की परस्पर अंतर्क्रिया को देखने के बाद हम भारत में मानवीय विकास की बदलती स्थिति और उसमें सुधार के उपायों पर प्रकाश डालेंगे।

3-3-4 Hkkjr esa ekuoh; fodkl dh cnyrh fLFkfr

इसमें कोई संदेह नहीं कि स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद भारत में मानवीय विकास के सूचकों में सुधार हुआ है, लेकिन आज भी मानवीय विकास की दृष्टि से भारत की स्थिति अन्य देशों के मुकाबले काफी पिछड़ी हुई है जिससे आगामी दशकों में सुधारने का प्रयास करना होगा। भारत में पिछले 50 वर्षों में मानवीय विकास के विभिन्न सूचकों में सुधार हुआ है। लेकिन अभी भी यह काफी देशों से पीछे है। हमें जापान, अमेरिका व कनाड़ा से सीखने का प्रयास करना चाहिए। मानवीय विकास रिपोर्ट (1996) के अनुसार, ''केरल की प्रगति की प्रमुख दशाएं अन्यत्र भी लागू की जा सकती हैं जैसे आम जनता में साक्षरता, कृषिगत सुधार,

दबी हुई जातियों की दशा में सुधार तथा लड़कियों व महिलाओं की शिक्षा व दशा के प्रति प्रगतिशील दृष्टिकोण। इन सभी को राज्य–स्तर पर सार्वजनिक नीति के द्वारा समर्थन प्राप्त हुआ है। अतः भारत के अन्य राज्यों में भी केरल की नीतियों को अपनाकर मानवीय विकास का स्तर ऊँचा किया जा सकता है। मानवीय विकास पर्यावरण की रक्षा करते हुए किया जाना चाहिए। इसके लिए निम्न उपाय किये जा सकते हैं–

1. पर्यावरण के सुधार व मानवीय विकास के लिए सरकार को सार्वजनिक व्यय में वृद्धि करनी चाहिए। साथ में व्यय की राशि का पूरा उपयोग करके भौतिक लक्ष्यों की प्राप्ति पर जोर देना चाहिए।
2. पर्यावरण में सुधार के लिए वृक्षारोपण को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। व्यर्थ भूखण्डों का सर्वेक्षण करवा कर उनके सदुपयोग का कार्यक्रम तैयार किया जाना चाहिए। उनमें वृक्षारोपण, घास के मैदानों के विकास, आदि की स्थानीय योजनाएं बनायी जानी चाहिए ताकि उनके माध्यम से रोजगार–सृजन भी संभव हो सके। इससे प्रति व्यक्ति आमदनी को बढ़ाने में मदद मिलेगी।
3. संस्थागत सुधारों में भूमि–सुधारों, विकेन्द्रित नियोजन व लोगों की साझेदारी के माध्यम से ग्रामीण विकास की परियोजनाओं के क्रियान्वयन पर बल दिया जाना चाहिए। विकास की दर को ऊँचा रखने के साथ–साथ संस्थागत परिवर्तनों पर भी पर्याप्त ध्यान दिया जाना चाहिए ताकि 'न्याय के साथ विकास' लक्ष्य प्राप्त किया जा सके। विकास की मात्रा के साथ–साथ उसकी गुणवत्ता पर भी ध्यान देना जरूरी है। विकास रोजगार बढ़ाने वाला हो, लोगों की क्षमताएं बढ़ाने वाला हो, लोगों के लिए चुनाव के अवसर बढ़ाने वाला हो, पर्यावरण का रक्षक हो, लोकतंत्र का पोषक हो तथा भावी पीढ़ी के हितों का भी रक्षक हो।
4. विकास के मानवीय स्वरूप पर अधिक बल दिया जाना चाहिए। आर्थिक उदारीकरण के पन्द्रह वर्षों में अधिक ध्यान विदेशी भुगतान की स्थिति को सुधारने, बजट–घाटा कम करने, कर–व्यवस्था को उदार बनाने तथा औद्योगिक प्रगति पर केन्द्रित किया गया था। आगामी वर्षों में सामाजिक क्षेत्र को अधिक वरीयता दी जानी चाहिए जिससे शिक्षा, चिकित्सा व स्वास्थ्य, पेयजल, सामाजिक सुरक्षा, रोजगार आदि के विकास पर समुचित ध्यान दिया जा सके। चीन ने 1979 में आर्थिक सुधार चालू करने से पूर्व सामाजिक विकास का आधार सुदृढ़ कर लिया था तथा लोगों की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के विशेष कार्यक्रम अपनाए थे। इससे वहां आर्थिक सुधारों के प्रति जन–समर्थन का वातावरण बन गया था। भारत ने आर्थिक सुधारों पर तो बल दिया, लेकिन सामाजिक विकास की स्थिति पिछड़ी रह गई। अतः आगामी वर्षों तथा इक्कीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, सामाजिक सुरक्षा आदि को विकास का केन्द्र बनाना होगा ताकि एक तरफ मानवीय विकास हो सके तथा दूसरी तरफ इसके फलस्वरूप आर्थिक विकास की प्रक्रिया को भी बल मिल सके।
5. मानीवीय विकास पर पर्यावरण के अलावा अनेक तत्त्वों का प्रभाव भी निरंतर पड़ता रहता है। आतंकवाद, जातीय संघर्ष, साम्प्रदायिकता, युद्ध, अशांत वातावरण, नशीली दवाओं का व्यापार, एड्स जैसे रोगों का प्रादुर्भाव, अनेक प्रकार के दुराचार व भ्रष्टाचार, देश में विभिन्न वर्गों में परस्पर सहयोग का अभाव, शैक्षणिक, कानूनी, न्यायिक, प्रशासनिक, आदि सभी क्षेत्रों में केन्द्र, राज्य, जिला व स्थानीय स्तरों पर एकसाथ व्यापक सुधार व प्रगति होने से ही मानवीय विकास व कल्याण का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। मानवीय विकास समग्र विकास व समग्र परिवर्तन से भी संभव हो पाता है और तभी वह स्थायी किस्म का हो पाता है। अतः सुस्थिर व टिकाऊ किस्म का मानवीय विकास करने के लिए पर्यावरण–संरक्षण, सामाजिक विकास तथा आर्थिक विकास के साथ–साथ जीवन के अन्य पहलुओं पर भी जोर दिया जाना चाहिए। तभी लोग सुखी जीवन के

लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे। केवल एक क्षेत्र के विकास से मानवीय विकास संभव नहीं हो पाता। इसके लिए मानवीय गुणों के विकास की भी जरूरत होती है। यही कारण है कि विद्वानों ने मानवीय विकास की चर्चा में स्वास्थ्य, शिक्षा, भोजन व पोषण, आमदनी व निर्धनता, महिलाओं, बच्चों, पर्यावरण, राजनीति व संघर्ष आदि अनेक तत्त्वों का समावेश किया है। मानवीय विकास का प्रश्न एक बहुआयामी प्रश्न माना गया है। समग्रीकत दृष्टिकोण अपनाकर ही टिकाऊ मानवीय विकास का लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है।

पूर्व वर्षों में मानवीय विकास रिपोर्ट के प्रमुख रचनाकार महबूब–अल–हक ने 1996 के प्रारंभ में इन्स्टीट्यूट ऑफ सोशल साइन्सेस, नई दिल्ली में डीटी लकड़ावाला स्मृति व्याख्यान में विकास की निम्न शब्दों में सही व्याख्या की है जिस पर सभी को ध्यान देना चाहिए, ''विकास का मूल उद्देश्य लोगों के लिए चुनाव के अवसरों में वृद्धि करना होता है। सिद्धान्ततः ये चुनाव सीमित हो सकते हैं और समय के साथ बदल भी सकते हैं। लोग प्रायः ऐसी उपलब्धियों को महत्त्व देते हैं जो आमदनी या विकास के रूप में प्रगट ही नहीं होती या शीघ्र प्रगट नहीं होती– जैसे ज्ञान, बेहतर पोषण और स्वास्थ्य सेवाओं तक उनकी ज्यादा पहुंच, अधिक सुरक्षित जीवन–यापन के साधन, अपराध व शारीरिक हिंसा के प्रति सुरक्षा, संतोषदायक अवकाश के क्षण, राजनीतिक व सांस्कृतिक स्वतंत्रताएं तथा सामुदायिक क्रियाओं में उनकी भागीदारी की भावना। विकास का उद्देश्य लोगों के लिए एक ऐसा वातावरण तैया करना होता है जिसमें वे सुदीर्घ, स्वस्थ व सृजनात्मक जीवन का आनंद ले सकें।'' इस वक्तव्य में मानवीय विकास के गुणों का सार छिपा हुआ है। अतः इसके बहुआयामी स्वरूप को समझकर उसका लाभ उठाना चाहिए।

4- i;koj.k ij eu"; dk iHkko

प्राकृतिक पर्यावरण पर मनुष्य के प्रभावों को दो प्रमुख वर्गों में विभाजित किया जाता है–प्रत्यक्ष या सोद्देश्य प्रभाव तथा अप्रत्यक्ष या निरुद्देश्य प्रभाव।

प्रत्यक्ष या सोद्देश्य प्रभाव सुनियोजित एवं संकल्पित होते हैं क्योंकि किसी भी क्षेत्र में आर्थिक विकास के लिए भौतिक पर्यावरण को परिवर्तित या रूपान्तरित करने के लिए चलाये जाने वाले किसी भी कार्यक्रम से उत्पन्न होने वाले भावी परिणामों से मनुष्य अवगत रहता है। आर्थिक विकास हेतु भौतिक पर्यावरण में इस तरह के परिवर्तनों में प्रमुख हैं–

- भूमि उपयोग में परिवर्तन– कृषि में विस्तार तथा फसलों के उत्पादन के लिये वनों को काट कर साफ करना तथा घास क्षेत्रों का जलाया जाना; व्यापारिक उद्देश्य से पेड़ों का बृहद् स्तर पर काटा जाना; नवीन कृषि तकनीकों, अधिक उपज देने वाले बीजों, समुन्नत सिंचाई की सुविधाओं के परिवेश में भास्य प्रारूपों में परिवर्तन आदि।
- निर्माण तथा उत्खनन कार्य– नदी पर बांधों, जलभण्डारों तथा सिंचाई के लिये नहरों का निर्माण; नदी की जलधाराओं में विपथगमन अर्थात् धाराओं को विभिन्न दिशाओं में किसी खास उद्देश्य के लिये मोड़ना या घुमा देना तथा नदी की जलधाराओं में हस्तक्षेप तथा हेर–फेर ; क्षेत्र विशेष को बाढ़ से बचाने के लिए तटबंधों तथा डाइक का निर्माण; सड़क तथा पुलों का निर्माण; नगरीकरण में वृद्धि तथा विस्तार; खनिजों का खनन; खनिज तेल का बेधन,
- कृषि कार्य– कृषि का मशीनीकरण, रासायनिक खादों तथा कीटनाशक रासायनिकों का प्रयोग आदि,
- मौसम रूपान्तर कार्यक्रम– वर्षण को प्रेरित करने के लिये मेघ बीजन, बादलों तथा कुहरों को उनके विसरण द्वारा स्थान विशेष से दूर हटाना, उपल वृष्टि तथा
- नाभिकीय कार्यक्रम।

उल्लेखनीय है कि प्राकृतिक पर्यावरण में इस तरह के मानव–जनित परिवर्तनों के प्रभाव अल्पकाल में ही परिलक्षित हो जाते हैं परंतु ये परिवर्तन भौतिक पर्यावरण को दीर्घ काल तक प्रभावित करते रहते हैं।

पर्यावरण पर इन मानव–जनित प्रत्यक्ष प्रभावों की दूसरी प्रमुख विशेषता यह है कि ये प्रभाव उत्क्रमणीय या परिवर्तनीय होते हैं क्योंकि प्राकृतिक पर्यावरण को आर्थिक प्रयोजन से प्रभावित करने के पहले उसकी दशा तथा परिवर्तनों के बाद उत्पन्न दशाओं के अध्ययन के माध्यम से मनुष्य यह जान सकता है कि अमुक कार्यक्रम द्वारा प्राकृतिक पर्यावरण पर हुए प्रभाव कितने हानिप्रद हैं। इस जानकारी के बाद मनुष्य, यदि वह चाहे तो, प्रारंभिक कार्यक्रम में समुचित हेर–फेर तथा परिवर्तन करके उस कार्यक्रम द्वारा प्राकृतिक पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभावों को कुछ सीमा तक कम कर सकता है या उन्हें दूर कर सकता है। उदाहरण के लिए, वन विनाश, जो या तो कृषि भूमि में विस्तार के लिये या व्यापारिक उद्देश्य के लिये किया जाता है, के कारण मृदाक्षरण की दर में वृद्धि होती है। इस तरह मृदाक्षरण अवनलिका अपरदन का रूप धारण कर लेता है। अत्यधिक भूक्षरण के फलस्वरूप नदियों में अवसादों की मात्रा तथा भार बढ़ जाता है। नदियों के अवसादों से अतिभारित हो जाने के कारण उनकी तली का भराव हो जाने से नदी में जलधारण की क्षमता घट जाती है, परिणामस्वरूप विकट बाढ़ उत्पन्न होती है। इस प्रकार उत्पन्न बाढ़ के कारण अपार धन–जन की हानि होती है। इस तरह प्राकृतिक पर्यावरण के एक संघटक में परिवर्तन द्वारा उत्पन्न शृंखलाबद्ध प्रभावों को निर्वनीकृत क्षेत्रों में पुनः वृक्षारोपण द्वारा प्रभावी ढंग से रोका जा सकता है। इसी तरह यदि नयी कृषि–विधियों द्वारा दुष्प्रभाव होता है तो कृषि–विधियों में पर्यावरण एवं पारिस्थितिकीय दशाओं के अनुकूल पुनः परिवर्तन करके इन दुष्प्रभावों से छुटकारा मिल सकता है।

जहां तक स्थानीय एवं प्रादेशिक स्तर पर जलवायु में तथा मौसम में मानव द्वारा सोद्देश्य परिवर्तनों का सवाल है, इनके पश्चप्रभावों के विषय में पहले से विचार नहीं किया जाता है। उल्लेखनीय है कि मनुष्य के लिये ऋतुवैज्ञानिक प्रक्रमों को अनुशासित करना तथा उन पर पूर्ण स्वामित्व स्थापित करना संभव नहीं है क्योंकि 'वायुमण्डल में इन प्रक्रमों के नियंत्रण हेतु कोई स्थायी मार्ग तथा व्यवस्था नहीं है जैसा कि मशीनों तथा जीवधारियों में होती है। इसके बावजूद मनुष्य अवांछित प्राकृतिक वायुमण्डलीय प्रक्रमों तथा तूफानों को नियंत्रित कर सकता है या उनकी दिशा को बदल सकता है। ऋतुवैज्ञानिक तत्त्वों तथा प्रक्रमों में मनुष्य द्वारा किये जाने वाले सोद्देश्य परिवर्तनों में मेघबीजन सर्वप्रमुख है। मेघबीजन का प्रमुख उद्देश्य वर्षण की प्रक्रिया को प्रेरित करके अधिक जलवर्षा प्राप्त करना है। मेघबीजन की प्रक्रिया के अंतर्गत ठोस कार्बन डाईआक्साइड तथा आयोडीन के कुछ यौगिकों के प्रयोग द्वारा अतिशीतलित बूंदों का घनीभवन करना सम्मिलित होता है। कुछ सौ ग्राम ठोस कार्बन डाईआक्साइड या आयोडीन यौगिक के कुछ ग्राम जलबूंदों से युक्त अतिशीतलित बादलों के एक घन किलोमीटर भार के घनीभवन के लिए पर्याप्त होते हैं। मौसम–रूपान्तर तथा परिवर्तन का दूसरा प्रमुख क्षेत्र उपलवृष्टि के निरोधन या निवारण से सम्बन्धित है। उपलवृष्टि निवारण के कार्यक्रम कई देशों में चल रहे हैं। मौसम–परिवर्तन का तीसरा प्रमुख पक्ष बादलों तथा कुहरों को विसरित करके स्थान विशेष के आकाश को साफ रखने से सम्बन्धित रूप से हवाई पट्टी पर उतरने के लिये हवाई अड्डों को साफ रखने के लिए उनके ऊपर स्थित निम्न ऊँचाई वाले अतिशीतलित बादलों तथा कुहरों को विसरित किया जाता है। उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त प्रक्रियाओं में अर्थात् वर्षण को प्रेरित करने, बादलों को विसरित करने तथा कुहरों को नष्ट करके या विसरित करके आकाश को साफ करने के लिये अत्यधिक ऊष्मा की ऊर्जा का प्रयोग किया जाता है। यह ऊर्जा बाद में मुक्त होकर अतिरिक्त ऊर्जा के रूप में निचले वायुमण्डल को गरम करती है जिस कारण वायुमण्डल के ऊष्मा संतुलन में अव्यवस्था उत्पन्न हो सकती है तथा ऋतुवैज्ञानिक प्रक्रमों में परिवर्तन हो सकता है।

सिंचाई तथा पेयजल के लिये भूमिगत जल का निष्कासन प्रायः सभी देशों में किया जाता है परंतु भूमिगत जल के विदोहन का परिणाम इतना भयावह होता है कि वह मनुष्य तथा समाज के लिये विनाशकारी हो जाता है। ज्ञातव्य है कि भूमिगत जल के अधिकाधिक विदोहन के कारण सतह के नीचे वृहदाकार कोटर बन जाते हैं तथा बाद में कभी–कभी ऊपरी सतह धंसक जाती है। सागर तटीय स्थित भाहरों में पेयजल की प्राप्ति के लिये भूमिगत जल के विदोहन के कारण सतह के नीचे निर्मित कोटरों में सागर का खारा जल

प्रविष्ट हो जाता है जिस कारण भूमिगत जल दूषित हो जाता है। इस संदर्भ में ब्रुकलिन भाहर का उदाहरण भूमिगत जल के निष्कासन से पर्यावरण पर पड़ने वाले दुष्प्रभाव को प्रदर्शित करने के लिये पर्याप्त होगा। ब्रुकलिन भाहर, जो न्यूयार्का प्रांत के किंग्स काउण्टी में सागर तट पर स्थित है, के निवासियों के लिये पेयजल की आपूर्ति के लिये पम्पिंग सेटों द्वारा भूमिगत जल का निष्कासन प्रारंभ किया गया तथा वर्तमान भाताब्दी के प्रथम तीन दशकों तक यह कार्य बिना किसी दृश्य दुष्परिणाम के चलता रहा। मनुष्य को यह पता नहीं चल सका कि सतह के नीचे क्या हो रहा है। परंतु 1936 के अंत तक सतह के नीचे 5 मील व्यास वाले कोटर का निर्माण हो चुका था जो सागर तल से 35 फीट नीचे तक विस्तृत था। भूमिगत जल का विदोहन 75 बिलियन गैलन प्रतिदिन की दर से होता रहा जिस कारण भूमिगत जल के स्तर में निरंतर गिरावट होती गयी। भूमिगत जल के स्तर में गिरावट का दूसरा कारण यह भी था कि वर्षा के जल तथा हिम के पिघलने से प्राप्त जल के अंतः स्पन्दन के द्वारा भूमिगत जल के पुनः पूरण में कमी होती गयी क्योंकि बढ़ते नगरीकरण के फलस्वरूप अधिक से अधिक नगरीय क्षेत्रों के पक्का हो जाने के कारण जल के अंतःस्पन्दन में कमी होती गयी । इन सबका परिणाम यह हुआ कि सागर का खारा जल भाहर के नीचे निर्मित बृहदाकार कोटर में प्रवेश करने लगा तथा थोड़े समय के अंदर ही ब्रुकलिन भाहर के कुओं का जल दूषित हो गया। परिणामस्वरूप नगर प्रशासन को पेय जल के लिये भूमिगत जल के निष्कासन को स्थगित करना पड़ा तथा कुएं एवं पंम्रिग सेट बंद कर दिये गये। इस समस्या के निदान के लिये नये कुएं खोदे गये तथा इनके माध्यम से भाहर निवासियों द्वारा प्रयोग किये गये जल को सतह के नीचे पहुंचाया जाने लगा। इसका परिणाम यह हुआ कि 1965 तक भूमिगत जल के स्तर में तेजी से उभार होने लगा। भूमिगत जल के स्तर के ऊपर उठने की प्रवृत्ति 1970–80 के दशक तक कायम रही। परिणामस्वरूप भूमिगत जल का स्तर इतना ऊपर उठ गया कि वह इमारतों की नींव तक पहुंच गया जिस कारण इमारतें धंसने लगीं तथा कुछ गिर गयीं तथा अधिकांश क्षतिग्रस्त हो गयीं। उल्लेखनीय है कि ब्रुकलिन भाहर में धरातलीय सतह कानीचे कोटर के निर्माण के बावजूद धंवास नहीं हुआ था क्योंकि चट्टानें भारी तथा कठोर हैं।

भूमिगत जल के अत्यधिक निष्कासन के कारण स्थल का धंसाव भी होता है। विश्व के कई भागों में भूमिगत जल के अत्यधिक निष्कासन तथा विदोहन के कारण स्थलीय भाग में धंसाव की घटनायें हुई है। संयुक्त राज्य अमेरिका की सन जोवाकिन घाटी में कई स्थानों खासकर कैलिफोर्निया में 1 से 3 मीटर तक स्थल में धंसाव हुआ है। ज्ञातव्य है कि जलोढ़ निर्मित सन जोवाकिन बेसिन के विभिन्न क्षेत्रों में पम्पिंग द्वारा भूमिगत जल के निष्कासन के कारण भूमिगत जल के स्तर में 30 से 150 मीटर तक अवनयन होने के कारण धरातलीय सतह में धंसाव हुआ है। इसी तरह संयुक्त राज्य अमेरिका के ह्यूस्टन भाहर में 0.3 मी. से 1.0 मी. तथा मेक्सिको भाहर में 4 से 7 मी. तक धरातलीय सतह में धंसाव हुआ है। खनन कार्यों द्वारा भी धरातलीय सतह में धंसाव होता है।

निर्माण कार्यों के द्वारा सतह के नीचे स्थित भौलों के संतुलन में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती है जिस कारण भूकम्पीय घटनाओं का आविर्भाव हो जाता है। ज्ञातव्य है कि प्रमुख नदियों पर निर्मित बांधों के पीछे बनाये गये बृहद् जलभण्डारों में एकत्रित अपार जलराशि के भार के कारण उत्पन्न द्रवस्थैतिक दबाव नीचे स्थित भौलों को अव्यवस्थित कर देता है एवं धरातल के नीचे पूर्वस्थित भ्रशों को और अधिक सक्रिय कर देता है। इन कारणों के फलस्वरूप सामान्य से लेकर अधिक परिमाण वाली भूकम्पीय घटनायें प्रारंभ हो जाती हैं। इस तरह के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं–

- डेनवर में 1962 से भूकम्पीय घटनाओं की भाुरूआत का मुख्य कारण था, परित्यजन कुओं में 3600 मीटर की गहराई तक दबाव के द्वारा जल का पहुंचाया जाना। स्मरणीय है कि उक्त क्षेत्र में सतह के नीचे स्थित चट्टाने पहले से ही अवस्थित थीं। इस तरह 3600 मीटर की गहराई तक

जल के भराव के कारण पहले से ही अव्यवस्थित चट्टानों की समस्थिति और अधिक विक्षुब्ध हो गयी, जिस कारण भूकम्पीय घटनायें प्रारंभ हो गयीं।

- लास ऐन्जेलेस का 1963 का भूकम्प– (कैलिफोर्निया, सं. राज्य अमेरिका) का 1963 का भूकम्प (इस भूकम्पीय घटना के कारण इस प्रकार हैं– खनिज तेल के उत्पादन में वृद्धि के लिए खनिज तेल के कुंआं में द्रवस्थैतिक दाब को बढ़ाने के लिए पम्पिंग द्वारा जल पहुंचाया गया। इस तरह मानव द्वारा खनिज तेल के कुओं में द्रवस्थैतिक दाब में की गयी वृद्धि के कारण पूर्व स्थित भ्रशों में संचलन प्रारंभ हो गया जिस कारण अचानक असंतुलन के फलस्वरूप भूकम्पीय झटके प्रारंभ हो गये। इन भूकम्पीय झटकों द्वारा बाल्डविन हिल्स जलभण्डार की दीवालें फटकर टूट गयीं।
- मीडझील– के भूकम्प का मुख्य कारण था मीड जलभण्डार में संचित अपार जलराशि के दबाव के कारण नीचे स्थित भौलों की व्यवस्था में असंतुलन।
- जाम्बिया में जेम्बजी नदी पर निर्मित करीबा झील के जलीय भार के कारण उसके आस–पास के क्षेत्रों में भूकम्पीय घटनाओं की पुनरावृत्ति।
- भारत के महाराष्ट्र प्रांत के सतारा जिले में कोयना बांध के साथ निर्मित कोयना जलभण्डार के जलीय भार के कारण 11 दिसम्बर, 1967 का प्रलयकारी भूकम्प आदि।

मनुष्य, बाढ़–नियंत्रण के उपायों, जलभण्डार की रचना, नदी के जल को उसकी घाटी में ही सीमित करने के लिए तटबंधों तथा बाढ़–दीवालों के निर्माण, बाढ़–विपथगमन के तंत्रों, सरिता जलमार्ग में परिवर्तन आदि द्वारा नदी की प्राकृतिक व्यवस्था तथा उसकी पारिस्थितिकी में कई तरह से परिवर्तन करता है। मनुष्य द्वारा पर्यावरण पर अप्रत्यक्ष प्रभाव न तो पहले से सोचे गये होते हैं और न ही नियोजित होते हैं। पर्यावरण पर मानव के कार्य–कलापों से जनित अप्रत्यक्ष प्रभाव आर्थिक विकास की रफ्तार को तेज करने के लिये, खासकर औद्योगिक विकास में विस्तरण, मानव मनुष्य द्वारा किये गये प्रयासों तथा कार्यों के फलस्वरूप उत्पन्न होते हैं। यद्यपि आर्थिक विकास के लिये किये जाने वाले इस तरह के कार्य–कलाप आर्थिक रूप से महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं परंतु उनके द्वारा उत्पन्न होने वाले पश्चप्रभाव निश्चय ही सामाजिक दृष्टि से अवांछनीय हैं। आर्थिक क्रिया–कलापों से जनित पर्यावरण पर पड़ने वाले मनुष्य के अप्रत्यक्ष प्रभाव भीघ्र परिलक्षित नहीं होते हैं। इसका प्रमुख कारण है आर्थिक क्रियाओं तथा उनसे उत्पन्न होने वाले परिणामों में समय–शिथिलता। अर्थात् आर्थिक क्रिया–कलापों द्वारा पारिस्थितिक तंत्र के कुछ संघटकों में सामान्य स्तर के मंद गति वाले परिवर्तन होते हैं तथा ये परिवर्तन पारिस्थ्ज्ञितिक तंत्र की संवेदनशीलता को पार करने में दीर्घ समय लेते हैं। पुनश्च, ये मंद गति से होने वाले परिवर्तन दीर्घ काल तक संचयित होते रहते हैं तथा जब वे पारिस्थितिक तंत्र की इन परिवर्तनों को आत्मसात करने की क्षमता से अधिक हो जाते हैं तब उनका प्रभाव लोगों के सामने आता है। कभी–कभी इस तरह के प्रभाव उत्क्रमणीय नहीं होते हैं, अतः उनकी पहचान तथा उनका मूल्यांकन करना दुष्कर हो जाता है। इस तरह के प्रत्यक्ष संचयी प्रभाव पारिस्थितिक तंत्र के एक या अधिक संघटकों या सम्पूर्ण प्राकृतिक तंत्र को परिवर्तित कर देते हैं, जो मानव वर्ग के लिये घातक एवं जानलेवा हो जाता है। मनुष्य के द्वारा प्राकृतिक पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों में से अधिकांश पर्यावरण अवनयन तथा प्रदूषण से सम्बन्धित होते हैं।

कीटनाशक रासायनिक दवाओं, रासायनिक उर्वरकों आदि के प्रयोग के माध्यम से जहरीले तत्वों के पारिस्थितिक तंत्र में विमोचन द्वारा आहार शृंखला तथा आहार जाल में परिवर्तन हो जाता है। इस संदर्भ में डी.डी.टी. सबसे अधिक जहरीला तत्व होता है। इसी तरह औद्योगिक संस्थानों से निकले उच्छिष्ट या अपशिष्ट पदार्थों के स्थिर जल, नदियों के जल एवं सागरीय जल में विमोचन के कारण जल दूषित हो जाता है जिस कारण कई तरह के रोग उत्पन्न हो जाते हैं तथा जलस्थित अनेकों जीवधारियों की मृत्यु हो जाती

है। इस तरह से जल को दूषित करने वाले कारखानों से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थों में प्रमुख हैं– कारखानों से निकले कचरों की जल में धुलाई तथा उनका जल में ढेर लगाना, अस्बेस्टस की झांई का जल में विमोचन तथा संचयन, जहरीले मिथाइल रूप में पारे का विमोचन, तेल वाहक जलयानों से खनिज तेल का सागरीय जल में रिसाव, सीसे का विमोचन, धुले हुए अकार्बनिक तत्वों का विभिन्न मात्रा में मिश्रण आदि।

एम.सी. सक्सैना ने कई तरह के रसायनों, कीटनाशक दवाओं तथा रासायनिक उर्वरकों के असंयमित एवं अत्यधिक प्रयोग से उत्पन्न होने वाले पर्यारणीय प्रदूषण के प्रति लोगों को आगाह तथा सतर्क किया है। इनके अनुसार प्रतिवर्ष मनुष्य द्वारा 2000 रसायनों का पर्यावरण में विमोचन किया जाता है इनके मतानुसार ये जहरीले तत्व महिलाओं की गर्भ नली से होते हुए उनके गर्भाशय में पनपते हुए भ्रूंड तक पहुंच जाते हैं जिस कारण महिलाओं में गर्भपात तथा समय से पहले प्रसव हो जाता है। नगरीकरण में वृद्धि तथा औद्योगिक विस्तार के कारण प्रदूषण करने वाले तत्वों का अधिकाधिक मात्रा में पारिस्थितिक तंत्र में विमोचन हो रहा है तथा इनकी मात्रा में दिनों–दिन तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। इस तरह के प्रदूषणकर्ता तत्वों में प्रमुख हैं– क्लोरीन, सल्फेट, बाईकार्बोनेट, नाइट्रेट, सोडियम, मैग्नेशियम, फास्फेट आदि के आयन। इस तरह के प्रदूषण कर्ता तत्व नगरों तथा कारखानों से निकलने वाले कचरा तथा गंदे जल के नालों के माध्यम से जलाशयों, झीलों तथा नदियों तक पहुंचते हैं तथा उनके जल को दूषित करते हैं।

विकसित देशों एवं कतिपय विकासशील देशों की प्रमुख नदियां नगरों तथा कारखानों से आने वाले कचरों तथा गंदे जल के कारण प्रदूषित हो गयी हैं। घने बसे देशों तथा औद्योगिक रूप से विकसित देशों से होकर बहने वाली नदियां अपने स्वाभाविक प्राकृतिक स्वरूप को खो चुकी हैं तथा परिवहन जल तथा भाक्ति के तंत्रों एवं मलवाहक नालों के रूप में परिवर्तित कर दी गयी हैं। दिल्ली के पास यमुना नदी, वास्तव में, एक गंदा नाला बन चुकी है जबकि दिल्ली महानगर से 17 नालों के माध्यम से 323 मिलियन गैलन गंदा जल प्रतिदिन यमुना में प्रवेश करता है। दिल्ली भाहर में गंदे जल की भाुद्धीकरण के लिये दिल्ली नगरपालिका द्वारा स्थापित सभी संयत्रों की कुल भाोधन क्षमता मात्र 180 मिलियन गैलन प्रतिदिन है। पर्यावरण नियंत्रण के विशेषज्ञों के अनुसार दिल्ली भाहर में प्रवेश करने के पहले यमुना नदी के प्रति 100 मिलीलीटर जल में बीमारी पैदा करने वाली 7500 बैक्टीरिया होती है। दिल्ली भाहर के गंदे जल के मिलने पर यमुना नदी के प्रति 100 मिलीलीटर जल में इनकी मात्रा बढ़कर 24 मिलियन हो जाती है। कानपुर भाहर के 151 चमड़े के कारखानों से निस्तृत 5.8 मिलियन लीटर गंदा जल प्रतिदिन गंगा नदी में जाता है जिस कारण गंगा नदी का जल वहां पर प्रदूषित हो गया है। इसी तरह लखनऊ भाहर के पास गोमती नदी का जल भाहर से आने वाले गंदे जल के कारण इतना अधिक प्रदूषित हो गया है कि नदी के जल में रहने वाले अधिकांश जीव मर चुके हैं। भारत के विभिन्न क्षेत्रों से इस तरह के अनेक उदारहण प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

नगरीकरण, औद्योगिक विस्तार तथा भूमि उपयोग में परिवर्तनों के कारण मौसम तथा जलवायु में भी परिवर्तन होते हैं यद्यपि ये परिवर्तन दीर्घ काल के बाद परिलक्षित होते हैं। मनुष्य की आर्थिक क्रियायें पृथ्वी तथा वायुमण्डल के ऊष्मा संतुलन को प्रभावित करने में समर्थ है। इस तरह ऊष्मा संतुलन में परिवर्तन, यदि यह बड़े पैमाने पर होता है, के कारण प्रादेशिक तथा विश्व स्तरों पर मौसम तथा जलवायु में रूपान्तर हो सकता है। वास्तव में मनुष्य मौसमी दशाओं को निम्न रूपों में प्रभावित करता है– 1. वायुमण्डल के निचले स्तर में उसके प्राकृतिक गैसीय संघटन में परिवर्तन द्वारा, 2. परिवर्तन मण्डल एवं समताप मण्डल में प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष साधनों से जलवाष्प की मात्रा में परिवर्तन द्वारा, 3. धरातलीय सतह में परिवर्तन तथा रूपान्तर द्वारा, 4. निचले वायुमण्डल में वायुधुंध के प्रवेश द्वारा, 5. नगरीय, औद्योगिक आदि स्रोतों से वायुमण्डल में अतिरिक्त ऊर्जा के विमोचन द्वारा आदि।

हाइड्रोकार्बन ईंधनों के जलाने से वायमुण्डल में कार्बन डाई आक्साइड के सान्द्रण में वृद्धि हुई है। वायुमण्डल में औद्योगिक क्रांति के पहले वायुमण्डल में कार्बन डाईआक्साइड मौलिक मात्रा थी परंतु वर्तमान समय में वायुमण्डल में कार्बन डाईआक्साइड के सान्द्रण का स्तर 0.0319 प्रतिशत या 319 पीपीएम आंका गया है। यह अनुमान किया गया है कि वर्तमान सदी के अंत तक वायुमण्डलीय CO_2 का सान्द्रण 0.0370 प्रतिशत या 370 पीपीएम तक हो जायेगा जो औद्योगिक क्रांति के पूर्व CO_2 के स्तर में 25 प्रतिशत की वृद्धि का द्योतक है। ज्ञातव्य है कि वायुमण्डलीय CO_2 में वृद्धि होने से वायुमण्डल के ऊष्मा संतुलन में परिवर्तन हो सकता है क्योंकि CO_2 पार्थिव विकिरण का अवशेषण करके वायुमण्डल तथा पृथ्वी क सतह को गरम करती है। मानव कार्यों द्वारा ओजोन गैस में निम्न रूपों में रिक्तता हो रही है– स्प्रेकैन डिसपेन्सर में प्रयुक्त प्रणेदकों तथा रेफ्रीजरेटरों एवं एयरकण्डीशनरों में प्रयुक्त तरल पदार्थों के माध्यम से वायमुण्डल में क्लोरोफ्लूरोकार्बन के वायुमण्उल में विमोचन द्वारा तथा वायुमण्डल में 20–22 किलोमीटर की ऊँचाई पर ध्वनि की गति से दुगुनी गति से उड़ने वाले सुपरसानिक जेट विमानों से निस्तृत नाइट्रोजन आक्साइड्स के कारण ओजोन का O_3 तथा O में विघटन हो जाता है और इस प्रकार ओजोन का रिक्तीकरण होता रहता है। ज्ञातव्य है कि ओजोन गैस पृथ्वी पर वनस्पतियों तथा जंतुओं के लिये रक्षा कवच है क्योंकि यह सूर्य की पराबैंगनी किरणों को सोख लेती है तथा पृथ्वी की सतह को अत्यधिक गरम होने से बचाती है। इस तरह ओजोन की रिक्तता का परिणाम यह होगा कि सूर्य की पराबैंगनी किरणों का वायमुण्डल में अवशेषण घटता जायेगा तथा भूतल के तापमान में वृद्धि होती जायेगी। इस तरह धरातल पर वायु के तापमान में आवश्यकता से अधिक वृद्धि का परिणाम होगा– चर्म कैन्सर में वृद्धि, मानव भारीर में प्रतिरक्षण क्षमता में ह्रास, प्रकाश संश्लेषण, जल ग्रहण की क्षमता तथा फसलोत्पादन में ह्रास। सागरीय पर्यावरण पर भी ओजोन की रिक्तता के कारण तापमान में वृद्धि का दूरगामी दुष्प्रभाव होगा क्योंकि प्रकाश संश्लेषण में कमी के कारण फाइटोप्लैंकटन की उत्पादकता में ह्रास होगा। इस स्थिति के कारण जूप्लैंकटन में भूखमरी हो जायेगी। इसके द्वारा जूप्लैंकटन के लारवा की मर्त्यता भी प्रभावित होती है। सागरीय पारिस्थितिक तंत्र की जातियों के संघटन में भी परिवर्तन हो सकता है क्योंकि कुछ जातियां पराबैंगनी विकिरण को सहन नहीं कर सकतीं। पराबैंगनी विकिरण फोटोकेमिकल प्रक्रियाओं को भी तेज कर देता है जिस कारण जहरीला कुहरा बनता है।

5- vH;kl i'u

fucU/kkRed i'u

1. मनुष्य और पर्यावरण के अंर्तसंबंधों की विविध दृष्टिकोणों से विवेचना करो।

y?kqÙkjkRed i'u

1. मनुष्य की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति से किस प्रकार पर्यावरण को क्षति पहुंचाती हैं?
2. भारत में मानवीय विकास की स्थिति को समझाइये।

vfr y?kqÙkjkRed i'u

1. मानव–पर्यावरण के बिगड़ते संबंधों का मूल कारण है–

   (a) जागरूकता का अभाव (b) प्रौद्योगिकी

   (c) भौतिकता (d) उपरोक्त सभी

2. निम्न में से आधुनिकता का प्रतीक है –

   (a) उद्योग (b) यातायात

   (c) व्यापार (d) उपरोक्त सभी

3. कौन–सी चिकित्सा पद्धति मानव–प्रकृति अंतरप्रक्रिया पर आधारित है?

(a) आयुर्वेद (b) ऐलोपैथी

(c) होम्योपैथी (d) उपरोक्त में से कोई नहीं।

4. किस देश की विशिष्ट आदिवासी जातियां पूर्णतः पशुपालन से अपना जीवन–यापन करती है?

(a) भारत (b) मध्य एशिया

(c) अफ्रीका (d) इण्डोनेशिया

5. मान प्रकृति के सम्बन्ध में सहभागिता का युग किस काल को कहा जाता है?

(a) पौधपालन व कृषि (b) आखेट और भोजन संग्रह काल

(c) विज्ञान, तकनीक एवं औद्योगिक काल (d) पशुपालन व पशुचारण काल

6. मानवीय सूचकांक की दृष्टि से निम्न में से कौन–सा राष्ट्र सबसे निचले स्तर पर है?

(a) जापान (b) अमेरिका

(c) कनाड़ा (d) भारत

7. मनुष्य की सभ्यता ..... सहयोग पर आधारित है।

8. ..... मनुष्य की आधारभूत आवश्यकता है।

9. ..... आचरण नियंत्रक व्यवस्था है।

10. ..... मानव का नैसर्गिक गुण है।

इकाई – 3

पर्यावरण अवनयन के कारक

mí';

1. पर्यावरण ह्रास के स्वरूप को जानना।
2. पर्यावरण को क्षति पहुंचाने वाले कारकों का परिचय प्राप्त करना।
3. भारत के संदर्भ में ऊर्जा संकट, पर्यावरण प्रदूषण जैसी समस्याओं का आकलन करना।

संरचना

1. औद्योगिकीकरण
    - 1.1 औद्योगिकीकरण जनित समस्यायें
        - 1.1.1 प्रदूषण की समस्या
        - 1.1.2 नगरीकरण की समस्या
        - 1.1.3 औद्योगिक त्याज्य सामग्री के निबटारे की समस्या
        - 1.1.4 ऊर्जा संकट की समस्या
        - 1.1.5 संसाधन दोहन की समस्या
        - 1.1.6. मानव श्रम और परिवहन की समस्या
    - 1.2 तकनीकीकरण का प्रभाव
2. वन विनाश
    - 2.1 वन विनाश के कारण
    - 2.2 वन विनाश के दुष्परिणाम
    - 2.3 वन संरक्षण
3. शहरीकरण/नगरीकरण
    - 3.1 शहरीकरण/नगरीकरण के कारण
        - 3.1.1. प्रव्रजन
        - 3.1.2. औद्योगिक विकास
        - 3.1.3 दोषपूर्ण नगर योजना
        - 3.1.4. निहित स्वार्थ की शक्तियां
    - 3.2 नगरीकरण की समस्या
        - 3.2.1 आवास समस्या
        - 3.2.2 गंदी बस्तियों का विस्तार

3.2.3 यातायात की समस्याएं

3.2.4 जल आपूर्ति की समस्या

3.2.5 विद्युत आपूर्ति की समस्या

3.2.6 प्रदूषण की समस्या

3.2.7 सामाजिक बुराइयां

3.3 नगरीकरण के सामाजिक प्रभाव

3.3.1. नगरीकरण और परिवार

3.3.2. नगरीकरण और जाति

3.3.3. नगरीकरण और महिलाओं की स्थिति

3.3.4 नगरीयता विचार और परम्पराएं

3.4 नगरीकरण और ग्रामीण जीवन

3.5 भारत की नगरीय समस्याएं

3.6 बढ़ता शहरीकरण एवं बिगड़ता पारिस्थितिकी–संतुलन

3.6.1 प्रदूषित वातावरण

3.6.2 शुद्ध पेयजल की कमी

3.6.3 धुआं और ध्वनि–प्रदूषण

3.6.4 वृक्षों की निर्मम कटाई

4. जनसंख्या वृद्धि

5. प्रदूषण

5.1 वायु–प्रदूषण

5.1.1 वायु प्रदूषण के कारण

5.1.1.1. प्राकृतिक स्रोत

5.1.1.2. मानवीय स्रोत

5.1.2 वायु प्रदूषण का प्रभाव

5.1.2.1. मानव स्वास्थ्य पर

5.1.2.2. कीटों व वन्य जीवों पर प्रभाव

5.1.2.3. वनस्पतियों पर प्रभाव

5.1.2.4. पर्यावरण पर प्रभाव

5.1.2.5 ओजोन परत पर प्रभाव

5.1.2.6.स्मारकों पर प्रभाव

5.1.3 वायु प्रदूषण नियंत्रण के उपाय

5.2 जल प्रदूषण

5.2.1 जल–प्रदूषण के कारण

5.2.1.1 जल प्रदूषण के प्राकृतिक कारण

5.2.1.2 जल प्रदूषण के मानव जनिक स्रोत

5.2.2 जल–प्रदूषण के प्रभाव

5.2.2.1 मानव पर प्रत्यक्ष प्रभाव

5.2.2.2 जल जीवों पर प्रभाव

5.2.2.3 अन्य जीवों पर प्रभाव

5.2.2.4 वनस्पतियों पर प्रभाव

5.2.3 जल–प्रदूषण नियंत्रण के उपाय

5.3 मृदा प्रदूषण

5.3.1 मृदा–प्रदूषण के कारण

5.3.2 मृदा प्रदूषण के प्रभाव

5.3.3 मृदा–प्रदूषण, नियंत्रण के उपाय

5.4 समुद्री प्रदूषण

5.4.1 समुद्री प्रदूषण के कारण

5.4.2 समुद्री प्रदूषण का प्रभाव

5.4.3 समुद्री–प्रदूषण नियंत्रण के उपाय

5.4.4 सागरीय प्रदूषण के कारण घटी कुछ दुर्घटनायें

5.5 ध्वनि प्रदूषण

5.5.1 शोर–प्रदूषण के स्रोत

5.5.1.1 आवागमन के साधनों द्वारा

5.5.1.2.औद्योगिक इकाईयों व मशीनों द्वारा

5.5.1.3 बड़ी इमारतें सड़कें, फ्लाई ओवर आदि के दौरान

5.5.1.4 मनोरंजन के साधनों व सामाजिक क्रियाकलापों में

5.5.2 शोर प्रदूषण के प्रभाव

5.5.3 शोर प्रदूषण नियंत्रण

5.6 तापीय प्रदूषण

5.6.1 तापीय प्रदूषण के कारण

5.6.2 तापीय प्रदूषण के प्रभाव

5.6.3 ताप प्रदूषण के नियंत्रण के लिये राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय प्रयास

5.7 नाभिकीय प्रदूषण

5.7.1 नाभिकीय प्रदूषण के कारण

5.7.2 नाभिकीय प्रदूषण के प्रभाव

5.7.3 नाभिकीय–प्रदूषण नियंत्रण के उपाय

5.8 प्रदूषण–निवारण में एक नागरिक योगदान

5.9 प्रदूषण : कुछ घटनाएं

6. गरीबी

6.1 गरीबी की व्यापकता

6.1.1 पी.डी. ओझा के अनुमान

6.1.2 दांडेकर और रथ के अनुमान

6.1.3 प्रणव के बर्धन के अनुमान

6.1.4 बी.एस. मिन्हास के अनुमान

6.2 गरीबी के कारण

6.2.1 आर्थिक कारक

6.2.1.1 राष्ट्रीय उत्पाद का निम्न स्तर

6.2.1.2 विकास की कम दर

6.2.1.3 कीमतों में वृद्धि

6.2.1.4 जनसंख्या का अधिक दबाव

6.2.1.5 निरन्तर रहने वाली बेरोजगारी

6.2.1.6 पूंजी की अपर्याप्तता

6.2.1.7 कुशल श्रम व तकनीकी ज्ञान की कमी

6.2.1.8 योग्य व निपुण उद्यमकर्ताओं का अभाव

6.2.1.9 उचित औद्योगिकरण का अभाव

6.2.1.10 पुरानी सामाजिक संस्थाएं

6.2.1.11 प्राकृतिक साधनों का उचित प्रयोग न होना

6.2.1.12 आधारिक संरचना के समुन्नत साधनों का अभाव

6.2.1.13 स्फीतिकारी दबाव

6.2.2 गैर–आर्थिक कारण

6.2.2.1 ब्रिटिश शासन की विरासत

6.2.2.2 जनसंख्या में तेजी से वृद्धि

6.2.2.3 सामाजिक कारण

6.3 भारत में गरीबी से सम्बन्धित कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य

6.3.1. अल्प प्रति व्यक्ति आय

6.3.2.रहन–सहन का नीचा स्तर

6.3.3 आवास

6.4 भारत में गरीबी–उन्मुलन के उपाय

6.4.1. जनसंख्या नियंत्रण

6.4.2. आय का पुनर्वितरण

6.4.3. विकास की ऊंची दर

6.4.4. कृषि का विकास

6.4.5. कुटीर व लघु उद्योगों का विकास

6.4.6. सामाजिक भागीदारी

6.4.7. छिपी हुई बेरोजगारी की समाप्ति और रोजगार में वृद्धि

6.4.8. उत्पादन की तकनीकों में परिवर्तन

6.4.9. पिछड़े क्षेत्रों पर विशेष ध्यान

6.4.10. न्यूनतम आवश्यकताओं की संतुष्टि

6.4.11. निर्धनों की उत्पादकता में वृद्धि

6.5 गरीबी और आर्थिक नियोजन

7. ऊर्जा संकट

7.1 ऊर्जा के मुख्य स्रोत

7.1.1. कोयला

7.1.2. तेल और प्राकृतिक गैस

7.1.3 ऊष्मीय शक्ति

7.1.4. ईंधन

7.1.5. जल–शक्ति

7.1.6. नाभिकीय शक्ति

7.2 ऊर्जा के अरूढ़ स्रोत

7.2.1. सौर ऊर्जा

7.2.2. वात ऊर्जा

7.2.3. महासागरीय (ज्वारीय) ऊर्जा

7.2.4. भूतापीय ऊर्जा

7.3 जीवभार–आधारित ऊर्जा

7.3.1. पेट्रोपादक

7.3.2. बायोगैस

7.3.3. वृक्षीय उष्णता सम्बन्धी ऊर्जा

7.3.4. नगरीय अपशिष्ट से ऊर्जा

7.3.5. खोई पर आधारित संयंत्र

7.4 वाणिज्य ऊर्जा का विश्व कथानक

7.5 भारत में ऊर्जा कथानक

7.6 ऊर्जा संकट

7.7 भारत में ऊर्जा संकट की स्थिति

8. अभ्यास प्रश्न

पर्यावरण और पारिस्थितिकी की कार्य प्रणाली प्रकृति के स्वनियमन द्वारा संचालित होती है। पर्यावरण के तत्व पारिस्थितिकी का नियंत्रण कर जीवन विकास के लिए आवश्यक परिस्थितियां बनाने का प्रयास करते हैं। यह व्यवस्था तब तक चलती रहती है जब तक पर्यावरण में संतुलन बना रहता है अर्थात् पर्यावरण के तत्व अपने गुण के अनुसार आपस में तथा जैवीय तत्वों के साथ परस्पर क्रिया करते हैं। लेकिन जब भौतिक या मानवीय कारणों से पर्यावरण के किसी तत्व को क्षति पहुंचती है तो पहले वह स्वनियामक व्यवस्था के अंतर्गत संतुलित होने का प्रयास करता है। लेकिन जब उसकी सहन सीमा से अधिक आघात का प्रभाव होता है तो उसका संतुलन बिगड़ने लगता है। ऐसी स्थिति तब प्रकट होती है जब जाने–अनजाने मानव ऐसे पर्यावरणीय तत्वों के साथ दुर्व्यवहार करने लगता है। कभी–कभी भौतिक कारणों से भी ऐसी स्थिति बन जाती है। लगातार जब पर्यावरण के तत्वों की अवमानना होने लगती है तो पर्यावरण ह्रासमान होने लगता है। पर्यावरण का ह्रास पारिस्थितिकी का संतुलन बिगाड़ देता है क्योंकि पारिस्थैतिकी पर्यावरण के सहयोग से कार्य करती है। पर्यावरण के ह्रास से जीवन की गुणवत्ता घटने लगती है जिसके कारण नये मूल्यों का सृजन होता है। जब गतिरोध बढ़ने लगता है तो विकास की सारी प्रक्रिया उल्टी दिशा में मुड़ने लगती है जो अवनति का मार्ग प्रशस्त करती है। ध्यातव्य है कि प्रकृति का लक्ष्य उन्नति का है अवनति का नहीं।

आदिकाल से आधुनिक काल तक मानव समाज ने अपनी उन्नति को सतत बनाये रखने के लिए विविध प्रयोग किये हैं। मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति के लिये भौतिक संसाधनों का प्रयोग मानव के ज्ञान–विज्ञान और तकनीकी विकास पर आधारित रहा है। जब तक प्रकृति के सहयोग से मानव अपनी आवश्यकता की आपूर्ति करता रहा है तब तक पर्यावरण और पारिस्थैतिकी संतुलित चलती रही है। लेकिन आधुनिक समाज में बढ़ती जनसंख्या, बढ़ता भौतिकवाद, उच्च तकनीक और प्रकृति के प्रति उपेक्षापूर्ण व्यवहार के कारण प्रगति की रफ्तार को इतना तीव्र बना दिया गया कि उसका कुप्रभाव पड़ने लगा। संसाधन दोहन, अत्यधिक ऊर्जा प्रयोग, औद्योगिकरण, शहरीकरण, सौर्य मण्डलीय क्रिया–कलाप और प्रकृति के प्रति बढ़ती

उपेक्षा पर्यावरण ह्रास की एक ऐसी विकट परिस्थिति पैदा कर दी है जिसके सम्बन्ध में आज सोचना आवश्यक हो गया है।

पर्यावरण अजैविक और जैविक संघटकों का एक ऐसा समुच्चय है जो जीवधारियों के जीवन विकास के लिए अनुकूल आवास प्रदान करता है। इस आवास की सुरक्षा के लिए पर्यावरण के तत्व निरन्तर क्रियाशील रहते हैं और साथ ही आपसी तालमेल बनाये रखते हैं लेकिन जब पर्यावरण के तत्व अपने स्वाभाविक गुण के विपरीत जीवधारियों पर प्रभाव डालते हैं तो जीवधारियों का जीवन संकटमय हो जाता है। पर्यावरण के इसी परिवर्तित स्थिति को पर्यावरणीय अवक्रमण या पर्यावरण ह्रास कहा जाता है। पर्यावरण ह्रास तक शुरू होता है जब जीवधारी विशेषकर मनुष्य उसकी अवमानना करने लगता है। इस क्रम में पर्यावरण के प्रति किये गये अमैत्रीपूर्ण कार्य यथा प्रदूषण, वन विनाश, अधिक जनभार, संसाधनों का अनुचित दोहन एवं अन्य प्रकार के छेड़–छाड़ उसकी सहन सीमा से अधिक हो जाता है, जिसके फलस्वरूप पर्यावरण के तत्व पंगु होने लगते हैं। इसका सीधा प्रभाव पारिस्थैतिकी पर पड़ता है। पारिस्थैतिकी के असंतुलन से पर्यावरण के ह्रास का आभास होता है। स्पष्ट है कि पर्यावरण के ह्रास के लिए मानव सबसे बड़ा कारण है। उदाहरण के लिये वनों की अंधाधुंध कटाई, औद्योगिक विकास, नगरीकरण और बढ़ती जनसंख्या के कारण पर्यावरण प्रदूषण घातक अवस्था तक पहुंच गया है। प्रदूषण से पर्यावरण के अनेक तत्व, वायु, जल, मृदा आदि अपने स्वाभाविक गुण खोते जा रहे हैं। वनस्पति विनाश से जलवायु और मौसम का रुख बदल रहा है। भूमिक्षरण और बाढ़ का प्रकोप बढ़ता जा रहा है। जब ऐसी घटनायें बढ़ती हैं तो पर्यावरण प्रबन्ध की आवश्यकता बढ़ जाती है।

पर्यावरण के ह्रास की प्रक्रिया दो प्रकार से कार्य करती है। जब प्राकृतिक पर्यावरण का मानवोचित क्रियाकलापों पर प्रभाव पड़ता है तो उस प्रभाव को अनुकूल बनाने के लिए मानव पर्यावरण को प्रभावित करता है। परस्पर प्रभाव की प्रक्रिया जब स्वाभाविक सीमा में आबद्ध रहती है तो पारिस्थैतिकी संतुलन बना रहता है। लेकिन जब मानवीय प्रभाव सीमा का अतिक्रमण करता है तो वातावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ने लगता है। इससे प्रकृति के तत्व स्वयं कुंठित होकर कुप्रभाव को जन्म देते हैं। जब हम पर्यावरणीय संसाधनों का दोहन करते हैं तो एक स्थिति यह भी आ जाती है जब उस संसाधन की कमी होने के बावजूद हम उसके विदोहन को बनाये रखना चाहते हैं। यह क्रिया पर्यावरण को पंगु बना देती है। अतः जब मानवीय क्रियाकलापों का बोझ प्राकृतिक संसाधनों पर बढ़ता जाता है तो उसकी क्रियाशीलता घटने लगती है जिससे पर्यावरण का ह्रास होने लगता है। उदाहरण के लिए यदि बढ़ती जनसंख्या के भरण पोषण हेतु मिट्टी का उपयोग बढ़ता चला जाय और उत्पादन को बनाये रखने के लिए विविध रासायनिक खादों का उपयोग किया जाता रहे तो एक दिन ऐसा भी आ सकता है कि मिट्टी की उत्पादकता बिल्कुल घट जाय। ऐसी स्थिति में मिट्टी थक जाती है। मिट्टी के कम उत्पादन की स्थिति में हम अन्य संसाधनों का अधिक उपयोग करने लगते हैं जो दुरुपयोग की स्थिति तक पहुंच सकता है। इससे पर्यावरण के अनेक तत्व अस्वाभाविक ढंग से कार्य करने लगते हैं।

वर्तमान शताब्दी जहां एक ओर आर्थिक–सामाजिक, तकनीकी और वैज्ञानिक उपलब्धियों के लिए गौरवान्वित है वहीं अनेकानेक पर्यावरणीय समस्याओं के कारण दुविधा की शताब्दी है। इस दुविधा का प्रमुख कारण मानव–प्रकृति का बिगड़ता सम्बन्ध है। अतः यह आवश्यक है कि पर्यावरण के ह्रास के कारणों को ठीक से समझा जाय जो इस सम्बन्ध को बिगाड़ रहे हैं। पर्यावरण ह्रास मानव की महत्वाकांक्षी विकास योजनाओं, प्रकृति के प्रति निष्ठुरता, तकनीकी वैज्ञानिक प्रयोग, अज्ञानता, गरीबी, तीव्र जनवृद्धि, अधिक पशुपालन आदि कर्मों से जुड़ा है। आज विश्व के अनेक मंचों पर पर्यावरण के ह्रास की बात उठाई जा रही है। अध्ययनों के आधार पर निम्न कारणों को सूचीबद्ध किया गया है जो पर्यावरण ह्रास के लिये जिम्मेदार है–

1. औद्योगिकीकरण
2. वन विनाश
3. नगरीकरण
4. जनसंख्या वृद्धि
5. प्रदूषण
6. निर्धनता
7. ऊर्जा संकट

1. औद्योगिकीकरण

आधुनिक औद्योगिक विकास का प्रारंभ उन्नीसवीं सदी के मध्य औद्योगिक क्रांति से शुरू हुआ जब वस्तु निर्माण में यंत्रों और ऊर्जा के साधनों का प्रचुर मात्रा में उपयोग प्रारंभ हुआ। अधिक उत्पादन के लिए नित्य नये प्रयोग, शोध और तकनीकी सुधार के द्वारा पश्चिमी देशों में नई संस्कृति का उदय हुआ जिसे औद्योगिक संस्कृति का नाम दिया गया। केवल सौ वर्षों की अवधि में औद्योगिक उत्पादन में संलग्न देश विश्व के अग्रणी समुन्नत देश बन गये हैं। इस औद्योगिक विकास ने आर्थिक–सामाजिक कार्यों में नये आयाम का सृजन किया यथा नगरीकरण, यातायात विकास, व्यावसायिक कृषि, व्यापारिक पशुपालन, खनिज उत्पादन, ऊर्जा दोहन, वनस्पति दोहन और भौतिक सुख आधारित समाज की रचना। इस क्रम में मानव प्रकृति की अंतप्रर्क्रिया, जो भौगोलिक अध्ययन का आधार है का स्वरूप बदल गया और अंततः प्रकृति के साथ मानव का सम्बन्ध इतना बदल गया कि औद्योगिक विकास अभिशाप लगने लगा है। हम भूल गये हैं कि प्रकृति अपने ढंग से पर्यावरण का नियमन करती है तथा उसके तत्त्वों की एक निश्चित सहन सीमा होती है। उत्पादन बढ़ाकर अधिक भौतिक सुख की आकांक्षा में औद्योगिक समाज ने अपने जल, मृदा, वायुमण्डल और अन्य जीवनदायी भौतिक तत्त्वों को प्रदूषित कर दिया है। औद्योगिक देशों में बढ़ता प्रदूषण, प्राकृतिक संकट और सांस्कृतिक समस्यायें न केवल उनके लिए खतरा पैदा करने लगी है अपितु इससे सारा विश्व प्रभावित होने लगा है। औद्योगिक देशों द्वारा प्रयुक्त ऊर्जा साधनों की बढ़ती दर के कारण जहां ऊर्जा संकट उत्पन्न हुआ है वहीं इनसे उत्पन्न कार्बनडाई आक्साइड और ऐसी हजारों जहरीली गैसें वातावरण को असंतुलित कर रही है जिससे पारिस्थैतिकी की समस्या उत्पन्न हो रही है। ऐसे देशों में सांस लेने के लिए स्वच्छ हवा, पीने के लिए शुद्ध जल और खाने के लिए अप्रदूषित सामग्री का संकट उत्पन्न होने लगा है। वर्षा जल के साथ मिला अम्ल वनस्पतियों को जलाने लगा है। यह सर्वविदित है कि औद्योगिक उत्पादन की बढ़ोतरी के लिए अधिकाधिक कच्चा माल, पर्याप्त परिवहन के साधन, श्रम, पूंजी, शक्ति और बाजार की आवश्यकता होती है। अनेक खनिज पदार्थो का भण्डार सीमित है जिनका दोहन संकट बिंदु तक पहुंच गया है। परिवहन विस्तार के कारण ऊर्जा की खपत दिनों–दिन बढ़ती जा रही है। उद्योगों में कार्यरत श्रमिक अनेक विषैली वस्तुओं के प्रभाव में आकर अपना स्वास्थ्य कमजोर कर रहे हैं। बाजार की खोज में औद्योगिक देश आपसी स्पर्धा से टकराव की स्थिति उत्पन्न कर रहे हैं और गरीब देशों का शोषण कर रहे हैं। स्पष्ट है कि औद्योगिक संस्कृति की विकृतियां समाज के सामने उलझने पैदा कर रही हैं। इस प्रकार औद्योगिक विकास ने एक ऐसी मनःस्थिति पैदा कर दी है जो भस्मासुर के समान स्वविनाश की ओर अग्रसर है।

1.1 औद्योगिकीकरण जनित समस्यायें

औद्योगिकरण से सम्बन्धित प्रमुख समस्यायें निम्न हैं–

1.1.1 प्रदूषण की समस्या

औद्योगिक विकास से प्रदूषण का सीधा सम्बन्ध है जिसमें जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, मृदा प्रदूषण और सामाजिक प्रदूषण विशेष उल्लेखनीय है। औद्योगिक नगरों में प्रदूषण संक्रामक रोगों का आधार बनता जा रहा है। कारखानों से निकलने वाली विषैली गैस, कचरा और अवशिष्ट सामग्री मृदा, वायु और जल को निरर्थक बनाती जा रही है। इन सबका दुष्प्रभाव मानव स्वास्थ्य पर पड़ता है। वाहनों और कारखानों की कर्कष आवाज से ध्वनि प्रदूषण बढ़ रहा है। औद्योगिक नगरों में बढ़ती मलिन बस्तियां बीमारी, व्यभिचार और सामाजिक अपराध का केन्द्र बनती जा रही है। नगरों के कारण पर्यावरण में बढ़ती कार्बन डाई आक्साइड गैस तापमान को बढ़ाती जा रही है जो जैव जगत के लिए संकट की सूचना है।

1.1.2 नगरीकरण की समस्या

औद्योगिकरण और नगरीकरण में सीधा सम्बन्ध है। आधुनिक काल में नगरीकरण की तीव्रता औद्योगिक विकास की देन है। विश्व के औद्योगिक देशों की आधी से अधिक जनसंख्या नगरों में निवास करती है। भारत में नगरीकरण की तीव्रता ने अनेक आर्थिक–सामाजिक समस्याओं को जन्म दिया है।

1.1.3 औद्योगिक त्याज्य सामग्री के निबटारे की समस्या

औद्योगिक विकास ने जहां निर्मित वस्तुओं से जीवन को सुखमय बनाया है वहीं त्याज्य सामग्री निष्पादन की समस्या खड़ी कर दी है। कारखानों की त्याज्य सामग्री नदी, झील, समुद्र और खूली भूमि में निस्पादित कर पर्यावरण को जितना नुकसान पहुंचाया जा रहा है उसकी भरपाई प्रकृति नहीं कर पा रही है। कुछ कारखानों की त्याज्य सामग्री जल, मृदा और वायु को प्रदूषित कर अनुपयोगी बनाती जा रही है। चीने के कारखानों से निकलने वाला कचरा और गंदा जल आसपास के पर्यावरण को विषैला बना रहा है।

1.1.4 ऊर्जा संकट की समस्या

उद्योगों में ऊर्जा के साधनों की खपत इतनी अधिक होती है कि उसके कारण बहुआयामी समस्यायें उत्पन्न होती जा रही हैं। औद्योगिक इकाईयां लगभग आधी पारम्परिक ऊर्जा प्रयुक्त कर रही है जिसके कारण इनका भण्डार तेजी से घटता जा रहा है। घटता भण्डार भविष्य के लिए ऊर्जा संकट का कारण बन रहा है। औद्योगिक नगरों में प्रयुक्त अत्यधिक ऊर्जा से निकले विषैली गैसें वायुमण्डल को प्रदूषित कर रही हैं। इस कारण अनेक बीमारियां नगरों के जीवन को कष्टमय बनाती जा रही है। कानपुर नगर में सांस की बीमारी, क्षय, कैंसर आदि के मरीजों की संख्या तेजी से बढ़ रही है जबकि लखनऊ में ऐसी स्थिति नहीं है।

1.1.5 संसाधन दोहन की समस्या

औद्योगिक विकास का आधार संसाधनों का अधिकाधिक दोहन है। कच्चा माल के रूप में खनिज, वन, जल आदि का प्रयोग जिस बड़े पैमाने पर औद्योगिक क्रांति के बाद शुरू हुआ वैसा पहले नहीं था। खनिज उत्खनन के कारण बढ़ती पर्यावरणीय समस्यायें अनेक क्षेत्रों में मानव अधिवासों के विघटन का कारण बन रही है। कागज, कपड़ा आदि के निर्माण के लिए वनों का विनाश सर्वविदित है। जल का अधिक प्रयोग और उसका प्रदूषण औद्योगिक संस्कृति का स्वभाव बन गया है। संसाधनों का अंधाधुंध प्रयोग औद्योगिक उत्थान के लिए आवश्यक समझा जा रहा है। फलतः संरक्षण की भावना घटती जा रही है जो भविष्य के लिए संकट बनता जा रहा है।

1.1.6. मानव श्रम और परिवहन की समस्या

सर्व ज्ञात है कि बिना परिवहन के साधनों के औद्योगिक उत्थान संभव नहीं है। कच्चा माल और ऊर्जा स्रोत को कारखानों तक पहुंचाना, तैयार माल को बाजार तक पहुंचाना और श्रमिकों को कारखाने तक लाना ले जाना इन्हीं के द्वारा होता है। बढ़ती आवश्यकता के कारण इनकी संख्या इतनी बढ़ती जा रही है कि इनके कारण विविध प्रकार की समस्यायें बढ़ती जा रही है। औद्योगिक नगरों में रेल और सड़क परिवहन

संकट की स्थिति पैदा कर रहे हैं। कानपुर में मोटर गाड़ियों के कारण सबसे अधिक ध्वनि प्रदूषण हो रहा है जिससे बहरापन तेजी से बढ़ता जा रहा है। पश्चिमी देशों के महानगरों में यह खतरा इतना बढ़ गया है कि मोटर गाड़ियों को नगर के बाहर रोकने का नियम बनाया जा रहा है। मोटर गाड़ियां प्रदूषण के साथ इतनी भीड़–भाड़ पैदा करती है कि पैदल चलने वालों को हमेशा खतरा बना रहता है। बम्बई में सड़क पार करते समय प्रतिवर्ष हजारों नागरिक जान गंवाते हैं या पंगु हो जाते हैं। औद्योगिक नगरों के बढ़ते आकार के कारण परिवहन के साधनों का विस्तार आवश्यक होता जा रहा है और इसी के साथ प्रदूषण और दुर्घटना की संख्या में बढ़ोतरी होती जा रही है।

तीव्र औद्योगिकीकरण के कारण ऐसी विकट पर्यावरणीय, आर्थिक और सामाजिक समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं जिसके कारण यहां उत्तम जीवन–पद्धति के स्थान पर निकृष्ट जीवन–पद्धति विकसित हो रही है। यहां सांस लेने के लिये स्वच्छ हवा, पीने के लिए शुद्ध जल और राह चलने के लिए पैदल मार्ग का अभाव होता जा रहा है। ध्वनि प्रदूषण के अनेक मानसिक कुप्रभाव सामने आ रहे हैं जबकि गंदी हवा में सांस लेने के कारण श्वास की बीमारी, तपेदिक, कैंसर जैसे रोग बड़ी जनसंख्या को प्रभावित करने लगे हैं। औद्योगिक नगरों की परित्यक्त सामग्री ग्रामीण क्षेत्रें के जल, मृदा, वायु और वनस्पति को प्रदूषित करने लगी है। पश्चिमी देशों में पर्यावरण की बिगड़ती स्थिति के कारण जनसंख्या पलायन शुरू हो गया है। पर्यावरण सुधार की ओर ध्यान न दिया गया तो इक्कीसवीं सदी नगर विनाश का कारण बन सकती है। वर्तमान समय में निम्न समस्यायें अधिक विकट प्रमाणित हो रही हैं जैसे–

- वायु प्रदूषण की समस्या और बढ़ता स्वास्थ्य संकट।
- जल प्रदूषण से जैव जगत के लिये बढ़ता खतरा।
- मृदा प्रदूषण से बढ़ती कृषि की समस्या।
- ध्वनि प्रदूषण से बढ़ता बहरापन।
- सामाजिक प्रदूषण की मार से टूटता समाज और बढ़ती गरीबी

औद्योगिकीकरण से वाहन, कारखाना और कूड़ा–कचरा तथा गंदगी के कारण वायु प्रदूषण इतना बढ़ता जा रहा है कि सांस लेने के लिए स्वच्छ हवा की कमी पड़ती जा रही है। वाहनों के धुएं से निकलने वाला सीसा तथा अन्य जहरीली गैसें आक्सीजन को विनष्ट करती जा रही हैं। स्वच्छ हवा के अभाव में नागरिक जीवन दम घोटू होता जा रहा है। उद्योगों से निकलने वाला कूड़ा–कचरा इतना अधिक होता जा रहा है कि उसे पाटने के लिए जमीन की कमी पड़ रही है। संयुक्त राज्य अमेरिका, यूरोप आदि देशों में इसे परिष्कृत कर पुनः प्रयोग के लिये तकनीक विकसित की जा रही है। दिल्ली में कूड़ा और मानव मल से जैव गैस का उत्पादन शुरू किया गया है।

औद्योगिक विकास जल प्रदूषण को भी बढ़ावा दे रहा है। कल–कारखानों, सीवर और अन्य प्रकार का गंदा जल धरातलीय और भूमिगत जल को प्रदूषित कर रहा है। प्रदूषित जल के सेवन से बीमारियां जान लेवा बनती जा रही हैं। यूरोप में कारखानों के अपशिष्ट रसायन नदियों में बहाने के कारण सम्पूर्ण धरातलीय जल प्रदूषित हो गया है जिसके कारण वहां अनेक देशों में पीने के पानी का अभाव है। भूमिगत जल भी धीरे–धीरे प्रदूषित होता जा रहा है। भारत में गंगा के किनारे बसे महानगर इसके जल को इतना प्रदूषित कर चुके हैं कि वह पीने योग्य नहीं है। नगरों से निकलने वाला दूषित जल उसी रूप में बहाया जाता है। अब इसे साफ करके गिराने की अनेक परियोजनायें महानगरों में चलायी जा रही हैं। लेकिन भारत की अन्य नदियां अब भी दूषित सामग्री से अक्रान्त हैं।नगरों के निकट के क्षेत्रों की मृदा जो नगर में साग–सब्जी, दूध आदि की आपूर्ति की प्रमुख स्रोत हैं, धीरे–धीरे महानगरों के कूड़ा करकट, गंदा जल और कारखानों के रसायनों से अपना गुण खो रही हैं। इसकी घटती उपज के कारण इसको सस्ते भाव पर निर्माण के लिए बेच दिया जाता है और इस प्रक्रिया में धीरे–धीरे नगर फैलते हुए मृदा प्रदूषण को बढ़ावा दे रहे हैं। यूरोप के

औद्योगिक नगरों के चतुर्दिक ऐसी भूमि को लेकर बहुत अधिक चिंता व्यक्त की जा रही है। हाल में एक विशिष्ट बैक्टीरिया विकसित कर मृदा प्रदूषण को कम करने का उपाय विकसित किया गया है।

1.2 तकनीकीकरण का प्रभाव

आधुनिक युग को तकनीकी विकास का युग कहा जाता है। कृषि, पशुपालन, उत्खनन, परिवहन, उद्योग और ऐसे अनेक कार्यों में नित्य नये तकनीकों का उपयोग आम बात हो गयी है। इन तकनीकों ने आर्थिक–सामाजिक प्रगति को नया आयाम दिया है। तकनीकी विकास के बल पर मानव समाज जिन ऊंचाईयों को छूने लगा है उसकी कल्पना भी कुछ दशक पहले संभव नहीं थी। कृषि उत्पादन की बढ़ोतरी में सुधरे यंत्रों, बीजों, सिंचाई के साधनों का योगदान सर्वविदित है। यह तकनीकी सुधार से संभव हुआ है। पशुपालन में भी अनेक तकनीकी सुधारों ने इसे व्यावसायिक बनाया गया है। न्यूजीलैण्ड अपने दूध और मक्खन को यूरोप तक पहुंचाने में समर्थ है क्योंकि उसने उन्नत तकनीकों का सहारा लिया है। विविध खनिजों के उत्खनन में भी विकसित तकनीकों से कई गुना उत्पादन प्राप्त किया जाने लगा है। पृथ्वी के गर्भ से खनिज की प्राप्ति में जो प्रगति हुई है वह आश्चर्यजनक है। परिवहन के क्षेत्र में तकनीकी विकास ने धरातलीय दूरी जिस तरह कम किया है वह हैरत में डालने वाला है। सम्पूर्ण पृथ्वी को ही इसने छोटा कर दिया है। वायु यातायात की बढ़ती प्रगति तकनीकी उन्नति के शिखर पर पहुंचने लगी है। समुद्री मार्ग से जितना परिवहन आज संभव है उतना कई हजार वर्ष तक नाव युग में संभव नहीं था। आज विशाल जलपोत तकनीकी उन्नति के प्रतीक बन गये हैं। उद्योगों में तकनीकी सुधार ने उत्पादन को कई गुना बढ़ा दिया है। साथ ही वस्तुओं की गुणवत्ता में भी आश्चर्यजनक सुधार आया है। औद्योगिक देश अपनी तकनीकी दौड़ में नित नये सुधार करते जा रहे हैं। आज एक श्रमिक जितना उत्पादन कर सकता है उतना पहले एक सौ श्रमिकों के लिये कठिन था। अणुओं और परमाणुओं के विखण्डन से उत्पन्न ऊर्जा को बिजली में बदलना तकनीकी विकास का प्रमाण है। इसी प्रकार औद्योगिक–तकनीक उन्नति की शिखर बिन्दु बनती जा रही है। तकनीकी उन्नति के बल पर मनुष्य अंतरिक्ष में कारखाना, नगर और कृषि विकसित करने का स्वप्न देख रहा है। वर्णसंकर पौधे, जानवर और अब मनुष्य का विकस तकनीकी करिश्मे का जीता जागता प्रमाण है। वास्तव में वर्तमान युग विज्ञान और तकनीकी उत्थान का युग है।

विज्ञान और तकनीकी विकास का यह युग एक भयावह दृश्य भी उपस्थित करने लगा है। कहा जा रहा है कि तकनीकी शक्तियों से सम्पन्न मानव प्रकृति पर कुठाराघात कर रहा है जिससे तकनीकी आपदायें उत्पन्न हो रही हैं। उत्पादन वृद्धि के लिये तकनीकी सुधार अधिकाधिक ऊर्जा उपयोग पर आधारित है। अधिक ऊर्जा के उपयोग से पर्यावरण अवक्रमण जैव जगत के लिये खतरा पैदा कर रहा है। पर्यावरण प्रदूषण विश्वव्यापी होकर पृथ्वी के जैव जगत के लिये संकट बनता जा रहा है। परिवहन के साधन अनेक दिशाओं में संकट पैदा कर रहे हैं जैसे ध्वनि प्रदूषण, वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण आदि। विशालकाय तेल जलपोत समुद्र के बीच में क्षतिग्रस्त होकर इतना अधिक तेल बहा रहे हैं कि जल जीवों का आवास विनष्ट होने लगा है। अंतरिक्ष कार्यक्रम से ओजोन गैस के नष्ट होने का खतरा बताया जा रहा है।

आणविक हथियारों से विश्वव्यापी संहार संभव हो गया है। यही कारण है कि विश्व शक्तियां अब इनके परिसीमन की ओर उन्मुख है। तकनीकी विकास से प्रभावित रेल, कारखाना और वायु दुर्घटना में मरने वालों की संख्या बढ़ती जारही है। एक साथ सैंकड़ों की मृत्यु वायु दुर्घटना की आम बात हो गई है। एक अमेरिकी सूचना के अनुसार पहले जितने लोग महामारियों से मरते थे उससे कुछ ही कम लोग सड़क और रेल दुर्घटना से प्रति वर्ष मरते हैं। युद्ध का तकनीकी विकास महासंहार का रूप ले लिया है। एक बम एक देश को विनष्ट करने के लिये पर्याप्त है। तकनीकी दौड़ ने सम्पूर्ण समाज को इतना गतिशील कर दिया है कि आज मानव प्रकृति का सम्बन्ध दिखावा मात्र रह गया है। महानगरों की जिन्दगी को गगनचुम्बी अट्टालिकाओं में बंद कर प्रकृति से दूर कर दिया है। आज पश्चिमी देशों में इस मनःस्थिति के कारण नगर

से पलायन शुरू हो गया है। अब यह समस्या प्रधान हो गई है कि किस प्रकार तकनीकी सुधार कर वाहनों से होने वाले प्रदूषण को रोका जाय ताकि जीवन को सुरक्षित बनाया जा सके। अपेक्षाकृत कम तकनीकी प्रगति के कारण भारत ऐसे खतरों से अभी दूर है लेकिन इसकी भी ललक वैसी ही है। भारत के महानगर भी, जो तकनीकी प्रगति के केन्द्र हैं पर्यावरण संकट से घिरते जा रहे हैं। अतः आवश्यकता इस बात की है कि किसी भी तकनीक को अपनाने के पूर्व इसकी पूरी समीक्षा की जाय कि इसके कुप्रभाव क्या–क्या हो सकते हैं। विदेशों से आयात की गयी तकनीकों को भारत अपनी पारिस्थितिकी के अनुसार प्रयोग करे, यही उचित है। उदाहरण के लिये कृषि में सीमित यंत्रों का उपयोग ही भारत के लिये गुणकारी है। पशुशक्ति की उपेक्षा इसके लिये भयावह प्रमाणित हो सकती है। कृषि में ऊर्जा स्रोतों का अधिक उपयोग पारिस्थितिकी तंत्र के अनुसार अहितकर होगा। भारत अपनी जनशक्ति और तकनीकों के समन्वय से सुखी हो सकता है।

2. वन विनाश

वन किसी भी देश की अमूल्य सम्पत्ति है। इनकी महत्ता नदियों तक वनोत्पादन और पर्यावरणीय संतुलन के रूप में देखी जाती रही है। लेकिन आधुनिक समाज की बदलती मान्यताओं और आवश्यकताओं के कारण तेजी से वनों का विनाश हुआ। वनों का घटना क्षेत्रफल कहीं–कहीं संकट सीमा तक पहुंच गया। वन विनाश से पर्यावरणीय कठिनाइयों के साथ वनोत्पादन घटने लगा और उनके स्थान पर कृत्रिम वस्तुएं काम में लाई जाने लगी। लेकिन मौसमी परिवर्तन के कुप्रभाव ने यह सोचने के लिए बाध्य किया कि वन विनाश खतरनाक है। वन कटान और रोपण यदि साथ–साथ किया गया होता तो यह स्थिति न आती। आज वन विनाश से अनेक दैवीय आपदायें जैसे बाढ़, भूमिक्षरण, तूफान आदि भी जुड़ गये हैं। विश्व के अनेक देशों में वनों के अंतर्गत भूमि घटकर अत्यल्प रह गई है।

2.1 वन विनाश के कारण

वन विनाश के प्रमुख कारणों में निम्नलिखित विशेष उल्लेखनीय हैं–

- **वनों का चरागाह के रूप में परिवर्तन**– अनेक देशों में पशुपालन हेतु वनों को काटकर भूमि को चरागाह में बदलने की विस्तृत घटनायें हुई। लेकिन अमेरिका, अफ्रीका और एशिया में ऐसी घटनाओं के कारण वनों का अधिक विनाश हुआ है। द. अमेरिका मांस और दुग्ध उत्पादन के लिए अपने वनों का जितना विनाश किया है वह आज पछतावे का कारण बन गया है।
- **अधिक पशुचारण**– वनों में बढ़ता पशुचारण वन विनाश का एक प्रमुख कारण है। पशुओं द्वारा नये पौधों को अधिक खाने से संवर्धन की क्रिया बाधित होती है। पशुओं द्वारा भोजन के अतिरिक्त भी पौधों को नुकसान पहुंचाया जाता है।
- **आग लगने से वन विनाश**– अनेकानेक कारणों से वन में लगने वाली आग वनों को अपार क्षति पहुंचाती है। वन में लगने वाली आग से न केवल पौधे अपितु जीव–जंतुओं की भी हानि होती है। इससे वनों का विकास अधिक देर तक रुक जाता है।
- **लकड़ी के लिये वन काटना**– विभिन्न उपयोगों के लिये लकड़ी की बढ़ती आवश्यकता ने वनों को काफी नुकसान पहुंचाया है। औद्योगिक देशों में कागज, फर्नीचर, वस्त्र आदि उद्योगों के लिये वृक्षों का अंधाधुंध कटान हुआ है। भारत में हिमालय को नंगा कर दिया गया है जिसकी प्रतिक्रिया चिपको आंदोलन के रूप में प्रकट हुई है।
- **पर्यटन विस्तार–** मानव की भौतिकवादी प्रवृत्ति के कारण पर्यटन हेतु, विविध रूपों में वनों का विनाश हुआ है। बड़े पेड़ों को काटकर विविध उपयोगों के लिये जहां भूमि प्राप्त की जाती है वहीं यात्रियों द्वारा छोटे पौधों को हानि पहुंचाई जाती है।
- **जैविक हस्तक्षेप–** वनों में असंख्य कीड़े और दीमक वृक्षों को नुकसान पहुंचाते हैं। आसपास की भूमि पर कृषि कार्य होने के कारण अधिकांश कीड़ों का जमाव जंगलों में हो गया है। कीटनाशक

दवाओं के डर से भी कीड़े भागकर जंगल की राज ले रहे हैं और पेड़ों को नुकसान पहुंचाते हैं। पेड़ों में फैलने वाली बीमारियों से भी वन विनाश होता है।

2.2 वन विनाश के दुष्परिणाम

वन विनाश के कारण पर्यावरणीय कठिनाइयों के साथ गृह निर्माण सामग्री, चारा, जड़ी–बूटी तथा अन्य वनोत्पादन की कमी होती जा रही है। वन पर्यावरण, विशेषकर वर्षा के वितरण को नियंत्रित करता है। वन विनाश से बाढ़, सूखा, भूमिक्षरण जैसे प्रकोप बढ़ते जा रहे हैं। वन सदा से घरेलू जलावन के आधार रहे हैं लेकिन इनके विनाश से यह संकट इतना बढ़ गया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में भोजन बनाना कठिन होता जा रहा है। इसी तरह अनेक लकड़ी आधारित उद्योगों को कच्चे माल की आपूर्ति कठिन हो रही है क्योंकि अनेक देशों को इसका निर्यात किया जाता था जो वन संरक्षण नीति के कारण बाधित हो गया है। एक अध्ययन के अनुसार 1931–81 के मध्य भारत में 44 लाख हेक्टेयर भूमि जंगल विनाश की चपेट में आई जिसके कारण अब केवल 750 लाख हे. भूमि पर जंगल बच गये हैं। इसी कमी के कारण हरा पेड़ काटना गैर कानूनी बना दिया गया है। हिमालय के वन लगभग उजड़ चुके हैं। नंगे पर्वतों पर वर्षा जल अपरदन को बढ़ाता जा रहा है जिससे भूमिस्खलन के साथ नदियों में बाढ़ का प्रकोप बढ़ रहा है क्योंकि अधिक अवसाद से नदियों का तल तेजी से ऊपर उठ रहा है। विज्ञानियों के अनुसार हिमालय के हिमद पीछे खिसक रहे हैं क्योंकि हिमपात कम होता जा रहा है या तापमान बढ़ रहा है। यह एक प्रकार से संकट की सूचना है क्योंकि भारत की महान नदियों का उद्‌गम हिमालय के हिमनद ही हैं।

भारत के विविध प्रांतों में वन के अंतर्गत भूमि अत्यल्प हो गई है। इसका प्रभाव प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रकार से अनुभव किया जा रहा है। पिछले 50 वर्षों का अनुभव बताता है कि भारत में बाढ़ और सूखा पहले की तुलना में अधिक सक्रिय हो गये हैं। 1935 के बाद 1954, 1957, 1971, 1974 एवं 1975 में विकराल बाढ़ के कारण लाखों लोगों की जाने गई। इसके अतिरिक्त अरबों की सम्पत्ति और लाखों पशुओं से हाथ धोना पड़ा। इस प्रकार सूखा का प्रकोप भी कम विनाशकारी नहीं कहा जा सकता। भारत में भूमिक्षरण की समस्या भी कुछ क्षेत्रों में भयावह हो गई है। हिमालय के ढालों पर वन विनाश के कारण भूमिक्षरण चट्टानों को नंगा करता जा रहा है। दक्षिण भारत और गंगा के मैदानी भागों में भी भूमिक्षारण से लाखों हेक्टेयर भूमि बांझ बन चुकी है। मौसमी परिवर्तन से रेगिस्तान का विस्तार भी बढ़ रहा है। राजस्थान में इसका दुष्परिणाम भयावह रूप ले चुका है क्योंकि जिन क्षेत्रों में कुछ पौधे बचे थे उनका भी विनाश किया जा चुका है जिसके कारण शुष्कता बढ़ गई है। इन अनुभवों के कारण अब अनेक स्तर पर वन संरक्षण की आवश्यकता महसूस की जा रही है।

2.3 वन संरक्षण

वन संरक्षण वन विनाश से अधिक कष्ट साध्य काम है क्योंकि जब आदत बिगड़ जाती है तो उसमें सुधार धीरे–धीरे आता है। वनों को जीवन का अभिन्न अंग बनाना इसलिये भी कठिन है क्योंकि कृषिगत भूमि को त्यागना संभव नहीं है। अतः वन संरक्षण के तीन उपाय हो सकते हैं–

- बचे हुए वनों की रक्षा
- वैज्ञानिक विधि से लकड़ी का कटान
- उपलब्ध खाली भूमि पर वृक्षारोपण

भारत सरकार ने बचे हुए वनों को संरक्षित वन घोषित कर दिया है जिससे अब उनकी पूरी सुरक्षा हो रही है। जंगल में आग, अवैधानिक कटान और शिकार पर भी रोक लगायी गई है। वनों की रक्षा के लिये वन विभाग की चौकसी और देखभाल वन संरक्षण के उचित उपाय हैं। वन संरक्षण के लिये वैज्ञानिक विधि से लकड़ी का कटान और वृक्षारोपण सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष है। पुराने वृक्षों को काटना और नये वृक्षों के रोपण

से आवश्यकता और संरक्षण के मध्य संतुलन बना रहता है। लकड़ी की आवश्यकता को पूरा करने के लिये यह उपाय अपनाया जाता है। इस प्रकार की कटाई को चयनात्मक कटाई या स्वास्थर वन कटाई कहा जाता है। साथ ही वृक्षों की देखभाल के तहत रोग और कीड़ों से सुरक्षा भी वन संरक्षण का अभिन्न अंग है। भारत सरकार का वन विभाग ऐसे अनेक प्रयोग कर रहा है जिसे पेड़ों की बढ़वार को नियंत्रित किया जा रहा है। अब ग्रामीण क्षेत्रों में हरे पेड़ के कटान को वर्जित कर दिया गया है।

वन संरक्षण का तीसरा मार्ग वन रोपण है जो खाली जमीन पर किया जा सकता है। हिमालय क्षेत्र, राजस्थान, दक्षिण भारत के पठारी भाग में ऐसी विशाल भूमि उपलब्ध है जहां वृक्षारोपण का कार्य सामाजिक वानिकी के अंतर्गत किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त सड़क, रेल, नहर और खेतों के किनारे वृक्षारोपण किया जा रहा है। लेकिन इसमें उचित वृक्षों का चुनाव न करने के कारण उल्टा प्रभाव भी पड़ सकता है। भारत में यूकेलिप्टस का रोपण जिस गति से बढ़ रहा है वह उचित नहीं है क्योंकि उससे जल सतह पर कुप्रभाव पड़ने की संभावना है। इसका रोपण केवल कुछ स्थितियों में ही उचित है। इसके स्थान पर भारतीय मूल के पेड़ों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। आवश्यकता को देखते हुए वृक्षारोपण को सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग बनाने की आवश्यकता है क्योंकि इससे भोजन, चारा, ईंधन, खाद एवं गृह निर्माण का सीधा सम्बन्ध है। चिपको आंदोलन ने गहराई से सोचने का एक सुनहरा अवसर प्रदान किया है जिस पर विचार करना आवश्यक है।

3. शहरीकरण/नगरीकरण

नगरीकरण मानव अधिवास की एक सतत् स्वाभाविक प्रक्रिया है जिसमें नागरिकों को बेहतर जीवन सुविधा उपलब्ध कराने के प्रयास किया जाता है।जे.के. स्मिथ के अनुसार, नगरीकरण प्रक्रिया द्वारा कस्बों एवं नगरों में जनसंख्या सकेन्द्रण या जमाव होने लगता है। नगरीय जनघनत्व में वृद्धि होने लगती है। यह अनुमान लगाया जाता है कि विश्व की 2/5 आबादी नगरों में निवास करती है। विकासशील देशों में अधिक तीव्र गति से नगरीकरण हो रहा है। इसमें विश्व जनसंख्या वितरण को नगरीकरण आज सर्वाधिक आकर्षित रहा है।

जनसंख्या का ग्रामीण क्षेत्रों से जनगरीय क्षेत्रों में जाना नगरीकरण कहलाता है। इसके परिणामस्वरूप जनसंख्या का बढ़ता हुआ भाग ग्रामीण स्थानों में रहने की बजाय शहरी स्थानों में रहता है। थॉमसन वारेन ने इसकी परिभाषा इस प्रकार की है ''यह ऐसे समुदायों के व्यक्तियों का, जो प्रमुख रूप से या पूर्ण रूप से कृषि से जुड़े हुये हैं। उन समुदायों में जाना है जो साधारणतया उनसे बड़े हैं और जिनकी गतिविधियां मुख्य रूप से सरकार, व्यापार, उत्पादन या इनसे सम्बद्ध कारोबारों पर केन्द्रित है।'' एण्डरसन के अनुसार, नगरीकरण एकतरफा प्रक्रिया न होकर दूतरफा प्रक्रिया है इसमें केवल गावों से शहरों में जाना नहीं होता, परंतु इसमें प्रवासी के दृष्टिकोणों, विश्वासों, मूल्यों और व्यवहार के स्वरूपों में भी परिवर्तन होता है। उसने नगरीकरण की विशेषताएं बताई हैं–मुद्रा अर्थव्यवस्था, सरकार प्रशासन, सांस्कृतिक परिवर्तन, लिखित अभिलेख और अभिनव परिवर्तन।

3.1 शहरीकरण/नगरीकरण के कारण

शहरीकरण की समस्या के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं–

3.1.1. प्रव्रजन

व्यक्ति नगरों की ओर पलायन इसलिए करते हैं क्योंकि वहां पर रोजगार के अपेक्षाकृत ज्यादा अच्छे अवसर उपलब्ध होते हैं। भारत में प्रव्रजन के चार स्वरूप हैं–ग्रामीण से ग्रामीण, ग्रामीण से नगरीय, नगरीय से नगरीय और नगरीय से ग्रामीण। ग्रामीणों के शहर में प्रवेश राजस्व के स्रोतों को कम करते हैं। दूसरी ओर

आजकल धनवान व्यक्ति उप–नगरीय क्षेत्रों में रहना अधिक अच्छा समझते हैं। धनवान व्यक्तियों के पलायन से नगर को वित्तीय हानि होती है। इस प्रकार का शहर में और शहर से दूर प्रव्रजन से समस्याएं बढ़ती हैं।

3.1.2. औद्योगिक विकास

भारत में जहां नगरीय जनसंख्या विकास दर 4.0 प्रतिशत है। औद्योगिक विकास दर लगभग 6.0 प्रतिशत प्रतिवर्ष है। पंचवर्षीय योजना की अभिधारणा है कि औद्योगीकरण विकास दर 8.0 प्रतिशत प्रतिवर्ष होगी। वह विकास शहरों की बढ़ती हुई रोजगारी की आवश्यकताओं की पूर्ति कर देगा।

3.1.3 दोषपूर्ण नगर योजना

नागरिक सेवाओं के स्तर में व्यापक गिरावट का एक अधिक चौकाने वाला कारक है। हमारे आयोजकों और प्रशासकों में बढ़ती हुई निस्सहायता की योजना आयोग से नीचे तक हमारे महानगरों के अनियंत्रित विकास की गति के प्रति एक भाग्यवादी स्वीकृति मालूम होती है।

3.1.4. निहित स्वार्थ की शक्तियां

नगरीय समस्याओं का अंतिम कारण है निहित स्वार्थों की शक्तियां जो जनता के विरूद्धकार्य करती हैं परंतु निजी व्यापारिक स्वार्थों और लाभों को बढ़ाती है। जब ये शक्तिशाली विशिष्ट व्यक्ति अधिक पैसा बना सकते हैं तो वे योजनाएं और कार्यक्रम बनाते समय इनकी परवाह नहीं करते कि इस प्रक्रिया में कितने व्यक्तियों को हानि होगी।

3.2 नगरीकरण की समस्या

नगरीकरण की समस्याओं से हमारा अभिप्राय नगरों की उन समस्याओं से है जो समाज के अधिकांश व्यक्तियों का ध्यान इस कारण आकर्षित करती है जिससे उनका समाधान करके पुनस्थापित किया जा सके। इसमें से कुछ मुख्य समस्याएं इस प्रकार हैं–

3.2.1 आवास समस्या

नगरों की संख्या इतनी तीव्र गति से बढ़ रही है कि लोगों को आवासन की समस्या का कठिन सामना करना पड़ रहा है। एक सर्वेक्षण के अनुसार बम्बई में अध्ययन किये गए 13.369 व्यक्तियों में से केवल 4.8 प्रतिशत अपने मकानों में रहते हुए मिले तथा 86.6 प्रतिशत किराये के मकानों में। कलकत्ता, दिल्ली, मद्रास आदि महानगरों में भी ऐसी ही अवस्था मिली।

3.2.2 गंदी बस्तियों का विस्तार

स्थान की कमी के कारण तथा कार्य–स्थान के निकट रहने की इच्छा से शहरों में अनेक गंदी बस्तियां भी बन जाती है। यहां का जीवन बड़ा ही दयनीय होता है। स्वच्छता, प्रकाश व हवा जैसी सुविधाओं के अभाव में न केवल गरीब निवासियों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ा है परन्तु सामाजिक नियंत्रण की कमी के कारण नैतिक मूल्यों पर भी गलत असर होता है। निर्धनता के कारण जब निवासी अपनी आवश्यकताएं पूरी नहीं कर पाते तो वे अपराध भी करते हैं। मोटे रूप से हम कह सकते हैं कि गंदी बस्तियों में अयोग्यता, अनुपयुक्त पोषण, मानसिक तनाव की बीमारी, निर्धनता का वातावरण, अपराधी एवं विचलित क्रियाएं, पारिवारिक विघटन, महिलाओं का अनादर जैसे दुराचार आदि का पर्यावरण मिलता है।

3.2.3 यातायात की समस्याएं

परिवहन और यातायात की समस्या भारतीय शहरों में तस्वीर सुन्दर नहीं है। अधिकांशतः व्यक्ति बसों और रिक्शों का इस्तेमाल करते हैं और कुछ रेल का परिवहन व्यवस्था के रूप में प्रयोग करते हैं। स्कूटरों,

मोटर साइकिलों और कारों की बढ़ती हुई संख्या यातायात समस्या को और भी अधिक खराब करती है। धुएं और शोर से हवा को प्रदूषित करते हैं।

3.2.4 जल आपूर्ति की समस्या

नगरों के विस्तार के साथ–साथ जल आपूर्ति की क्षमता का विकास नहीं होने से पर्याप्त जल आपूर्ति नहीं हो पाती है। अनेक नगरों में निश्चित घण्टों में हीजल आपूर्ति की जाती है। पाइप लाइनें, सीवर लाइनें के साथ लीक होने से उनमें गंदा पानी आने से बीमारियां फैलने लगती हैं। कई बार जलदाय विभाग की लापरवाही से अशुद्ध जल आपूर्ति करने से भी गंभीर परिणाम भोगने पड़ते हैं।

3.2.5 विद्युत आपूर्ति की समस्या

आजकल प्रायः प्रत्येक शहर में विद्युत संकट का सामना करना पड़ता है। विद्युत कटौती, कम वोल्टेज, विद्युत धारा के उतार–चढाव की समस्याएं प्रतिदिन देखी जाती है। शहरों के सम्पन्न लोग व्यक्तिगत जनरेटर खरीद लेते हैं जिनसे आस–पास के क्षेत्रों में प्रदूषण की समस्या का सामना करना पड़ता है।

3.2.6 प्रदूषण की समस्या

धूल, धुंआ, शोर, दुर्गन्ध नगरीय पर्यावरण के पर्याय बन चुके हैं। वाहनों तथा उद्योगों द्वारा कार्बन मोनोऑक्साइड, सल्फर डाइ ऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड तथा हाइड्रोजन जैसी जहरीली गैसें वायुमण्डल को श्वसन क्रिया योग्य नहीं छोड़ती। गैसों के प्रभाव से नगरों का तापमान भी बढ़ने लगा है। भोपाल शहर गैस त्रासदी से अभी तक नहीं उबरा है। चरनोबिल रियेक्टर की रेडियोधर्मिता ने आणविक शक्ति की सुरक्षा पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है।

3.2.7 सामाजिक बुराइयां

नगरीकरण जहां प्रगति के प्रतीक हैं, वहीं मानवीय अवक्रमण के कारण भी है। महानगरों में बढ़ती गंदी बस्तियां, बेकारी व बेरोजगारी अनेक प्रकार की सामाजिक बुराइयों को जन्म दे रही है। चोरी, लूटमार, व्यभिचार, मादक–द्रव्यों की बिक्री, अपहरण तथा अनेक प्रकार की आपराधिक प्रवृत्तियां पनप गई हैं। निर्धनों की बस्तियां अपराधों का केन्द्र बनी हुई हैं।

यदि हम नगरीय समस्याओं का समाधान करना चाहते हैं तो हमें कुछ उपाय करने होंगे। इस सम्बन्ध में निम्न उपायों के सुझाव दिये जा सकते हैं–

- नगरीय केन्द्रों का योजनाबद्ध विकास और रोजगार के अवसरों का सृजन।
- नगरीय योजना के साथ–साथ क्षेत्रीय योजना।
- उद्योगों को पिछड़े क्षेत्रों में जाने के लिए प्रोत्साहित करना।
- नगरपालिकाओं को अपने वित्तीय संसाधन खोजना।
- निजी परिवहन को प्रोत्साहन।
- किराया नियंत्रण कानूनों में संशोधन।
- व्यावहारिक आवासीय नीति को अपनाना।
- संरचनात्मक विकेन्द्रीकरण।

अतः यह कहा जा सकता है कि नगरीकरण के प्रभावों और नगरों की समस्याओं का समाधान नहीं हो जब तक नगरीय योजना में सुधार नहीं होता और मौलिक उपाय नहीं किये जाते। ये लाभ के उद्देश्य पर आधारित नहीं होने चाहिए जिससे कि कुछ निहित स्वार्थों को ही इसका लाभ मिल सकें। भूमि प्रौद्योगिकी और करों का उपयोग सभी व्यक्तियों के लाभ के लिए होना चाहिए न कि कुछ शक्तिशाली स्वार्थ समूहों के

लिए। नगरवासियों को राजनैतिक दृष्टि से सक्रिय होना पड़ेगा और नगरों में विद्यमान आर्थिक एवं सामाजिक व्यवस्थाओं में परिवर्तन लाने के लिए संगठित होना पड़ेगा और आंदोलन करना होगा।

3.3 नगरीकरण के सामाजिक प्रभाव

नगरीकरण का सामाजिक जीवन पर प्रभाव विभिन्न आधारों पर देखा जा सकता है जैसे परिवार पर प्रभाव, स्त्रियों की स्थिति पर प्रभाव, जाति की संरचना पर प्रभाव, परम्पराओं और धारणाओं पर प्रभाव, ग्रामीण जीवन पर प्रभाव तथा सामाजिक समस्याओं पर प्रभाव।

3.3.1. नगरीकरण और परिवार

नगरीकरण केवल परिवार के ढांचे को ही प्रभावित नहीं करता अपितु वह परिवार के आंतरिक और अंतर परिवार के सम्बन्धों और उन कार्यों को भी जो परिवार करता है प्रभावित करता है। नगरीकरण का परिवार पर प्रभाव संरचना एवं सम्बन्धों की दृष्टि से देखा जा सकता है। संरचना की दृष्टि से यहां व्यक्तिक परिवार व एक सदस्यीय परिवार अधिक मिलते हैं। जो परिवार संयुक्त भी होते हैं वे सभी छोटे आकार के ही मिलते हैं। सम्बन्धों की दृष्टि से भी नगरीय परिवार के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों में परिवर्तन आता जा रहा है। रिश्तेदारी के सम्बन्ध केवल दो या तीन पीढ़ी तक ही सीमित हो गये हैं।

3.3.2. नगरीकरण और जाति

नगरीकरण, शिक्षा, व्यक्तिगत उपलब्धि और आधुनिक प्रस्थिति–प्रतीकों की और अभिमुखीकरण का विकास जाति की पहचान को कम करता है। नगर के लोग ऐसे सम्बन्धों के ताने–बाने में भाग लेते हैं जिनमें कई जातियों के व्यक्ति होते हैं। कुछ जातियों के शिक्षित सदस्य जो आधुनिक व्यवसायों में हैं, कभी–कभी दबाव समूह के रूप में संगठित हो जाते हैं। इस प्रकार एक जाति दूसरे दबाव समूहों के साथ राजनीतिक और आर्थिक संसाधनों के लिए एक सामूहिक इकाई की तरह प्रतिस्पर्धा करती है। इस प्रकार का संगठन एक नई प्रकार की एकात्मकता दर्शाता है। ये प्रतिस्पर्धा करने वाली इकाइयां जाति के ढाचों की अपेक्षा सामाजिक वर्गों की तरह अधिक कार्य करती है।

शहर के लोग जाति के प्रतिमानों के अनुसार पूर्णरूप से नहीं चलते। खानपान सम्बन्धों, वैवाहिक सम्बन्धों, सामाजिक सम्बन्धों और व्यावसायिक सम्बन्धों में परिवर्तन हुआ है। जातीय एकता ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा शहरी क्षेत्र में इतनी मजबूत नहीं थी। जातियों की पंचायतें शहरों में बहुत कमजोर थीं।

3.3.3. नगरीकरण और महिलाओं की स्थिति

महिलाओं की स्थिति ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में शहरी क्षेत्रों में अधिक ऊंची है। इसका एक कारण उनका कुछ शिक्षित होना तथा कुछ स्त्रियों का आर्थिक रूप से स्वतंत्र होना भी हो सकता है। शिक्षित महिलाओं को न केवल अपने आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक अधिकारों की जानकारी थी, अपितु वे अपने अधिकारों का उपयोग अपने को अपमानित और शोषित होने से बचने में भी करती थी। लड़कियों का शहरों में विवाह के समय की औसत आयु भी गांवों में विवाह की औसत आयु से अधिक है। शहरों में स्त्री पुरुष की पारस्परिक निर्भरता इतनी मिलती है कि पुरुष स्त्री को निम्न स्थिति न देकर बराबर की ही स्थिति देता है। शहरों की स्त्रियां परदा आदि जैसी परम्परागत प्रथाओं में भी अधिक विश्वास नहीं करती। अपनी भूमिकाएं घर की चारदीवारी तक सीमित न कर वे सभी क्षेत्रों में रूचि लेती है। राजनीतिक रूप से भी शहरी महिलाएं आजकल अधिक सक्रिय हैं। उन महिलाओं की संख्या जो चुनाव लड़ती हैं तथा हर स्तर पर बढ़ती है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जब ग्रामीण महिलाएं आर्थिक और सामाजिक रूप से पुरुषों पर निर्भर है। शहरी महिलाएं तुलनात्मक रूप से अधिक स्वतंत्र हैं।

3.3.4 नगरीयता विचार और परम्पराएं

शहरों में रहने वाले व्यक्तियों के विचार, धारणाएं आकांक्षाएं व प्रथाएं भी अलग होती हैं। उदाहरण के लिए लड़कों और लड़कियों को शिक्षा देने के विचार, विवाह की आयु सम्बन्धी विचार, स्त्रियों को स्वतंत्रता देने सम्बन्धी विचार, अविवाहित लड़कियों तथ्ज्ञा विवाहित स्त्रियों द्वारा नौकरी करने सम्बन्धी विचार, मनोरंजन सम्बन्धी विचार आदि में बहुत उदारता मिलती है।

3.4 नगरीकरण और ग्रामीण जीवन

पिछले आधी शताब्दी से हमारे देश में शहरी विकास के कारण ग्रामीण व्यक्तियों का ऐसे शहरी क्षेत्रों में अपकेन्द्र पलायन हुआ, जहां पर पहुंचने के लिए जनोपयोगी सेवाएं सुगमता से उपलब्ध थी। कई व्यक्ति शहरों में इसलिए गए क्योंकि वहां रोजगार उपलब्ध थे। जो अभी भी गावों में बसे हैं उन्हें भी शहरी जीवन की सुविधाएं उपलब्ध हैं। यद्यपि वे शहरी केन्द्रों से मीलों दूर हैं। ग्रामीणों को अब शहरी जीवन के बारे में अधिक जानकारी है और उससे वे इस प्रकार प्रभावित हुए कि वे जाति, धर्म आदि को अत्यधिक महत्त्व नहीं देते। वे अपने दृष्टिकोण में अधिक उदार हो गये हैं तथा अलगाव में भी नहीं रहते। कई किसानों ने खेती की नई पद्धतियां अपना ली हैं। न केवल उनके मूल्यों और आकांक्षाओं में परिवर्तन आया है, अपितु उनके व्यवहार में भी परिवर्तन हुआ है। जजमानी व्यवस्था कमजोर हो रही है और अंतर्जातीय एवं अंतर्वर्गीय सम्बन्धों में परिवर्तन आ रहा है। विवाह, परिवार और जाति पंचायतों की संस्थाओं में भी परिवर्तन आया है। बीमारियों के उपचार के लिए प्रारंभिक तरीकों पर निर्भर रहने के बजाय वे अब आधुनिक एलोपैथिक दवाई का प्रयोग करते हैं।परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि गांवों में अब परम्पराओं का कोई महत्त्व नहीं है। व्यक्तिवाद, परिवारवाद का स्थान नहीं ले पाया है और ना ही धर्मनिरपेक्षता उस बन्धन का स्थान ग्रहण कर पायी है जो धार्मिक है।

3.5 भारत की नगरीय समस्याएं

योजना आयोग का अनुमान है कि शहरी जनसंख्या का पांचवां भाग गंदी बस्तियों में रहता है। विश्व में सर्वाधिक गंदी बस्तियों का मुम्बई का रिकार्ड है। धारावी झुग्गी झोपड़ियों के बड़े समूह विस्तृत क्षेत्र पर फैले हुए हैं।

मुम्बई– मुम्बई की 4.5 वर्ग किलोमीटर मुख्य भूमि पर बस्ती धारावी बनी हुई है। मुख्यतः यह सरकारी भूमि है जिस पर पहले कुम्हार व लुहार रहते है। इनके पास बूचड़खाना शुरू तथा बाद में रद्दी वाले, कबाड़ी, मवाली, ठग और दादा लोग बस गए। यहां झुग्गी–झोपड़ी अर्ध पक्के हैं तथा पक्क 65000 आवास हैं। यहां 67 प्रतिशत हिन्दू, 26 प्रतिशत मुसलमान तथा शेष 7 प्रतिशत में ईसाई, सिक्ख एवं अन्य अल्पसंख्यक लोग रहते हैं।

दिल्ली– नगरीय अधिवासियों में दिल्ली का तीव्र गति से विकास हुआ है। 1961 से 1981 के दौरान इसकी जनसंख्या 26 लाख से बढ़कर 62 लाख 20 हजार तक तथा 1981 से 1991 के दौरान 84 लाख बढ़ गई है। यहां प्रतिदिन लगभग 5 लाख व्यक्ति नौकरी, व्यापार, पर्यटन एवं अन्य कार्यों के लिए आते हैं। दिल्ली का 55 प्रतिशत जनसंख्या आस–पास के ग्रामीण क्षेत्रों एवं कर्मचारियों की है। इस प्रकार जनसंख्या में महानगर की आवासीय समस्या काफी विकट हुई है।

कलकत्ता– भारत का सबसे प्रमुख समुद्र पत्तन है। 1991 में इस महानगर की जनसंख्या 109.1 लाख थी। गंगा, ब्रह्मपुत्र मैदान के लिए यह नगर मुख्य द्वार के समान है। 1980 तक कलकत्ता में गंदी बस्तियों की जनसंख्या में 20 लाख 70,000 की वृद्धि हो गई जो कि लगभग 3000 बस्तियों के रूप में बनी हुई थी। कलकत्ता महानगर विकास प्राधिकरण के सुधार कार्यों में 25 लोगों के लिए स्वच्छ शौचालय का निर्माण, प्रत्येक झुग्गी में पीने के पानी की व्यवस्था, मल निकास की व्यवस्था करना, सड़कों नालियों व पटरियों का

निर्माण करना तथा कूड़ादान की व्यवस्था करना आदि प्रयास शुरू किये गए। इन वर्षों में बन्द रहने तथ सीवर पाइपों के रिसने से हैजा एवं अतिसार रोगों का प्रसार हुआ।

मद्रास– चेन्नई में सर्वाधिक माल का यातायात होता है। यह नगर प्रदेश का प्राचीनतम तथा सर्वाधिक सुविधा सम्पन्न बंदरगाह है। 1991 में यहां स्लम निवासी बोर्ड ने मद्रास के सभी झुग्गी झोपड़ियों में रहने वालों को पुनर्वासित करने का निश्चय किया। वीओसी नगर के 490 परिवारों को स्नानागार, शौचालय, बाढ़ के पानी की उचित निकासी, सड़कों एवं कुओं की सुविधायें प्रदान की गई। किंतु देख–रेख एवं रख–रखाव की उपेक्षा के कारण स्नानागार, शौचालय, कुएं उपयोग के योग्य नहीं रहे।

3.6 बढ़ता शहरीकरण एवं बिगड़ता पारिस्थितिकी–संतुलन

प्रतिदिन पत्र–पत्रिकाओं एवं संचार–माध्यमों से प्रकाशित एवं प्रसारित हो रहे समाचारों में विश्वव्यापी पारिस्थितिकी–संतुलन की समस्या को मानव के लिए गंभीर एवं चौकाने वाली बताया जा रहा है। तृतीय विश्व के राष्ट्र तो इस गंभीर समस्या की गिरफ्त में जकड़ ही गए हैं। समस्या के निदान एवं समाधान में जितना ध्यान आकर्षित करने की चेष्टा की जाती है, उतनी ही गंभीर एवं लाइलाज बनती जा रही है यह समस्या। जिस प्रकार दलदल में फंसा मनुष्य बाहर निकलने के लिए जितना जोर लगाता है उतना ही गहरा फंसता चला जाता है, ठीक यही स्थिति पर्यावरण–समस्या के बारे में भी बनी हुई है।

द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत 'औद्योगिक क्रांति' के नारे निश्चय ही सामयिक थे। इनके फलस्वरूप लगभग 5 करोड़ 30 लाख व्यक्ति गांवों से निकलकर शहरों एवं महानगरों में बस गए। नतीजा स्पष्ट था–शहरी एवं महानगरों की घनी आबादी को शुद्ध पर्यावरण मिलना दूभर हो गया। आज देश में ऐसे 20 महानगर हैं जिनकी आबादी 10 लाख के लगभग या अधिक है। 'गांवों का भारत' कहलाने वाले हमारे देश की अधिकांश आबादी द्रुत गति से शहरों की ओर पलायन कर रही है, जिससे देश की कुल जनसंख्या का एक–चौथाई भाग रोजगार हेतु शहरों की तंग बस्तियों में, एक कमरे के 'मकानों' व झुग्गी–झोपड़ियों में, प्रदूषित वातावरण में जीवन–यापन करने को अभिशप्त है। इनके पास बिजली, पानी और शौचालय जैसी मूलभूत सुविधाओं का भी अभाव है; जबकि शहरी क्षेत्रों में विज्ञान ने जो चमत्कार दिखाए हैं वे केवल संपन्न परिवारों तक ही सीमित होकर रह गए हैं।विज्ञान और तकनीकी का उपयोग मानवता के हित में जितना होना चाहिए था, उस अनुपात में उसकी उपादेयता सिद्ध नहीं हो सकी है। दूसरी ओर विश्व एवं तकनीक के विभिन्न आविष्कारों से जीवन को सुखमय बनाने के लिए अधिक 'कमानेवाले हाथों' की आकांक्षा के कारण जनसंख्या में द्रुत गति से वृद्धि हुई है।

3.6.1 प्रदूषित वातावरण

गावों से शहरों में आकर मेहनत–मजदूरी कर पेट पालने वाले लोगों को महानगरीय सभ्यता ने जब रात काटने के लिए छत तक मुहैया नहीं कराई तो विवश होकर उन्हें झोपड़ियों में जीवन–यापन करने के अलावा कोई दूसरा विकल्प नजर नहीं आया। यह क्रम वर्षों से चालू है। परिणामस्वरूप नगरों–महानगरों में जहां कहीं भी खाली भूमि दिखाई देती, वहीं इन झोपड़–पट्टियों की कतारें देखने–ही–देखते बन जाती। इन बस्तियों में कोई योजना नहीं होती, किसी अन्य की सुविधा का ध्यान नहीं रखा जाता; परिणामस्वरूप अव्यवस्थित रूप से बनी इन बस्तियों में आज न तो मूलभूत सुविधाएं ही मिल पाती हैं और न ही प्रकृति–प्रदत्त हवा–पानी ही शुद्ध रह पाता है। गंदगी, बदबु और अंधकार में पनपी इन तंग बस्तियों ने भी वातावरण और पर्यावरण को दूषित करने में अपनी अहम् भूमिका निभाई है। बंबई, दिल्ली, कलकत्ता, मद्रास जैसे महानगर तो जैसे इस समस्या से अभिशापग्रस्त ही बन गए हैं।

दूसरी ओर महानगरों में आबादी के घनत्व में वृद्धि से प्रकृति के उपलब्ध संसाधनों पर भी अत्यधिक दोहर–भार पड़ा है। इन महानगरों में नित नए स्थापित होने वाले कल–कारखानों के लिए भी प्राकृतिक

संसाधनों की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि उनकी पूर्ति के लिए प्रकृति के दोहन के स्थान पर उसका शोषण अधिक होने लगा है। इस प्रकार प्रकृति के शोषण एवं प्रदूषण से पर्यावरण का संतुलन अस्त–व्यस्त हो गया है।

सीमेंट, लोहा, इस्पात, उर्वरक संयंत्र, नाइट्रिक–एसिड, सल्फ्यूरिक एसिड, कैल्सियम कार्बाइड, काला कार्बन, फासफैरिड, तेलशोधक, जस्ता, तांबा, सीसा आदि के उद्योग वायु को अत्यधिका प्रदूषित करते हैं और नगरों एवं महानगरों में इन्हीं उद्योगों का आधिक्य है। वैसे तो केन्द्रीय प्रदूषण बोर्ड ने इनके मानक निर्धारित कर रखे हैं, लेकिन उनका पालन कोई नहीं करता है। वायु–प्रदूषण निवारक यंत्रों का उपयोग भी इन उद्योगों द्वारा नहीं किया जाता। अतः आवश्यकता इस बात की है कि सरकार प्रदूषण–नियंत्रण के उपायों को औद्योगिक इकाइयों के प्रारंभ करने से पूर्व ही देख ले और पूर्णतया सुरक्षा की स्थिति होने पर ही उनके निर्माण की अनुमति दे।

देश में प्रदूषण रोकने के लिए 16 शहरों में 59 वायु–प्रदूषण केन्द्रों की स्थापना की जा चुकी है। नेशनल एनवायरन्मेंट इंजीनियरिंग इंस्टीट्यूट (नागपुर) ने प्रदूषण नियंत्रण और निवारण के लिए 39 केन्द्र स्थापित किए हैं। इस संस्था ने देश के कई महानगरों–कलकत्ता, बंबई, दिल्ली, मद्रास, अहमदाबाद, कोचिन, हैदराबाद, जयपुर, कानपुर और नागपुर में ऐसे तीन–तीन केन्द्र बनाए हैं, जो 1978 से कार्यशील हैं फिर भी ये नगर एवं महानगर विभिन्न प्रदूषणों से प्रभावित हैं।

3.6.2 शुद्ध पेयजल की कमी

व्यक्तिगत लालच के कारण उद्योगों को नगरों एवं महानगरों के आसपास स्थापित किया गया है। उद्योगपतियों द्वारा उत्पादनों के अपशिष्टों को बेरोक–टोक नदियों में बहा दिया जाता है, जिससे जलस्रोत प्रदूषित होते जा रहे हैं। जल को भूगर्भीय कुओं और नल–कूपों आदि से निकालकर सीधे ही पीने के प्रयोग में लाया जा सकता है; परंतु धरातल के पानी की स्थिति जरा भिन्न है–नदी, तालाब, झील आदि के पानी में अघुलनशील द्रव्य मिले होने के फलस्वरूप उसे साफ करने के उपरांत ही पीने के काम में लाया जा सकता है। रंगाई, छपाई और चमड़े के उद्योगों के कारण भूमिगत जल भी प्रदूषित होने लगा है। उदाहरण के रूप में पाली, कानपुर, बाड़मेर और तमिलनाडू की स्थितियों को समाने रखा जा सकता है। इन स्थानों के जल में रासायनिक एवं खनिज पदार्थों की मात्रा इतनी अधिक हो गई है कि पानी पीने और सिंचाई के योग्य भी नहीं रह गया है। शहर–भर का कूड़ा–करकट व शौच आदि की गंदगी को नदियों और जलाशयों में बहा देने से वह प्रदूषण का कारक बनती है। तेलों की भूमि और नालियों में फैलाव तथा रिसाव भी भूमिगत जल को प्रदूषित करने में सहायक बन जाता है।

घनी आबादी वाले नगर एवं महानगर देश की पवित्र नदियों को प्रदूषित कर रहे हैं। विशेष रूप से गंगा, गोदावरी, घाघरा, कृष्णा, कावेरी, ब्रह्मपुत्र, महानदी, ताप्ती, नर्मदा तथा साबरमती आदि नदियां तो इतनी प्रदूषित हो चुकी हैं कि जब तक इनके जल को संयंत्रों द्वारा शुद्ध न किया जाए, वह पीने योग्य नहीं रहता। आज विभिन्न राज्यों में औद्योगिक प्रतिष्ठानों की संख्या लगभग है 2714 है और इनमें से अधिकांश जल–प्रदूषण के लिए जिम्मेदार हैं। पश्चिमी बंगाल में 200, मध्य प्रदेश में 277, गुजरात में 509, राजस्थान में 156, उत्तर प्रदेश में 182, पंजाब में 145, हरियाणा में 145, असम में 42, हिमाचल प्रदेश में 30, जम्मू–कश्मीर में 28 तथा अन्य स्थानों में 150 कल–कारखाने देश के जल को प्रदूषित कर रहे हैं। इस प्रदूषित जल से प्राप्त होने वाली मछलियों आदि के सेवन से जानलेवा बीमारियां होने लगी हैं। जापान की मिनामार खाड़ी से प्राप्त मछलियों के सेवन से जो दुष्परिणाम सामने आए हैं, भारत को सचेत करने के लिए वे काफी हैं। इन उद्योगों से होनेवाले जल–प्रदूषण से श्रमिक वर्ग के बीमार होने के कारण उत्पादन में लगभग 4 अरब रुपयों तथा 75 मिनियन कार्य–दिवसों की हानि का सामना करना पड़ रहा है। अतः प्रदूषण एवं उसके प्रभावों के बारे में वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाने की प्रबल आवश्यकता है। इसकी शिक्षा हमें प्राथमिक स्तर से लेकर

विश्वविद्यालय तक के पाठ्यक्रमों के माध्यम से देनी होगी। आठवी योजना है विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने भी सभी विश्वविद्यालयों एवं विभिन्न एजेंसियों को पर्यावरण तथा ऊर्जा संबंधी अध्ययन हेतु काम करने के लिए प्रोत्साहित करने का प्रावधान रखा है।

3.6.3 धुआं और ध्वनि–प्रदूषण

विज्ञान ने दूरी एवं समय पर विजय प्राप्त कर ली है। उसने इस क्रम में परिवहन के साधनों में भी वृद्धि की है; परंतु इन साधनों से निकले हुए धुएं और शोर के कारण प्रदूषण में वृद्धि ही हुई है। महानगरों के अलावा छोटे–छोटे नगर एवं कस्बे भी इससे अछूते नहीं रहे हैं। वायु–प्रदूषण 15 से 20 प्रतिशत बीमारियों का कारण बन रहा है। देश में वाहनों की संख्या लगभग एक करोड़ से ऊपर है। ये मोटर वाहन कार्बन–डाइऑक्साइड के उत्पादक के रूप में अपनी पैशाचिक भूमिका निभा रहे हैं।

शहरीकरण ने मनोरंजन के साधनों का भी विशाल पैमाने पर विकास किया है। लाउडस्पीकरों, रेडियो, टी.वी., टेप–रिकार्डर आदि उपकरण जहां निजी जीवन में मनोरंजक सिद्ध हो सकते हैं, वहीं अत्यधिक वाल्यूम के प्रयोग से आसपास के वातावरण को ध्वनि–प्रदूषण ही प्रदान करते हैं। रोगियों, शिक्षार्थियों तथा अध्यापन आदि के लिए तो यह ध्वनि–प्रदूषण हानिकारक है ही, साथ्ज्ञ ही यह आम जीवन को भी मनोवैज्ञानिक व्याधियों एवं तनावों से ग्रसित करता है। रेलों, विमानों, कल–कारखानों की भारी मशीनों, उद्योगों के ध्वनि–प्रसारकों आदि ने भी ध्वनि–प्रदूषण को बढ़ाने में बहुत अधिक योगदान किया है।

महानगरों में विभिन्न प्रकार की आवाजों तथा धुएं आदि से होने वाले प्रदूषण में पर्यावरण को बचाना परमावश्यक है। इसके विकल्प के रूप में बिना धुएं और बिना ध्वनि के वाहनों के विकास की आवश्यकता है। राटवाइल शहर में लोक निर्माण विभाग की चार कारें प्राकृतिक गैस से चलती हैं। इसमें एक बार गैस भरने के उपरांत 100 किलोमीटर तक बिना धुएं और ध्वनि के सफर किया जा सकता है। शहरों में ऐसे वाहन ही आदर्श हो सकते हैं, क्योंकि इनके विकास से ऊर्जा की बचत के साथ–साथ प्रदूषण के दुष्प्रभावों से भी बचा जा सकता है।

3.6.4 वृक्षों की निर्मम कटाई

आज देश में विभिन्न उत्पादकों को इधर–से–उधर भेजने के लिए पैकिंग का काम बड़े पैमाने पर किया जाता है। फलों, सब्जियों आदि को भी दूसरे स्थानों पर भेजने के लिए लकड़ी के डिब्बों एवं टोकरियों का उपयोग किया जाता है। इस कार्य हेतु भी अंततः पेड़ों की कटाई ही होती है; जबकि दूसरी तरफ हम वन–उद्यानों एवं अभयारण्यों के विकास में अपनी रुचि प्रदर्शित करते हैं। पर्यावरण सुधारने एवं सामाजिक वानिकी को प्रोत्साहन देने की दृष्टि से सरकार देश–भर में वृक्ष लगाने के कार्यक्रमों को प्राथमिकता दे रही है; लेकिन जितने पेड़ लगाए जाते हैं, उससे कहीं अधिक वृक्षों की चोरी–छिपे कटाई से जंगलों का विनाश हो रहा है। नगरों एवं महानगरों में तो स्थानाभाव के कारण वृक्षारोपण किया ही नहीं जा सकता; फलस्वरूप पारिस्थितिकी–संतुलन नहीं बन पा रहा है। मानव–स्वास्थ्य को प्राथमिकता देने की दृष्टि से महानगरों एवं नगरों में वृक्षों की संख्या, जनसंख्या के आधार पर, कानूनी रूप से निर्धारित कर दी जानी चाहिए। उद्योगपतियों के लिए भी इसकी अनुपालना कानूनी रूप से अनिवार्य कर दी जानी चाहिए ताकि उद्योग परिसर में वृक्षों का अनुपात, वहां कार्यरत कर्मियों के स्वास्थ्य एवं उद्योग से होनेवाले प्रदूषण के अनुपात में कहीं अधिक हो।

अतः महानगरों एवं नगरों में, पर्यावरण की चेतावनी को देखते हुए, विभिन्न योजनाओं के तहत सर्वप्रथम उचित आवास के साधन उपलब्ध करवाने चाहिए, ताकि उन्हें पशुओं जैसा जीवन जीने को विश न होना पड़े तथा सार्वजनिक रूप से पर्यावरण दूषित भी न हो। शहरों में सफाई की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिए, ताकि गंदगी के ढेर वातावरण को दूषित न करने पाए तथा बीमारियों में वृद्धि न होने पाए।आज

अधिकांश देशों में प्लास्टिक का उपयोग बहुत कम हो गया है परंतु हमारे देश में यह उद्योग भी काफी फल–फूल रहा है। आज जीवन के लिए काम आनेवाली हर वस्तु का निर्माण प्लास्टिक से होने लगा है। प्लास्टिक उद्योग का कचरा प्रतिवर्ष समुद्री पक्षियों, स्तनपायिओं एवं मछलियों की मृत्यु का कारण बनता जा रहा है। समुद्री जीवों की ही भांति मनुष्य के लिए भी इसका धुआं अति हानिकारक है। अमेरिका ने तो प्लास्टिक के थैलों का उपयोग ही बंद कर दिया है।

नगरों एवं महानगरों के राष्ट्रीय मार्गों के दोनों ओर यदि वृक्षारोपण किया जाए तो जन–समुदाय को प्रचुर मात्रा में ऑक्सीजन मिलना प्रारंभ हो जाएगा तथा महानगरों में फैलनेवाला प्रदूषण कम किया जा सकेगा। कूड़े–करकट को घर से बाहर फेंकना और बाहर से उठाकर मोहल्लों–सड़कों पर ढेर लगा देना निश्चित रूप से पर्यावरण को दूषित करता है। फिर जल में प्रवाहित कर देने से तो समूचा जल ही प्रदूषित होकर हमारे ही स्वास्थ्य पर प्रहार करता है। इस संबंध में जीकफीट रेटिक ने घरेलू कचरे को मितव्ययता से पुनः शोधित करके उपयोगी ऊर्जा में परिवर्तित करने की विधि का सफल प्रयोग किया है। उन्होंने कागज, कांच, उद्यान तथा रसोई के कूड़े को 18 माह तक अलग–अलग डिब्बों में एकत्र किया। इन कार्बनिक पदार्थों को पहले जैविक गैस में परिवर्तित किया गया और फिर बिजली के तापन–संयंत्र में संभावित ईंधन के रूप में परखा गया। जो अवशेष बचा, वह किसानों को उर्वरक के रूप में दे दिया गया। इस विधि से कागज, कांच और अन्य पदार्थों का पुनर्शोधन किया गया। इस तरह 'आम के आम और गुठली के दाम' वाली कहावत चरितार्थ हुई। इसी प्रकार की विधियों के विकास की आज हमारे देश में भी आवश्यकता है। इससे अनुपयोगी वस्तुओं से न तो प्रदूषण फैल पाएगा और ऊर्जा के नए साधन भी हमें प्राप्त हो जाएंगे।

विभिन्न नगरों एवं महानगरों से होकर गुजरनेवाली नदियों में थोड़ा अधिक पानी होने पर बाढ का खतरा मंडराने लगता है। बाढ़ द्वारा होनेवाले विनाश एवं प्रदूषण से यदि रक्षा करनी हो तो वह वन–संरक्षण से ही संभव है। आठवीं योजना में कृषि के क्षेत्र में अनेक परियोजनाओं के माध्यम से बारानी और मानसून पर आधारित भूमि का विकास किया जाएगा। आठवीं योजना में भूमि को पुनः कृषि कार्य के योग्य बनाने, भू–कटाव को रोकने एवं घरेलू तथा औद्योगिक पदार्थों का शुद्धिकरण करने के प्रयास किए जाएंगे। इस तरह प्रदूषण से उत्पन्न समस्या का निराकरण हो जाएगा। वैज्ञानिक श्री रेटिक ने इस संबंध में जो प्रयोग किया था, उससे प्रदूषण के समाधान के साथ–साथ वैकल्पिक ऊर्जा के विकल्प का रास्था भी खुल गया। उन्होंने बिजली व तापन का एक संयंत्र तो रोटबाडल के मल–निकास एवं जल–शुद्धिकरण संस्थान के पास लगाया और जैविक अवशेष निकालकर टंकियों में जैविक गैस पैदा करने के साधन के रूप में काम में लिया। इसका उपयोग बिजली या तापन–संयंत्र की मोटर के लिए ईंधन के रूप में किया जा सकता है। इस प्रकार मल एवं अशुद्ध कचरे के पुनःशोधन से ऊर्जा का वैकल्पिक स्रोत मिलने लगा है, जो पर्यावरण की दृष्टि से भी उपादेय है। प्रयास एवं लागत की दृष्टि से भी यह विनियोग उचित ही है। यह प्रक्रिया बिना हानि पहुंचाए नागरिकों को सस्ती ऊर्जा सुलभ करवा सकती है, तो दूसरी तरफ मल एवं अन्य अवशेषों से होनेवाले प्रदूषण की समस्या का समाधान भी हो जाता है।प्रदूषण कम करने के प्रभावी प्रयासों के उपरांत भी, वैज्ञानिकों तथा व्यवस्थापिका की आकांक्षा के अनुरूप कार्यपालिका द्वारा प्रभावी कार्यवाही न होने के फलस्वरूप समस्या का समाधान नहीं हो पा रहा है। ऐसे में हमें सचेत होकर इस समस्या के समाधान की मानसिकता रखने की जरूरत है। औद्योगीकरण के विस्तार को स्थिर करने एवं प्रदूषण फैलानेवाली इकाइयों को अविलंब नियंत्रित करने की भी उतनी ही आवश्यकता है। पर्यावरण सुधारने के उपायों को कड़ाई से लागू किया जाना चाहिए। देश के विकास–कार्यक्रमों को लागू करने से पूर्व यह देख लेना होगा कि हमारे वन–उद्यान, अभयारण्य, नदियां, समुद्र, खाड़ियां और पहाड़ तक इस विकास से दुष्प्रभावित न हों। हमें इकोलॉजी एवं इकोनामी में संतुलन रखने का प्रयास करने की आवश्यकता है।

4. जनसंख्या वृद्धि

पर्यावरणीय विकृतियों के लिए तीव्र जनवृद्धि भी एक प्रमुख समस्या है। विश्व की जनसंख्या जिस गति से बढ़ रही है उससे लगता है कि अगली सदी भयंकर कठिनाइयों की शताब्दी होगी। विश्व की बढ़ती जनसंख्या के कारण भोजन, कपड़ा, और मकान की समस्या विकट होती जा रही है। इस बढ़ती जनसंख्या की भूख को शांत करने के लिए वन विनाश कर भूमिका को कृषि के अंतर्गत लाया जा रहा है जो पर्यावरण को असंतुलित करता जा रहा है। भारत और चीन अपने वनों को काट कर पछता रहे हैं क्योंकि यहां की कृषि वर्षा पर आधारित है और वनों के अभाव से वर्षा की अनिश्चितता बढ़ती ही जा रही है।। साथ ही जलौनी, गृह निर्माण आदि के लिए भी आवश्यक लकड़ी की कमी होती जा रही है। बढ़ती जनसंख्या के कारण उर्वर भूमि आबादी, कग्रगाह, आवागमन के साधन आदि के अंतर्गत उलझती जा रही है। पशुपालन के लिए चरागाह की कमी भी एक प्रमुख समस्या है। बढ़ती जनसंख्या को रोजगार देने के लिए संसाधन, दोहन, उद्योग, व्यापार और परिवहन जिस गति से बढ़ रहा है उसी गति से पर्यावरण का ह्रास भी हो रहा है। औद्योगिक देशों की भौतिकवादी जीवन–पद्धति की नकल अन्य देश भी कर रहे हैं जिसके कारण प्रकृति–मानव अंतर्प्रक्रिया का संतुलन दिनों–दिन बिगड़ता जा रहा है। इस बिगड़ते सम्बन्ध को समझने और समझाने का प्रयास पर्यावरणवादी वैज्ञानिक कर रहे हैं लेकिन भोगवादी प्रवृत्ति के कारण इस ओर बहुत कम ध्यान दिया जा रहा है। भारत अपने वनों का विनाश कर चुका है और नदी घाटी विकास योजनाओं के कारण बचे–खुचे वनों को विनष्ट करने में नहीं हिचक रहा है क्योंकि उसे अधिक अन्न के लिए सिंचाई और बिजली की आवश्यकता है। भारत की महत्त्वाकांक्षी नर्मदा घाटी योजना इसका प्रमाण है। उत्तर–प्रदेश के उत्तराखण्ड की टिहरी परियोजना से होने वाले पर्यावरणीय नुकसान की ओर ध्यान दिलाने के लिए 'चिपको आंदोलन' के मुखिया श्री सुन्दर लाल बहुगुणा को भूख हड़ताल करनी पड़ी । इसी प्रकार रोजगार के नाम पर औद्योगिक विकास अनेक पर्यावरणीय कठिनाइयों का कारण बन गया है जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

स्पष्ट है कि बढ़ती जनसंख्या के भरण पोषण के लिये लिया गया अविवेकपूर्ण प्रयास प्रकृति को कंपित कर रहा है जिसका भारती नुकसान समाज को झेलना पड़ रहा है। ऊर्जा संसाधनों का बढ़ता उपयोग जहां एक ओर ऊर्जा संकट को बढ़ा रहा है वहीं प्रदूषण वृद्धि का कारण बन गया है। वायु मण्डलीय प्रदूष्ण के लिये ऊर्जा उपयोग सबसे बड़ा कारण बताया जा रहा है। ऊर्जा की कमी को पूरा करने के लिये आणविक खनिजों का उपयोग और भी खतरनाक प्रमाणित हो रहा है। खनिजों का दोहन इतना अधिक हो रहा है कि अगली पीढ़ी के लिये भण्डार बच भी पायेगा या नहीं एक कठिन प्रश्न सामने आया है।

यद्यपि स्वतंत्रता के पश्चात् पंचवर्षीय योजना–पद्धति को अपनाकर देश को प्रगति की ओर अग्रसर करने में कोई कोताही नहीं बरती जा रही है, फलतः हम 'तृतीय विश्व' में अग्रणी भी माने जा रहे हैं; परंतु फिर अभी अब तक किए गए प्रयासों का लाभ वांछित अनुपात में प्राप्त नहीं हो रहा है। जिसका कारण है बढ़ती हुई जनसंख्या। इसे रोकने के लिए जनता में व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास आवश्यक है। देश की बाल–जनसंख्या जार्डन जैसे राष्ट्रों के बराबर, अर्थात् 50 प्रतिशत होती जा रही है। इससे हमें आर्थिक समृद्धि हेतु किए गए प्रयत्नों का लाभ प्राप्त नहीं होता। माल्थस की पद्धति के अनुसार जनसंख्या की वृद्धि ज्यामितिक ढंग से होती है, जबकि खाद्य सामग्री अर्थमेटिक ढंग से बढ़ती है। यही कारण है कि खाद्य सामग्री की निरंतर वृद्धि होने के बावजूद भारत में केवल 153 किलो प्रति व्यक्ति खाद्य सामग्री प्रति वर्ष उपलब्ध हो पाती है, जबकि विकसित देशों में 800 किलो प्रति व्यक्ति के हिसाब से भोजन सामग्री उपलब्ध होती है। हम देश की आमदनी का 9 प्रतिशत ही बचा पाते हैं, जबकि जापान व कनाड़ा क्रमशः 32 व 33 प्रतिशत राष्ट्रीय बचत प्रतिवर्ष करते हैं।जनसंख्या–विकास के फलस्वरूप मध्यम श्रेणी के लोगों के लिए मकान बनाना वैभवशाली कार्यों की श्रेणी में आने लगा है। इसीलिए गरीब ग्रामीण लोग रोटी–रोजी के लिए

नगरों व महानगरों की ओर बढ़ रहे हैं। वहां वे आमतौर पर झुग्गी–झोंपड़ियों में रैन–बसेरा करते हैं। इससे उनके व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है और वे पर्यावरण को भी दूषित करते रहते हैं।

हमारे द्वारा 'आर्थिक नियोजन' पर किए गए खर्च का लाभ, 'जनसंख्या–नियोजन' से ही संभव है; क्योंकि जनसंख्या–प्रसार से आवश्यकताओं में वृद्धि होती है और उन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति से बलात् दोहन की मात्रा में भी वृद्धि होती है। प्राकृतिक संपदा के इस असंतुलित दोहन से पर्यावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा। जनसंख्या–वृद्धि व पश्चिमी सभ्यता का लुभावना स्वरूप, भौतिक सुख–सुविधाओं तथा संपन्नता की भूख एवं व्यक्तिगत स्वार्थों के समक्ष राष्ट्रीय हित गौण होते नजर आ रहे हैं, जिनसे प्राकृतिक संतुलन में उत्तरोत्तर विघटन होता जा रहा है। पिछले दशक से पर्यावरण–संतुलन के प्रति लोगों में संचेतना बढ़ी है और कुछ कदम भी उठाए गए हैं। संविधान में भी पर्यावरण–संतुलन बनाए रखने के लिए मौलिक कर्त्तव्यों को जोड़ा गया है। लेकिन पर्यावरण–विकास में अभी अपेक्षित प्रगति नहीं हो पाई है। अतः जन–आंदोलन के रूप में जनसाधारण तक इस कार्यक्रम को पहुंचाना अनिवार्य है; अन्यथा कालांतर में बढ़ती हुई जनसंख्या के फलस्वरूप पर्यावरण पर होने वाले गंभीर दुष्परिणाम आगामी पीढ़ी को भुगतने पड़ेंगे।दोहन की दृष्टि से प्राकृतिक संसाधन कई वर्षों तक अछूते रहे थे। भारत में संपदा व प्राकृतिक साधनों का व्यवस्थित रूप से दोहन इसी शताब्दी में शुरू हुआ है। दोहन की मात्रा में वृद्धि, जनसंख्या की वृद्धि के अनुसार हो रही है। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत 'आर्थिक–विकास' का युग आरंभ हुआ। प्रतिस्पर्धावश आर्थिक विकास की दौड़ में आगे निकलने हेतु औद्योगीकरण का प्रादुर्भाव हुआ। विकास की इस दौड़ के क्रम में प्राकृतिक संपदा का जो संतुलित दोहन शुरू हुआ, वह निरंतर चलता ही जा रहा है। औद्योगीकरण का अनियंत्रित प्रसार होने से आज पर्यावरणीय समस्या देश के सम्मुख एक चुनौती के रूप में खड़ी है। उद्योगों के लिए कच्चा माल; जैसे लोहा, तांबा आदि खनिजों तथा तेल, गैस व कोयले जैसे ऊर्जा–स्रोतों की खपत जनसंख्या–वृद्धि से कहीं अधिक रही है। परिणाम यह है कि संसाधन समाप्त होते जा रहे हैं।

स्वतंत्रता के बाद आर्थिक रूप से स्वतंत्र होने की आकांक्षा और पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से औद्योगीकरण के चक्र को द्रुत गति प्रदान की। देश को आत्मनिर्भर बनाने की दृष्टि से इन योजनाओं को भले ही राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक समर्थन मिला हो, परंतु पर्यावरण की दृष्टि से ये योजनाएं प्रतिगामी ही सिद्ध हुई हैं। औद्योगीकरण ने शहरीकरण और जनसंख्या–वृद्धि के माध्यम से प्रदूषण को काफी हद तक प्रभावित किया है। जनसंख्या–वृद्धि का दबाव प्रदूषण से सीधा सम्बन्ध रखता है। यह प्रदूषण के जलवायु, अन्नोत्पादकता, मनुष्य के स्वास्थ्य और यहां तक कि जीवन को बचाने की क्षमता को भी प्रभावित किए बगैर नहीं रह सकता। वायु–प्रदूषण का मुख्य कारण बढ़ते हुए वाहनों व कल–कारखानों में खपनेवाला ईंधन ही तो है। यह बात नहीं है कि औद्योगिक क्षेत्र व उससे प्रदूषित होनेवाली वायु की जानकारी लोगों को नहीं है; लेकिन जनसंख्या की जरूरतों की पूर्ति हेतु प्रदूषण उत्पन्न करनेवाले संयंत्रों की स्थापना मजबूरन की जाती है।देश में जनसंख्या के बहुत बड़े भाग को पीने के लिए शुद्ध पानी नहीं मिल पाता। नदियों व नहरों के समीप स्थापित कल–कारखानों द्वारा किए गए अशुद्ध जल को पुनः शुद्ध करने हेतु प्रचुर संख्या में यंत्र उपलब्ध नहीं हैं और न ही लोगों में ऐसी स्वास्थ्य–चेतना पैदा करने हेतु प्रभावशाली शिक्षण व्यवस्था ही है। महानगरों की औद्योगिक इकाइयों ने समुद्र एवं नदियों को अपने कारखानों का सामान्य कचरा–पात्र समझ लिया है। विषैले अवशेषों को फेंकने का जब उन्हें कोई स्थान नहीं मिलता, तो वह इन नदियों–नालों और समुद्र में बहा दिया जाता है। इस प्रकार अपने किंचित् स्वार्थ के मुकाबले उन्हें आम नागरिकों के सार्वजनिक स्वास्थ्य का जरा भी ध्यान नहीं रहता। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जनाधिक्य, औद्योगिक प्रगति व पर्यटन की देन ने रत्नाकर समुद्र को मृत–समुद्र बना दिया है; क्योंकि जब ऊर्जा को अनुपयुक्त स्थान पर स्थानांतरित कर दिया जाता है तो ऊर्जा भी प्रदूषण के रूप में परिवर्तित हो जाती है।

जलवायु–परिवर्तन मनुष्य के व्यक्तिगत एवं सार्वजनिक स्वास्थ्य को निश्चित रूप से प्रभावित किए बिना नहीं छोड़ता। जीवन जीने के तौर–तरीके व अनाज–उत्पादन भी इससे प्रभावित हो रहे हैं। वायुमंडल में आवश्यकता से अधिक कार्बन डा–ऑक्साइड की मात्रा होने, लकड़ी के जलाने एवं वायु में अनुपात से अधिक मिट्टी बढ़ने से वर्षा एवं तापमान भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। अन्वेषकों की दृष्टि में, इस शताब्दी के आरंभ से अब तक वायुमंडल में कार्बन–डाइऑक्साइड की मात्रा में 10 से 15 प्रतिशत की वृद्धि हुई है। कार्बन–मुक्त ईंधन के अपूर्ण दहन से एक रंगहीन, गंधहीन, लेकिन जहरीली गैस कार्बन मोनोऑक्साइड निर्मित होती है, जिसका मुख्य स्रोत मोटरगाड़ियों का पेट्रोल ईंधन है। वायु में कार्बन–डाइऑक्साइड की इस तरह बढ़ती मात्रा से पृथ्वी के औसत तापक्रम में वृद्धि होती है। बढ़ती हुई जनसंख्या से होनेवाले कुप्रभावों से हम अपरिचित नहीं हैं, फिर भी हममें से कुछ जानकार भी अनजान बन अपने स्वार्थ में अंधे होते जा रहे हैं। इससे दूषित पर्यावरण का प्रभाव अर्थव्यवस्था, सामाजिक व्यवस्था और सामाजिक मूल्यों पर पड़ रहा है। अतः बहुत बड़ी संख्या में हरे पेड़–पौधे लगाए जाने चाहिए ताकि सभी सजीवों को इनसे राहत मिल सके। इस क्षेत्र में पर्यावरण विभाग और मौसम विभाग के संयुक्त प्रयत्न वांछनीय हैं, ताकि जलवायु को शुद्ध रखा जा सके।

5. प्रदूषण

प्रदूषण एक ऐसी अवांछनीय स्थिति है जब भौतिक, रासायनिक और जैविक परिवर्तनों के द्वारा हवा, जल और धरातल अपनी गुणवत्ता खो बैठते हैं और जीवधारियों के लिए हानिकारक प्रमाणित होने लगते हैं जिससे जीवन प्रक्रिया बाधित होती है, रुक जाती है और सांस्कृतिक जीवन को क्षति पहुंचती है। स्पष्ट है कि एक असामान्य स्थिति है जब प्रदूषक तत्व सीमा से अधिक पर्यावरण के तत्वों में समाहित होकर उसकी गुणवत्ता को विनष्ट करने लगते हैं।

प्रदूषक उस तत्व को कहते हैं जो अवांच्छनीय रूप में वस्तुओं के प्रयोग से उत्पन्न होते हैं। अन्य शब्दों में कहा जा सकता है कि मानव प्रयोग में आने वाली वस्तुओं की त्याज्य सामग्री को प्रदूषक कहा जात है जिसके प्रभाव से पर्यावरणीय अवक्रमण होताहै। ऐसी त्याज्य सामग्री कल–कारखाना, वाहन, नगरीय कचरा, घरेलू कूड़ा आदि से उत्पन्न होती है जो फेंक दी जाती है या बहा दी जाती है। औद्योगिक देशों में प्रदूषक सामग्री का उत्पादन सबसे अधिक होता है।

जब से प्रदूषण एक बड़ी अंतर्राष्ट्रीय समस्या के रूप में सामने आया है इसे कई प्रकार से परिभाषित किया गया है–

- वायु, जल व भूमि के, भौतिक, रासायनिक व जैविक गुणधर्मों में किसी भी प्रकार अवांछित परिवर्तन जिसका समस्त जीव जगत व वातावरण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े, प्रदूषण कहलाता है।
- जब, वायु व भूमि में किसी बाहरी तत्त्व का मिलन, जिससे कि उनके प्राकृतिक गुणधर्मों में त्वरित या कुछ समय बाद परिवर्तन हो, प्रदूषण कहलाता है।
- पर्यावरण में किसी भी प्रकार का हानिकारक परिवर्तन, जो जीव जगत के लिए हानिकारक हो, प्रदूषण कहलाता है।
- वातावरण में किसी भी ऐसे पदार्थ का योग करना, जिससे वह मानव के लिए अनुपयुक्त हो जाये, प्रदूषण कहलाता है।

अमेरिकी राष्ट्रपति की विज्ञान सलाहकार समिति के पर्यावरण प्रदूषण पेनल की रिपोर्ट के अनुसार ''पर्यावरण प्रदूषण, प्राकृतिक वातावरण में वे अवांछनीय परिवर्तन हैं जो मानव के क्रियाकलापों अथवा ऊर्जा पेटर्न, विकिरण स्तर, रासायनिक व भौतिक परिवर्तनों द्वारा या जीव–जन्तुओं की बहुतायत से, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से होते हैं।'' मुख्य रूप से वातावरण के प्रदूषण को निम्न भागों में बांटा जा सकता है–

- वायु प्रदूषण
- जल प्रदूषण
- मृदा–प्रदूषण
- समद्री–प्रदूषण
- ध्वनि–प्रदूषण
- तापीय प्रदूषण व
- नाभिकीय प्रदूषण

5.1 वायु–प्रदूषण

शुद्ध वायु में 78 प्रतिशत नाइट्रोजन, 21 प्रतिशत ऑक्सीजन, 0.03 प्रतिशत कार्बन डाई ऑक्साइड व शेष भाग में अल्प मात्रा में अक्रिय गैसें, जल, वाष्प आदि होते हैं। वायु में उपस्थित ऑक्सीजन के कारण ही पृथ्वी पर जीवन का अस्तित्व है। औद्योगीकरण व विकास की चहुंमुखी दौड़ में, वायुमण्डल की वह परत, जिनमें जीव–जन्तु श्वसन भी करते हैं तथा जिसमें अन्य क्रिया–कलाप भी करते हैं, में कई हानिकारक परिवर्तन होते हैं। इन्हें ही वायु प्रदूषण कहते हैं।

5.1.1 वायु प्रदूषण के कारण

वायु प्रदूषण के स्रोतों को दो भागों में बांटा जा सकता है–

- प्राकृतिक स्रोत व
- मानवीय स्रोत

5.1.1.1. प्राकृतिक स्रोत

वायु में प्राकृतिक प्रदूषण, आंधी तूफान के समय, उड़ती हुई धूल से, ज्वालामुखी से निकली हुई राख से, वनों में लगी आग से, दल–दल व कीचड़ भरे क्षेत्रों में होने वाली जैविक व रासायनिक क्रियाओं के दौरान निकलने वाली गैसों, फसलों से, उत्पादित परागकणों आदि से होता है।यह प्रदूषण बहुत कम मात्रा में होता है, जिनका निदान भी प्राकृतिक रूप से ही कुछ समय में हो जाता है।

5.1.1.2. मानवीय स्रोत

वायु प्रदूषण मुख्य रूप से मानवीय स्रोतों से ही होता है। इन स्रोतों से वायु प्रदूषण के निम्न कारण हैं–

- **दहन–** वायु प्रदूषण का एक प्रमुख कारण है दहन की प्रक्रिया। मानव के हर क्रिया कलाप में ऊर्जा की आवश्यकता होती है और ऊर्जा के लिए किसी न किसी ईंधन की आवश्यकता होती है। दहन से अनेक गैसें तथा पदार्थ उत्पन्न होते हैं जो वायु को प्रदूषित करते हैं। मानव की निम्न क्रियाओं में दहन–प्रक्रम से प्रदूषण फैलता है।
  - घरेलू कार्यों में दहन– जहां भी आग का काम होगा, कोयला, लकड़ी, केरोसीन घरेलू गैस आदि का दहन होगा। इस दहन से कार्बन मोनोक्साइड, कार्बन डाई–ऑक्साइड, सल्फर डाई–ऑक्साइड आदि गैसे उत्पन्न होती हैं जो वायु में मिलती रहती हैं। साथ ही किसी भी ईंधन को जलाने में ऑक्सीजन की आवश्यकता होती है जो वायुमण्डल से ही ली जाती है। हमारे यहां अधिकतर गांवों व छोटे शहरों में, भोजन पकाने, पानी गर्म करने, पशुओं का भोजन तैयार करने में जो वनों की लकड़ी, गोबर, कंडे, खेतों का कचरा, घास–फूस आदि जलाया जाता है। इन ईंधनों से अधिक मात्रा में हानिकारक गैसें निकलती हैं साथ ही बारीक राख भी हवा में ठोस, कोलाइड्स के रूप में मिल जाती हैं।

- ताप–विद्युत गृहों में दहन– ताप विद्युत गृहों में ताप प्राप्ति के लिए कई टन, कोयला, लिग्नाइट जलाया जाता है। इससे बड़ी मात्रा में अर्थात् एक साथ टनों सल्फर डाई ऑक्साइड, कालिख, कोलाइडी राख आदि अपशिष्ट पदार्थ हवा में छोड़े जाते हैं।
- वाहनों में दहन– परिवहन के सभी साधनों, स्कूटर, कार, ट्रक, बस, रेल, वायुयान आदि सभी साधनों को चलाने में पेट्रोल या डीजल काम आता है। इंजन में काम आने के बाद, अर्थात् दहन के बाद इनके निर्वात पाइप से निकलने वाले धुंए में से सूक्ष्म कार्बन कण, नाइट्रोजन ऑक्साइड व परॉक्साइड गैसें, कार्बन मोनोक्साइड आदि होती है। यदि पेट्रोल में लैड है तो वह भी एक बड़ा प्रदूषक है।हमारे देश में भी जनसंख्या वृद्धि, शहरीकरण व भौतिकवादिता के कारण वाहनों की संख्या अत्यधिक होती जा रही है। बड़े शहरों का प्रतिदिन का प्रदूषण स्तर समाचारों में दिखाया जाता है, जो अधिकतर खतरे के स्तर से ऊपर ही रहता है।
- कूड़े करकट के निस्तारण के लिए दहन– कचरे को जलाकर, समाप्त करना एक आम बात है किंतु कम या अधिक किसी भी मात्रा में जैविक व अजैविक कचरा जलाया जाये तो वायु प्रदूषित होती है।
- अन्य छोटे बड़े उद्योगों में दहन– सभी छोटे–बड़े उद्योगों में पिघलाने, पकाने, गलाने, वाष्पन आदि के लिए बड़ी–बड़ी भट्टियां लगाई जाती हैं। इनमें ईंधन के रूप में कोयला, लकड़ी आदि का दहन होता है जिसके परिणामस्वरूप वायु प्रदूषित होती है।

- **उद्योगों की चिमनी से निकलने वाले अपशिष्ट पदार्थ–** मानव जनित प्रदूषण का दूसरा मुख्य कारण, औद्योगीकरण है। समग्र विकास की दृष्टि से नये–नये उद्योग लगाना आवश्यक है किन्तु उनसे निकलने वाले धुएं में सभी प्रकार की हानिकारक गैसें, हाइड्रोकार्बन अपशिष्ट व अन्य हानिकारक पदार्थ, नियमित रूप से वायु में मिलकर प्रदूषण फैलाते हैं। भोपाल के एक कारखाने में निकली प्रदूषित मिथिल आइसोसायनाइड गैस से जो 2 व 3 दिसम्बर 1984 में भीषण दुर्घटना हुई दिल दहलाने वाली घटना है।
- **आण्विक विस्फोटों से–** आज शक्ति परीक्षण की होड़ में परमाणु परीक्षण किये जाते हैं जिससे वायु में हानिकारक, रसायनों, धूल कणों आदि का प्रदूषण बड़ी मात्रा में एक साथ होता है।
- **मनोरंजन के लिए चलाये गये पटाखों आदि से**–मानव अपने मनोरंजन के लिए गंधक युक्त पटाखे आदि एक साथ बड़ी मात्रा में जलाते हैं, जिससे वायु में हानिकारक गैसों की मात्रा बढ़ती है।
- **भौतिक साधनों में–** फ्रीज, एअर कंडीशनरों आदि में प्रशीतकों के रूप में क्लोरो–फ्लोरो कार्बन प्रयुक्त होते हैं जो वायु में मिलकर धीरे–धीरे ओजोन परत का नाश करती है।
- **कृषि कार्यों द्वारा–**उत्पादकता वृद्धि के लिए आजकल कई प्रकार के कीटनाशक, बारीक फुहारों द्वारा छिड़की जाती है। डीडीटी, बी.एचसी आदि पाउडर भी छिड़के जाते हैं। ये सभी हानिकारक पदार्थ वायु में मिलकर उसे भी जहरीला बना देते हैं। फसलें साफ करते समय भी बारीक कचरा भी उड़कर वायु में मिलता है।
- **विलायकों का प्रयोग –**फर्नीचरों की पॉलिश, स्प्रे पेन्ट, आदि में कार्बनिक विलायकों का उपयोग होता है। ये कम ताप पर वाष्पित होने वाले द्रव हाइड्रोकार्बन होते हैं। उपयोग के समय भी ये वाष्पित होकर, वायु में मिल जाते हैं।
- **प्रसाधनों द्वारा–**अधिकतर कृत्रिम रूप से उत्पादित परफ्यूम स्प्रे, डीओडोरेन्ट, रूप फ्रेशनर आदि सभी में कार्बनिक विलायक ईथर आदि होते हैं जो वायु को प्रदूषित करते हैं।
- **धूम्रपान करने वालो द्वारा–** धूम्रपान करने वाले व्यक्ति चलते–फिरते, बीड़ी, सिगरेट आदि से वायु को प्रदूषित करते हैं। इससे धूम्रपान न करने वाले व्यक्तियों के स्वास्थ्य को भी खतरा उत्पन्न होता है।

- **अन्य स्रोत**–मरे हुए पशु, सड़ी गली वस्तुएं, गंदी नाले, चर्म शोधन कारखानों, डिस्टलरीज आदि से जो दुर्गन्ध युक्त गैसें निकलती हैं वे भी वायु प्रदूषण का दैनिक जीवन में महसूस किया जाने वाला उदाहरण है।

5.1.2 वायु प्रदूषण का प्रभाव

वायु प्रदूषण, वायु के साथ, दूर–दूर तक आसानी से फैलता है अतः इसका प्रभाव जल प्रदूषण से भी व्यापक होता है। इससे मानव स्वास्थ्य, वनस्पति, अन्य जीव–जन्तु, पर्यावरण सभी पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। ये प्रभाव निम्न हैं–

5.1.2.1. मानव स्वास्थ्य पर

सांस द्वारा वायु फेफड़ों में जाती है। यदि वायु में कार्बन मोनोक्साइड उपस्थित है तो वह रक्त के हीमोग्लोबिन के साथ मिलकर कार्बोक्सी हीमोग्लोबीन बनाती है। कार्बन मोनोक्साइड ऑक्सीजन की तुलना में 200 गुना अधिकता से, हीमोग्लोबीन के साथ क्रिया करती है। अतः कार्बन मोनोक्साइड की थोड़ी सी मात्रा भी रक्त को खराब करने के लिए काफी होती है, व इसकी प्रचुरता होने से व्यक्ति की दम घुटने से मृत्यु हो जाती है।

हमारे यहां सर्दियों के दिनों में आज भी ऐसी दुर्घटनायें देखने को मिलती है, जबकि धीमे–धीमे सुलगते कोयलों की अंगीठी, लोग बिना हवा वाले, छोटे से कमरे में रखकर सो जाते हैं। प्रचुर मात्रा में आक्सीजन न मिलने पर कोयला जलने पर कार्बन डाइआक्साइड के स्थान पर कार्बन मोनोक्साइड गैस बनाता है जो मानव रक्त के हीमोग्लोबीन से तेजी से बंधती है तथा परिणामस्वरूप श्वसन क्रिया रूकने से ऐसे परिवारों की सपरिवार मृत्यु तक हो जाती है।कार्बन मोनोक्साइड की अधिक मात्रा में वायु में उपस्थिति से रक्त की आक्सीजन को वहन करने की क्षमता में कमी आती है इससे दम घुटता है व फेफड़ों व मस्तिष्क की क्रियाशीलता कम होती है।अन्य गैसें जो वाहन प्रदूषण द्वारा सांस में जाती हैं, वे सल्फर जैसे नाइट्रोजन के ऑक्साइड। ये भी धुएं के साथ मिलकर श्वास के साथ शरीर में जाती हैं जहां श्वसन तंत्र की बीमारियां, ब्रान्काइटिस, दमा, गले में खराश, आंखों में जलन, बच्चों में सांस की तकलीफ व संक्रमण को बढ़ाती है।

पेट्रोल के धुएं के साथ निकलने वाला लैड शरीर में यकृत, वृक्क के ऊतकों को हानि पहुंचाता है तथा हड्डियों को कमजोर करता है।दूसरे रासायनिक पदार्थ जैसे, हाइड्रोकार्बन बेन्जोपाइरिन आदि स्वतंत्र अवस्था में बारीक कणों के रूप में हवा में रहते हैं व शरीर में जाकर फेफड़ों के कैन्सर का कारण बनते हैं।

5.1.2.2. कीटों व वन्य जीवों पर प्रभाव

मनुष्य की तरह ही जीव–जन्तुओं पर भी वायु प्रदूषण के दुष्प्रभाव हैं। कुछ मधुमक्खियां, तितलियां आदि वायु प्रदूषण से समाप्त हो जाती हैं। ये फलों की फसलों के लिए लाभदायक होते हैं। इस बार कश्मीरी सेबों के उत्पादन में कमी का कारण मधुमक्खियों की संख्या का कम होना भी माना गया है, क्योंकि ये फूलों का निषेचन कर फल पकाने में मदद करती हैं।

अन्य वन्य जीवों में, श्वसन द्वारा दूषित वायु जाने से, श्वसन तंत्र व तंत्रिका–तंत्र सम्बन्धी रोग हो जाते हैं। छोटी वनस्पतियों पर घास आदि पर यदि फ्लोराइड यौगिक जमें हो तो जीवों में हड्डियों का कमजोर होना, दांतों का कमजोर होना आदि रोग हो जाते हैं।

5.1.2.3. वनस्पतियों पर प्रभाव

पौधों पर भी प्रदूषण का प्रभाव देखा गया है। धुएं गर्द वाले, कालिख भरे वातावरण में इनकी पत्तियां रोगग्रसित होकर गिर जाती हैं। इनके रोम छिद्र हाइड्रोकार्बन, तेल से अवरूद्ध हो जाते हैं जिससे प्रकाश संश्लेषण व वाष्पोत्सर्जन दोनों क्रियाओं पर प्रभाव पड़ता है। अधिक वाहनों वाले स्थानों में सड़क

की विभाजक पट्टी पर लगे बोगनवेलिया आदि के पौधे काले व सूखे नजर आते हैं।अधिक वायु प्रदूषण वाले क्षेत्रों में वर्षा के समय की सभी गैसें घुलकर वर्षा जल के साथ मिलकर वनस्पतियों को नुकसान पहुंचाती हैं। अम्लीय वर्षा से फूलों के रंग फीके हो जाते हैं तथा पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है।

5.1.2.4. पर्यावरण पर प्रभाव

वाहनों के धुएं में उपस्थित गैसों व हाइड्रोकार्बन के कोलाइडी कण, प्रकाश से क्रिया कर एक प्रकाश रासायनिक धुंध का निर्माण करते हैं जिससे दृश्यता कम होती है। अमेरिका, ब्रिटेन, जापान के कुछ औद्योगिक बड़े शहरों में स्मोगदृश्यता की समस्या के कारण, कई–कई घंटों तक यातायात रोकना पड़ता है।प्रकाश–रासायनिक धुंध के प्रभाव की, 1952 में घटित 'लंदन स्मोग' की घटना एक उदाहरण है, जिसमें इस औद्योगिक शहर पर, पांच दिन तक इस प्रकार कोहरा छाया रहा कि जिसमें हजारों लोग, श्वसन व हृदय रोग से बीमार हुए।

5.1.2.5 ओजोन परत पर प्रभाव

ओजोन परत, समताप मंडल में उपस्थित गैस की मोटी सतह है, जो सूर्य की हानिकारक पराबैंगनी किरणों को रोकती है। इस परत की मोटाई में क्लोरो–फ्लोरो कार्बन नामक कार्बनिक हैलाइडों ने पिछले वर्षों में 2 प्रतिशत की कमी की है इसे ओजोन छिद्र के नाम से जाना जाता है। एंटार्कटिका पर यह प्रभाव सबसे पहले देखा गया कि ओजोन परत की मोटाई में काफी कमी आई है।एक अनुमान के अनुसार पृथ्वी के तापमान में पिछले पचास वर्षों में 1 डिग्री की वृद्धि हुई है। कार्बनडाइआक्साइड व नाइट्रोजन आक्साइड, क्लो–फ्लोरो कार्बन आदि के कारण यह प्रभाव देखा गया। इन्हें ग्रीन हाउस गैसें भी कहते हैं। इनसे जलवायु में अवांछनीय परिवर्तन होते हैं।

5.1.2.6.स्मारकों पर प्रभाव

वायु में उपस्थित हाइड्रोकार्बन कण, काले धुएं के समान होते हैं, जो पुरामहत्त्व के स्मारकों पर जमक र उनकी उपरी सतह को खराब करते हैं। ताजमहल पर इस समस्या के कारण, उसके आस–पास स्थित मथुरा, तेल परिशोधन संयंत्र, कई चमड़ा–शोधन कारखानों को, छोटे–बड़े अधिक कार्बन डाइआक्साइड उत्पन्न करने वाले कारखानों को वहां से हटाना पड़ा या उनका ईंधन बदलना पड़ा। अमेरिका में प्रतिवर्ष अरबो डॉलर स्मारकों पर से कालिख हटाने व उनके संरक्षण पर खर्च होते हैं।

5.1.3 वायु प्रदूषण नियंत्रण के उपाय

कुछ बातों का ध्यान रखकर वायु प्रदूषण को पूर्णतः समाप्त तो नहीं किंतु कम व नियंत्रित अवश्य किया जा सकता है इसमें प्रत्येक नागरिक का योगदान आवश्यक है–

- ईंधन के रूप में गैर पारम्परिक स्रोत जैसे गोबर गैस, बायो गैस, प्राकृतिक गैस, एलपीजी आदि अपना कर।
- वनों को सुरक्षित रखकर व वृक्षारोपण करके।
- वाहनों का विवेकपूर्ण उपयोग व उनके इंधन को नियमित रूप से जांच करवाकर यह नियत करना कि ईंधन पूरा जल रहा है या नहीं।
- बिना लैड का पेट्रोल काम में लेकर।

ये कुछ ऐसे उपाय हैं जिन्हें अपनाकर प्रत्येक व्यक्ति प्रदूषण को कम करने में सहायक हो सकता है। उद्योगों से होने वाले प्रदूषण को विशिष्ट विधियां अपनाकर कम किया जा सकता है–

- धुएं को सीधे ही चिमनी से वायुमण्डल में न छोड़कर उन्हें स्थिर वैद्युत अवक्षेपकों में से गुजरने दिया जाता है जहां इनमें से एसपीएम यानि कुछ बारीक धुल कण, जो धुएं के साथ मिले रहते हैं, अवशोषित होकर नीचे गिर जाते हैं व स्वच्छ धुआं वायुमण्डल में जाता है।
- चक्रवात उपकरण द्वारा, भारी कणों को धुएं से अलग करके चक्रवात उपकरण के द्वारा औद्योगिक धुएं को इसमें से गुजारा जाता है, जहां वह चक्रवात की तरह घूमता है इससे कुछ भारी प्रदूषण कण नीचे गिर जाते हैं व स्वच्छ–धुआं–बाहर छोड़ा जाता है।
- अधिशोषण करवा कर– ऐक्टिवेटेड–चारकोल सतह पर, औद्योगिक, गैसीय अपशिष्टों में से ठोस पदार्थ चिपक जाते हैं, इसका उपयोग चिमनियों में किया जाता है।
- गैसीय अपशिष्टों पर, उचित संयंत्रों में, पानी की तेज बौछारों का प्रयोग करके उन्हें घोल लिया जाता है, इन्हें स्क्रबर्स कहते हैं। इस घोल से कुछ पदार्थ फिर से भी प्राप्त किये जा सकते हैं।
- उद्योगों से अपशिष्ट सीधे ही बाहर न निकलकर, उन्हें कम हानिकारक पदार्थों, जैसे जल वाष्प, कार्बन डाई ऑक्साइड आदि में बदल कर।

5.2 जल प्रदूषण

जल, जीवन है, किंतु कई कारणों से जल प्रदूषण, आज एक बड़ी समस्या बन चुकी है। जल प्रदूषण को निम्न अलग–अलग तरह से परिभाषित किया जाता है–

- जल में किसी भी प्रकार के अवांछनीय गैसीय, द्रवीय या ठोस पदार्थों का मिलना जल प्रदूषण कहलाता है।
- किसी बाहरी तत्त्व की उपस्थिति से, जब जल के भौतिक व रासायनिक गुणों में से किसी भी प्रकार का परिवर्तन होता है तो वह परिवर्तन जल प्रदूषण कहलाता है।
- किसी भी प्रकार के हानिकारक पदार्थों की जल में उपस्थिति, जिसमें वह पीने के लायक न रहे, जल प्रदूषण कहलाता है।

5.2.1 जल–प्रदूषण के कारण

जल प्रदूषण भी प्राकृतिक व मानव जनित दोनों कारणों से होता है–

5.2.1.1 जल प्रदूषण के प्राकृतिक कारण

- जंगलों में पड़ा हुआ जैविक कचरा, जैसे सूखी पत्तियां, लकड़ियों, मरे हुए जीव जन्तुओं के अवशेष आदि वर्षा द्वारा बहकर, जलाशयों में मिल जाते हैं।
- बहते हुए जल में खनिज व खानों के बाहर पड़े हुए शेष पदार्थ मिल जाते हैं व जलाशयों में पहुंच जाते हैं।
- इस प्रकार कुछ विषैले तत्त्व, जैसे पारा, आर्सेनिक, सीसा, कैडमियम आदि जल में घुल–मिलकर उसे हानिकारक बनाते हैं।

5.2.1.2 जल प्रदूषण के मानव जनिक स्रोत

- अज्ञानतावश नदियां, तालाबों में नहाना तथा मल–मूत्र त्याग द्वारा।
- कपड़े धोना आदि द्वारा– अपमार्जक व साबुन का जल में मिलकर, जल को स्थाई रूप से नुकसान पहुंचाते हैं।
- घरेलू व सार्वजनिक शौचालयों का बहिस्राव, जल–मल आदि का जल में मिलना।
- मृत पशुओं आदि को जल में निस्तारित करना
- उद्योगों से निकलने वाला बहिस्रावों का सीधे ही जलाशयों आदि में छोड़ने से।

- कृषि कार्यों में उपयोग में लिये गए खाद व कीटनाशकों के बचे हुए भागों का बहकर जल में मिलना।
- तैलीय प्रदूषण, उद्योगों से, जहाजों से या समुद्री दुर्घटनाओं से, तेल के परिवहन द्वारा व समुद्र के किनारे तेल कुओं से रिस कर।
- जल का तापीय प्रदूषण, उद्योगों द्वारा या बड़े संयंत्रों के उपकरणों के शीतल के लिये प्रयुक्त पानी गर्म अवस्था में फिर से जलाशय में छोड़ा जाता है, जिससे नदियां, तालाबों आदि का पानी गर्म हो जाता है।
- रेडियो ऐक्टिव अपशिष्ट, किसी नाभिकीय विस्फोट आदि द्वारा वायु में फैले बारीक कण, धीरे–धीरे जलाशयों में गिरते रहते हैं ये सभी जल को प्रदूषित करते हैं।

5.2.2 जल–प्रदूषण के प्रभाव

जल प्रदूषण से जल में होने वाले परिवर्तनों के अक्सर हानिकारक प्रभाव ही होते हैं। जल, जीव, वनस्पति, मानव सभी के लिये आवश्यक है अतः जल प्रदूषण का प्रभाव सब पर पड़ता है–

5.2.2.1 मानव पर प्रत्यक्ष प्रभाव

दूषित पेय जल पीने से मानव को निम्न बीमारियों का खतरा रहता है। ऐसी बीमारियां जल वाहित बीमारियां कहलाती हैं। उदाहरणार्थ–

- हैजा, टाइफाइड, दस्त, पेचिश आदि बैक्टीरिया जनित रोग।
- हिपेटाइटिस, पीलिया आदि वाइरस जनित रोग।
- अमीबायोसिस, पेट दर्द, आंतों व आमाशय के संक्रमण आदि प्रोटोजोआ से जनित रोग।
- नारू आदि कृमि जनित रोग।
- दूषित जल के सम्पर्क द्वारा, चर्म रोग, द्वितीयक संक्रमण, आंखों के रोग आदि।
- जल में अधिक मात्रा में उपस्थित, रसायन, फ्लोराइड द्वारा दंतक्षय, हड्डियों की विकृतियां राजस्थान में जल जनित बीमारी है।
- नाइट्राइट, पारा, संखिया लैड आदि की उपस्थिति जल को विषैला बनाती है।
- प्रदूषित जल को शोधन पर अत्यधिक धन खर्च होता है।
- जल जनित बीमारियों द्वारा भारत में, लोगों के कई कार्य दिवस नष्ट होते हैं।
- बीमारियों पर होने वाले खर्च में वृद्धि।
- जन–धन की हानि।

5.2.2.2 जल जीवों पर प्रभाव

- जल प्रदूषण यदि बहुत अधिक हो तो उसमें से कई जीवित मछलियां नष्ट हो जाती हैं।
- मछली पालन उद्योगों व उससे जनित अन्य उद्योगों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।
- भारी मात्रा में, मछलियों, सील आदि का मरना।
- जल में ऑक्सीजन की कमी से मछलियों के मरने की घटनायें।
- समुद्री जीवों पर तेल प्रदूषण का विपरीत प्रभाव।
- तापीय प्रदूषण के साथ कई जीवों की समाप्ति।

5.2.2.3 अन्य जीवों पर प्रभाव

- फ्लोराइड युक्त जल पीने से पालतू व वन्य जीवों में भी हड्डियों व दांतों का क्षय होता है।
- जल जीवों के अतिरिक्त अन्य जीव, जैसे– गाय, भैंस आदि प्रदूषित जल पीने से आंत्र रोगों से ग्रसित हो जाते हैं।

5.2.2.4 वनस्पतियों पर प्रभाव

- घरेलू अपशिष्ट, अपमार्जक आदि द्वारा प्रदूषण से जल क्षारीय व अनुपयुक्त हो जाता है कई जल वनस्पति नष्ट हो जाती हैं।
- कृषि अपशिष्टों में नाइट्रेट, फॉस्फेट आदि अधिक होने से इनमें कुछ ही जलीय शैवाल जैसे नील–हरित शैवाल आदि की अधिकता हो जाती है व बाकी सभी वनस्पतियां समाप्त हो जाती हैं।
- प्रदूषित जल में काई की अधिकता से सूर्य की रोशनी पूरी तरह नहीं पहुंच पाती जिससे जलीय पौधों में प्रकाश–संश्लेषण की क्रिया में कमी आती है व पौधों की वृद्धि रूक जाती है।

5.2.3 जल–प्रदूषण नियंत्रण के उपाय

कुछ उपाय हैं जिनसे जल को प्रदूषित होने से रोका जा सकता है अथवा जल प्रदूषण कम हो सकता है–

- घरेलू प्रयुक्त जल को सीधे जलाशयों में न मिलने दिया जाये।
- सीवीरेज व गटर के जल के अलग नालियों द्वारा एक ही जगह एकत्रित कर, सीवीरेज उपचार संयंत्रों द्वारा उसे उपचार के बाद ही, कृषि आदि कार्यों में लिया जाये।
- अपशिष्ट पदार्थों को जलाशयों में निस्तारण नहीं किया जाये।
- मरे हुए पशु–पक्षियों को किसी जलाशय मं विसर्जित न करें।
- जलाशयों में नहाना, कपड़े धोना, मल–मूत्र त्याग आदि न किया जाये।
- पशुओं को जलाशयों में नहीं नहलाया जाये।
- ट्रकों, ट्रक्टरों आदि की धुलाई जलाशयों में न की जाये।
- पेय जल के स्रोत के चारों ओर कोई, सीमा या दीवार बनाकर उसमें ठोस अपशिष्ट पदार्थों का मिलना रोका जाये।
- कृषि कार्यों में कम से कम कीट नाशक व कृमिनाशक दवाईयां मिलायी जायें।
- खनन क्षेत्र व औद्योगिक क्षेत्र, आवासीय बस्तियों से दूरी पर हों।
- प्रदूषण के कारणा व रोकने के उपायों से जनसाधारण को अवगत करवाया जाए।
- औद्योगिक अपशिष्टों को बिना उपचार पानी में न बहाया जाये।
- एनएसएस, एनसीसी आदि कैम्पों में जलाशयों के रखरखाव, दवाई डालना आदि कार्य करवा कर।
- प्रदूषण नियंत्रण कानूनों का सख्ती से पालन किया जाये।
- स्कूल, कॉलेज आदि में खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में जल प्रदूषण पर जानकारी दी जाये।

5.3 मृदा प्रदूषण

भूमि की सबसे ऊपरी तह मृदा है, इसकी गुणवत्ता पर हमारे देश की कृषि उत्पादकता निर्भर करती है। मिट्टी में जैविक व धात्विक दोनों पदार्थ होते हैं। वनस्पति की वृद्धि के लिए 16 खनिज तत्त्वों की आवश्यकता होती है, एक अच्छी मिट्टी में लगभग 13 तत्त्व मिल जाते हैं। इन 13 तत्त्वों में से किसी की भी सान्द्रता में कमी या वृद्धि हो तो वह मृदा प्रदूषित कहलाती है।

5.3.1 मृदा–प्रदूषण के कारण

- उद्योगों से निकले धुएं अपशिष्ट जिन्हें भूमि पर बहा दिया जाता है, जैसे धातुएं, धातु ऑक्साइड, क्षार अम्ल, रंजक पदार्थ, कीटनाशक आदि।
- बड़े–बड़े बांधों के बनने से।

- खनन उद्योगों द्वारा।
- सड़के बनने की प्रक्रिया में।
- शहरीकरण व बड़ी–बड़ी इमारतों के बनने में।
- कृषि में अधिक मात्रा में रासायनिक खाद की कीटनाशक डालने से।
- पश्चिमी राजस्थान व देश के कई अन्य भागों में भूमिगत जल लवणयुक्त या खारा होता है, जिससे सिंचाई करने से ऊपरी मिट्टी अनुपजाऊ हो जाती है।
- शहरी कचरा टनों में दूर किसी भू भाग में या कम गहरी जमीन पर डाल दिया जाता है, जिसमें प्लास्टिक बोतलें, कांच, कपड़ा, ऊन, लोहे के टुकड़े, बगीचों का कचरा, बचा हुआ खाना सभी कुछ होता है। यह मृदा प्रदूषण का बड़ा कारण है।
- ताप बिजली घरों से निकली राख ढेरों के रूप में भूमि में जगह–जगह रख दी जाती है जिससे मीलों दूर तक मृदा प्रदूषण होता है।

5.3.2 मृदा प्रदूषण के प्रभाव

- उद्योगों द्वारा भूमि पर छोड़े गये अपशिष्ट, कार्बनिक पदार्थ आदि मृदा की उर्वरा शक्ति को कम करते हैं।
- सुपर फॉस्फेट खाद में लैड, कैडमियम, संखिया जैसे धातु कम मात्रा में पाये जाते हैं जो मृदा की उपज शक्ति को कम करते हैं।
- सल्फर डाई ऑक्साइड या सल्फर के यौगिक जल से क्रिया करके अम्ल बनाते हैं व मृदा को अति अम्लीय बना देते हैं। यह अम्लीयता पेड़–पौधों को खराब करती है।
- पेस्टिसाइड, फंगीसाइड्स, फ्यूमिगेन्ट्स जैसे– डीडीटी, बीएचसी, ऐल्ड्रिन आदि मिट्टी में धीरे–धीरे एकत्रित होकर मनुष्य की खाद्य–श्रृंखला में, फसलों, सब्जियों, अंडे, दूध आदि द्वारा खाने में आ जाते हैं व कई घातक बीमारियों को जन्म देते हैं।
- कुछ रसायन मिट्टी में से कभी विघटित नहीं होते व उसमें स्थाई खराबी पैदा करते हैं।
- शहरी कचरे में अत्यधिक प्लास्टिक व अजैविक कचरा होता है जो कभी समाप्त नहीं होता, व मृदा की गुणवत्ता नष्ट करता है।

5.3.3 मृदा–प्रदूषण, नियंत्रण के उपाय

मृदा को स्वच्छ, उपजाऊ और सभी पोषक तत्त्वों से युक्त रखना व अपद्रव्यों से दूर रखना आवश्यक है। इसके लिए निम्न उपाय कारगर हो सकते हैं–

- औद्योगिक अपशिष्टों को बिना उचित उपचार के व घातक रसायनों को छाने बिना, भूमि पर बहाने पर पाबन्दी हो।
- औद्योगिक अपशिष्ट को खेतों में बहाने पर पाबन्दी हो।
- कृषि उत्पादन के लिए कम से कम कीटनाशक काम में लिया जाये।
- खाद के रूप में अधिक मात्रा में गोबर, पत्ती की खाद व कम मात्रा में रासायनिक खाद उपयोग में ली जाये।
- मृदा संरक्षण के सभी उपाय जैसे खेतों के आसपास आम, नीम, बरगद, आदि बड़े वृक्ष लगायें जायें जिनकी पत्तियों के उर्वरा शक्ति भी बढ़े व मृदा अपरदन भी रूक जाये।
- शहरी कचरे का निस्तारण भूमि पर न करके उसे निस्तारण यंत्रों द्वारा व उचित तकनीक द्वारा विद्युत उत्पादन खाद उत्पादन आदि में काम में लिया जाये।
- अधिक से अधिक वृक्ष व वन लगाकर मृदा की ऊपरी तह को अपरदन से बचाया जाये।

5.4 समुद्री प्रदूषण

पृथ्वी का 71 प्रतिशत भू–भाग समुद्र से ढका हुआ है अतः उसकी स्वच्छता के प्रति सजग रहना आवश्यक है। एक अनुमान के अनुसार प्रतिवर्ष 6000 टन क्रोमियम, 8000 टन संखिया, 900 टन बेरियम, 17,000 टन लोहा, 12,000 टन सीसा, 17,000 टन मैंगनीज, 8000 टन पारा, 3900 टन एन्टिमनी, 70,000 टन जिंक आदि बिना किसी उपचार व तनुकरण के समुद्र में फेंक दिया जाता है। इससे होने वाली हानि का अनुमान स्वतः ही लगाया जा सकता है।

5.4.1 समुद्री प्रदूषण के कारण

- जोहान्सबर्ग पृथ्वी सम्मेलन 2002 में अंत में यही निष्कर्ष निकाला गया कि सागर में सबसे अधिक मात्रा में औद्योगिक अपशिष्ट में विकसित देशों द्वारा फेंका जाता है, यह समुद्री प्रदूषण का बड़ा कारण है।
- तैलीय प्रदूषण सागरीय प्रदूषण का मुख्य कारण है प्रतिवर्ष लगभग 3.5 लाख मीट्रिक टन तेल समुद्रों में मिल जाता है।
- पेट्रोलियम पदार्थों के परिवहन के समय साधारण रूप से बिना किसी दुर्घटना के भी लगभग 0. 45 लाख मीट्रिक टन तेल समुद्र पर फैल जाता है।
- सागरीय दुर्घटनाओं के कारण प्रतिवर्ष लगभग 1.3 लाख मीट्रिक टन तेल समुद्र में फैल जाता है।
- समुद्र के किनारे, पेट्रोलियम खनन व पेट्रोलयम पदार्थ, उत्पादन संयंत्रों के अपशिष्ट के रूप में तैलीय प्रदूषण।
- नगरीय अपशिष्टों के समुद्र में निस्तारण के कारण।
- रेडियोधर्मी पदार्थों का समुद्र में निस्तारण।
- परमाण्वीय संयंत्रों से नाभिकीय प्रदूषण।

5.4.2 समुद्री प्रदूषण का प्रभाव

समुद्री प्रदूषण के कुछ दूरगामी परिणाम हैं जिनके हानिकारक परिणाम बड़ी आपदाओं के रूप में कालान्तर में सामने आयेंगे किंतु तात्कालिक प्रभावों के रूप में कई प्रभाव सामने आते हैं, जो निम्न हैं–

- मछलियों, समुद्री जीवों पर विपरीत प्रभाव अकाल व एक साथ मृत्यु।
- समुद्री पारिस्थितिकी तंत्र के प्राकृतिक स्वरूप का बिगड़ना।
- तैरते हुए तैलीय व ठोस अपशिष्टों के कारण जल में ऑक्सीजन की कमी होना।
- मछली पकड़ने के बड़े अभियानों के कारण पत्रिका 'नेचर' के अनुसार 50 वर्षों में ही कॉड हैलीबट, ट्यूना और सॉडफिश जैसी महत्त्वपूर्ण प्रजातियों का 9/10वाँ हिस्सा समाप्त हो गया।
- प्रदूषण के कारण कई जगह प्रकाश के समुद्र में भेदन पर पड़ता है जिससे समुद्री जीवन में प्रकाश–संश्लेषण की क्रिया प्रभावित होती है।
- तेल में उपस्थित ऐरोमैटिक हाइड्रोकार्बनों की समुद्री वनस्पतियों के ऊतकों में प्रवेश कर जाते हैं व उनकी वृद्धि रोकते हैं, धीरे–धीरे समाप्त करते हैं।
- पारा, संखिया, केडमियम, सायनाइड आदि के प्रदूषण के कारण एक साथ कई मछलियां व समुद्री जीव नष्ट हो जाते हैं।
- रेडियोधर्मी प्रदूषण के दूरगामी हानिकारक प्रभाव होते हैं।
- समुद्री चिड़ियाओं की तेल मिले जल की वजह से डूब जाने के कारण हृदयविदारक मृत्यु।
- प्रदूषित समुद्री जल में स्नान करने से चर्म रोग।

- प्रदूषित जल के किसी भी प्रकार सेवन से लकवा, श्वास की बीमारियों का खतरा।
- पारा, संखिया, कैडमियम, लैड, जैसी धातुएं मछलियों समुद्री जीवों में चली जाती है। इस प्रकार मानव की खाद्य श्रृंखला में प्रवेश कर हानि पहुंचाती है।
- मछुआरों की आजीविका व स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव।

5.4.3 समुद्री–प्रदूषण नियंत्रण के उपाय

- विषैले पदार्थों के जल निस्तारण पर कानून बनाकर रोक लगाना।
- जहाजों से तल परिवहन के समय विशेष सावधानियां बरतना।
- तैलीय प्रदूषण को जल्द से जल्द, एकत्रित करके जलाकर, अवशोषित करके, मंथन करके रसायनों व लकड़ी के बुरादे से समुद्री पानी पर से हटाना।
- प्राकृतिक रूप से निस्पंदन, विसरण वाष्पन आदि द्वारा।

प्रदूषण नियंत्रण के प्रयास

- 1969 बॉन समझौते द्वारा
- 1974 समझौता, बाल्टिक व उत्तर अटलांटिक
- 1976 भूमध्य सागर पर समझौता
- समय–समय पर होने वाले सम्मेलन
- ग्रीस–पीस संस्था व प्रत्येक देश से जुड़े सागर में स्थानीय संस्थाओं के प्रयास।

5.4.4 सागरीय प्रदूषण के कारण घटी कुछ दुर्घटनायें

- 1978 में जापान में पारे से विषाक्त हुई मछलियों को खाने से करीब 20,000 लोग बीमार हुए व कई लोगों की मृत्यु हुई।
- 1985 में मुंबई के हाजी बंदरगाह पर लगभग 80,000 मछलियां अपशिष्ट में उपस्थित सायनाइड, लोहा व पारे के कारण मरी हुई पाई गयी।
- तेल प्रदूषण से हुई Exon Valdez दुर्घटना के बाल्ड ईगल्स की दुर्लभ प्रजातियां समाप्त हुईं व केरेकस नामक चिड़िया दुर्लभ हुई।
- ज्वतल Canyon दुर्घटना में तैलीय प्रदूषण से लगभग 30,000 समुद्री चिड़ियों की दर्दनाक मृत्यु।

5.5 ध्वनि प्रदूषण

ध्वनि यदि धीमी हो तो सहनीय होती है किंतु प्रबल ध्वनि असहनीय होती है, जिसे शोर की संज्ञा दी जाती है। ध्वनि तरंगों के रूप में, वायु के माध्यम से बहती है, व सुनने वाले द्वारा सुनी जाती है। बिना उचित माध्यम के ध्वनि तरंगें आगे नहीं बढ़ पाती हैं। इसीलिए निर्वात में की हुई कोई आवाज या कांच से बने परदे के आर–पार कोई ध्वनि नहीं जाती है। ध्वनि या तीव्रता को डेसीबल में व्यक्त किया जाता है। एक सामान्य व्यक्ति के लिए 50–60 डेसीबल तीव्रता की ध्वनि सुनना, उपयुक्त व सामान्य होता है तथा इससे अधिक तीव्रता की ध्वनि, शोर कही जा सकती है।

शहरीकरण, धार्मिक, सामाजिक सभी क्रियाकलापों में दिखावा, आदि के कारण शोर में वृद्धि हुई है। इस प्रकार वह ध्वनि, जो सुनने वाले के लिये अरुचिकर या तीव्र हो, शोर कहलाती है। यदि यही प्रक्रिया जिसमें अतितीव्र ध्वनियां बार–बार व लगातार सुनाई दें, शोर प्रदूषण कहलाती है।

5.5.1 शोर–प्रदूषण के स्रोत

ये स्रोत भी प्राकृतिक व मानव जनित अथवा कृत्रिम दोनों प्रकार के हैं–

प्राकृतिक स्रोतों के अंतर्गत, बिजली कड़कना, बादलों का गरजना, भूकम्प की ध्वनि, तेजी से गिरते पानी की ध्वनि तूफानी हवाएं आदि आती हैं। किंतु ये आवाजें क्षणिक होती हैं व इनका प्रभाव भी सीमित व क्षणिक होता है।

मानव जनित या कृत्रिम स्रोत– इस प्रकार का शोर कई कारणों से होता है। इनमें से प्रमुख कारण निम्न हैं–

5.5.1.1 आवागमन के साधनों द्वारा

शहरी क्षेत्रों में मोटर वाहनों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। अतः मुख्य मार्गों से गुजरने वाले, मुख्य बाजारों, मार्गों आदि के पास के भवनों में रहने वाली जनसंख्या, हर क्षण बसों, मोटरसाइकिलों, कारों जीप आदि ईंजन व हॉर्न से उत्पादित शोर का अनुभव करते हैं।रेल पटरियों के किनारे, दूर–दूर तक की कॉलोनियों में हर थोड़े–थोड़े अंतराल के बाद रेल के ईंजन व उसके हॉर्न का शोर गूंजता है व रात्रि को नींद तक में खलल डालता है।इसी प्रकार वायुयानों के उड़ने से भी तीव्र ध्वनि होती है।

5.5.1.2.औद्योगिक इकाईयों व मशीनों द्वारा

कई बड़े कारखानों से, मशीनों की तीव्र आवाज होती है, जिसे बिल्कुल पास खड़े दो व्यक्ति भी बात नहीं कर सकते हैं।छोटे कारखानों, जैसे–घड़ाई, नक्काशी, धातुओं की पन्नियां बनाना, आदि में लगातार एक ही प्रकार की आवाज होती है जो ध्वनि प्रदूषण का कारण बनती है।

5.5.1.3 बड़ी इमारतें सड़कें, फ्लाई ओवर आदि के दौरान

आज हर शहर में भीतर के बाहरी इलाकों में जगह–जगह विशाल इमारतें रिहायशी संकुलों आदि का कई–कई महीनों तक निर्माण कार्य चलता रहता है, जिसकी मशीनों से तथा मजदूरों के एक साथ कार्य करने की तेज ध्वनि, उस क्षेत्र में शोर–प्रदूषण करती है।सड़कें बनने व डामरीकरण आदि में भारी वाहन चलने की तेज आवाज होती है। पुल, फ्लाई ओवर आदि का शहरों के बसने के बाद, निर्माण कार्य कई–कई दिनों तक चलता है जिससे भारी मशीनें ध्वनि प्रदूषण करती हैं।

5.5.1.4 मनोरंजन के साधनों व सामाजिक क्रियाकलापों में

खुले मैदानों में बड़े–बड़े कार्यक्रम आयोजित करने में, धार्मिक जागरण, पूजा आदि में, शादी–ब्याह, जन्मदिवस जैसे सामाजिक व धार्मिक कार्यक्रमों में बड़े–बड़े ध्वनि विस्तारक यंत्र या बड़े स्पीकर्स लगातार तीव्र ध्वनि उत्पन्न की जाती है जिससे दूर–दूर तक शोर प्रदूषण होता है।

5.5.2 शोर प्रदूषण के प्रभाव

शोर मानव जीवन में कई प्रकार से हानि पहुंचाता है–

- अधिक शोर से चिड़चिड़ापन, थकान, सरदर्द आदि के लक्षण उत्पन्न होते हैं।
- अत्यधिक शोर सामान्य वार्तालाप में बाधक होता है।
- शोर, व्यक्ति की कार्य क्षमता व एकाग्रता को प्रभावित करता है।
- अस्पताल के बाहर, शैक्षिक संस्थाओं के बाहर होने वाला शोर, मरीजों व पठन–पाठन के वातावरण को बिगाड़ता है।
- उद्योगों में, जहां मशीनों का अत्यधिक शोर हो, कार्य करने वाले मजदूरों व कर्मचारियों के स्वास्थ्य व श्रवण शक्ति को प्रभावित करता है व ऊंचा सुनने तथा बहरेपन की समस्या उत्पन्न हो सकती है।

- भजन–कीर्तन, मनोरंजन आदि ध्वनि विस्तारक यंत्र लगाकर करने से आसपास रहने वाले लोगों, परीक्षा की तैयारी कर रहे छात्रों को असुविधा होती है।
- आवाज वाले बम व पटाखों का मनोरंजन के लिए जलाना व देर रात तक जलाने से असुविधा होती है।
- तीव्र ध्वनि से न केवल कानों पर, बल्कि हृदय गति बढ़ना, रक्त वाहिनियों का संकुचन, रक्तचाप में परिवर्तन, मांस–पेशियों में तनाव आदि दुष्प्रभाव पड़ते हैं।

5.5.3 शोर प्रदूषण नियंत्रण

शोर–प्रदूषण को कम करने का सबसे अच्छा उपाय है, उसे उसके स्रोत पर ही रोकना। कुछ सावधानियों व संयम द्वारा इसके हानिकारक प्रभावों से बचा जा सकता है। ये निम्न हैं–

- वाहनों के ईंजनों को सही रखकर, ईंजन का शोर कुछ कम किया जा सकता है।
- उद्योगों में, मशीनों को सही रख रखाव द्वारा शोर कम करना।
- उद्योगों व छोटे कारखानों को भी आवासीय बस्तियों से अधिक दूरी पर रखना।
- अधिक शोर वाले उद्योगों में कर्मचारियों व मजदूरों को कर्ण प्लग व कर्णमफ का उपयोग आवश्यक करके स्वास्थ्य पर होने वाले प्रदूषण को रोका जा सकता है।
- मुख्य मार्गों पर बने घरों में कांच की खिड़कियां दरवाजे लगाकर।
- नई तकनीक के उपकरणों के उपयोग द्वारा, जैसे– आज टाइपराइटर की खट–खट की जगह कम्प्यूटर से टाइपिंग, अन्य आफिस कार्य, कम या मध्यम ध्वनि उत्पन्न करते हैं।
- हवाई अड्डों, बस स्टेण्डों आदि पर अधिकतम शोर की सीमा निर्धारित की जानी चाहिये। जिससे शोर प्रदूषण कम हो।
- यातायात के नियमों का पालन करने से, आमजन को होने वाली परेशानियां कम हो सकेंगी।
- अपने घर में पार्टी जागरण, कथा वाचन, पाठ आदि करवाते समय लाउडस्पीकर का प्रयोग न करें। आप ऐसा अपनी व्यक्तिगत आस्था के कारण करते हैं अतः दूसरों को इसके लिए कष्ट देना उचित नहीं। धर्म के नाम पर होने के कारण व कष्ट पाते हुए भी आपत्ति करने से झिझकते हैं।
- शादी के बैण्डों में आदिम तरीकों से फूहड़ और कानफाडू संगीत बजाने से भीषण प्रदूषण फैलता है। शादी आपका पारिवारिक कार्य है इसमें आदिवासियों की तरह ढोल पीटना कितना जायज है विचार करें। ट्रेफिक रूकने से होने वाली अन्य परेशानियां अलग हैं।

5.6 तापीय प्रदूषण

तापीय प्रदूषण का अर्थ है वायुमंडल के तापमान कारकों के तापमान में अवांछित वृद्धि। तापीय प्रदूषण को दो तरह से देखा जा सकता है वायुमंडलीय तापीय प्रदूषण व जल तापीय प्रदूषण। वैश्विक तापवृद्धि एक ज्वलंत पर्यावरणीय समस्या है।

5.6.1 तापीय प्रदूषण के कारण

- वायुमंडलीय तापीय प्रदूषण के कारण
- उद्योगों से निकलने वाले धुएं में उपस्थित विभिन्न गैसों की अधिकता।
- ग्रीन हाउस गैस, कार्बन डाई आक्साइड, मेथेन, क्लोरोफ्लोरोकार्बन, नाइट्रस आक्साइड आदि की विश्व स्तर पर वायुमंडल में बढ़ोतरी।
- वाहनों की संख्या में, विश्व स्तर पर होने वाली बढ़ोतरी से।
- प्रशीतक उपकरण, वायुयानों में प्रशीतकों के प्रयोग से छोड़े गए सीएफसी के कारण।

- विलायकों पर आधारित उद्योगों से छोड़े गए, कार्बन टेट्राक्लोराइड, निलाईल क्लोरोफॉर्म आदि का वाष्प द्वारा।
- जल तापीय प्रदूषण के कारण
- उद्योगों द्वारा, गर्म औद्योगिक अपशिष्टों का जल में छोड़ा जाना।
- प्रदूषित जल की सतह पर उपस्थित पदार्थों द्वारा अधिकता में ताप का अवशोषण।

5.6.2 तापीय प्रदूषण के प्रभाव

- ओजोन गैस की रक्षक परत का क्षय।
- प्राकृतिक प्रकोपों में वृद्धि।
- पर्यावरण की ऑक्सीजन में कमी।
- ध्रुवीय प्रदेशों की बर्फ का पिघलना।
- समुद्र के जल स्तर में वृद्धि।
- जल–चक्र में परिवर्तन से कहीं भीषण सूखा तो कहीं बाढ़।
- कृषि भूमि में कमी।
- संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम के सेंटर फॉर ऐटमॉस्फिरिक साइंसेज द्वारा कराए अध्ययन के अनुसार तापीय प्रदूषण का खतरा भारत जैसे उष्ण कटिबंधीय देशों पर होगा।
- हिमालय के शिखरों पर जमी बर्फ पिघलने से समुद्र तल, ऊंचा होगा व तटीय क्षेत्रों के डूबने का खतरा।
- उड़ीसा, बंगाल की खाड़ी के तटों पर तूफान का खतरा अधिक।
- मौसम छोटे व असंभावित होंगे।
- जलाशयों के तापमान में वृद्धि से जल तंत्रों को हानि।
- 2001 पिछले 140 वर्षों में सबसे अधिक गर्म वर्ष रहा।
- पराबैंगनी विकिरणों की अधिकता से कैंसर, त्वचा रोगों में वृद्धि।

5.6.3 ताप प्रदूषण के नियंत्रण के लिये राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय प्रयास

- मांट्रियल घोषणा, 16 सितम्बर 1987 में चरणबद्ध रूप से ओजोन परत को क्षति पहुंचाने वाले पदार्थों के प्रयोग पर रोक।
- इसके लिये 1990 में लंदन तथा 1992 में बीजिंग में सम्मेलन हुए।
- वैश्विक ताप वृद्धि में औद्योगिकरण का बड़ा हाथ है खास कर जो विकसित देश जिम्मेदार हैं वायु में ग्रीन हाउस गैसें कम से कम मात्रा में छोड़ें।
- वृक्षारोपण अधिक करें। जिससे कार्बन डाई आक्साइड अधिक से अधिक काम आ जाए व वायुमंडल ठंडा रहे।
- जल जागृति की आवश्यकता।

5.7 नाभिकीय प्रदूषण

रेडियो धर्मी तत्त्व, जहां भी होते हैं धीरे–धीरे विखंडित होते रहते हैं व पर्यावरण, मानव, जीव व वनस्पति जगत को स्थाई नुकसान पहुंचाते हैं। इनके खनन, उपयोग, संचय व निस्तारण में हर प्रकार की सावधानी, यदि न बरती जाए तो ये बहुत हानिकारक हो सकते हैं।

5.7.1 नाभिकीय प्रदूषण के कारण

- यूरेनियम, थोरियम आदि नाभिकीय प्रक्रियाओं में काम आने वाले तत्त्व हैं इनके खनन के समय यह प्रदूषण होता है।

- समस्थानिकों के उत्पादन के समय अपशिष्ट पदार्थ के रूप में।
- परमाणु शक्ति द्वारा वैद्युत उत्पादन संयंत्रों से।
- नाभिकीय रिएक्टरों से।
- नाभिकीय हथियारों के बनने व उपयोग के दौरान।
- रेडियो ट्रेसरों का प्रयोग दवा में, अस्पतालों में, जीव विज्ञान में होता है। Cu o I 125 महत्त्वपूर्ण आइसोटोप हैं। इनके उपयोग के समय भी प्रदूषण हो सकता है।

5.7.2 नाभिकीय प्रदूषण के प्रभाव

- परमाणु परीक्षणों के दौरान रेडियो सक्रिय पदार्थ दूर–दूर तक फैल जाते हैं। ये मिट्टी के माध्यम से पौधों से मनुष्य की या जीव–जंतुओं की खाद्य श्रृंखला में प्रवेश कर जाते हैं तथा केट्रेक्ट व ल्यूकेमिया जैसी बीमारियां पैदा होती हैं।
- रेडियोधर्मी तत्त्व जीवों के प्रोटीन से क्रिया कर एंजाइमों आदि को नष्ट करके उनकी वृद्धि को ही रोक देते हैं।
- असामान्य शिशुओं का जन्म, त्वचा रोग आदि रेडियोधर्मी विकिरणों के प्रभाव से होते हैं।
- यदि पानी के साथ ये मानव शरीर में चले जाऐं तो, आमाशय में खराबी, जेनेटिक परिवर्तन आदि हो सकते हैं।
- रेडियोधर्मी प्रदूषण का प्रभाव, धीरे–धीरे, कई वर्षों में भी, लकवे, बहरापन, गूंगापन आदि के रूप में दिखाई देता है।
- हड्डियों की विकृतियां, मंदबुद्धिता भी रेडियोधर्मी विकिरणों से होते हैं।

5.7.3 नाभिकीय–प्रदूषण नियंत्रण के उपाय

इनके कई दुष्प्रभावों के उपरांत भी इनमें निहित असीमित ऊर्जा के कारण इनका उपयोग आज आवश्यक है। निम्न कुछ उपायों से इनके हानिकारक प्रभावों से बचा जा सकता है–

- इनके खनन व उपयोग के समय कम से कम बिखराव हो।
- इनके खनन में गीली विधि को काम में लिया जाए।
- इनका संरक्षण व संचय इस प्रकार हो कि इनके विकिरण यूंह ी न फैलें।
- उद्योगों से इस प्रकार के अपशिष्टों को अत्यधिक ऊंचाई पर छोड़ा जाए।
- जहां तक हो उच्च रेडियोधर्मिता वाले पदार्थों का समुद्र, नदी जल आदि में विसर्जन न किया जाए।
- जहां तक हो स्रोत से दूर रखा जाए।
- जहां ये नाभिक काम आते हों वहां कार्य जल्दी खत्म होना चाहिये जैसे अधिक व्यक्ति व समय कम। जिससे प्रतिव्यक्ति उद्‌भासन कम से कम हो।
- इन विकिरणों से प्रभावित कक्ष में, विशेष मास्क, सूट, बूट, ऑवरकोट दस्ताने आदि का प्रयोग आवश्यक हो।

5.8 प्रदूषण–निवारण में एक नागरिक योगदान

किसी भी देश के एक अच्छे नागरिक का कर्त्तव्य है कि वह देश की सभी समस्याओं की जानकारी रखें, और उस समस्या को दूर करने या कम करने में अपना योगदान दे। पर्यावरण प्रदूषण समस्या प्रत्येक व्यक्ति से जुड़ी है क्योंकि जल, वायु, मृदा, वातावरण, सबका व्यक्ति के जीवन से गहरा सम्बन्ध है। एक साधारण नागरिक के रूप में प्रदूषण निवारण में निम्न योगदान दे सकते हैं–

- जल, थल, वायु किसी भी प्रकार के प्रदूषण को बढ़ाने में अपना योगदान न करके।

- जलाशयों, ताल–तलैया आदि जल तंत्रों में किसी भी प्रकार से प्रदूषण पैदा करने वाली वस्तुएं न डालकर, इनकी स्वच्छता में अपना योगदान दे सकते हैं।
- घरेलू अपशिष्टों को यूं ही भूमि पर इधर–उधर न डालकर।
- जहां तक हो गीले व सूखे कचरे को अलग–अलग करके।
- पुनःचक्रित होने वाले पदार्थों को अलग करके, उन्हें सही जगह पर देकर।
- जहां तक हो प्लास्टिक की थैलियों का प्रयोग न करके, कागज व कपड़े की थैलियों का उपयोग करके जो जैव अपघटित होती हैं।
- वनों के पेड़ों के संरक्षण में अपना योगदान देकर।
- प्रकृति प्रदत्त संसाधनों का अतिदोहन न करके।
- अपने शहर में उपस्थित सभी रमणीय स्थलों, पुरामहत्व की इमारतों आदि की स्वच्छता का संरक्षण करके।
- जल को व्यर्थ न बहाकर।
- कृषि कार्यों, बाग–बगीचों, खेतों आदि में जहां तक हो जैव खाद व प्राकृतिक कीटनाशकों का प्रयोग करके।
- अधिक मात्रा में, कार्बनिक विलायकों से युक्त कृत्रिम परफ्यूम, स्प्रे आदि का उपयोग न करके।
- क्लोरो–फ्लोरो कार्बन युक्त उपकरणों का प्रयोग न करके।
- प्रकृति के प्रति जन–जागरण जैसे कार्यक्रमों का अनुमोदन करके।
- प्रदूषण नियंत्रण नियमों का पालन करके।

5.9 प्रदूषण : कुछ घटनाएं

पर्यावरण प्रदूषण की कुछ ऐसी घटनाएं हैं जिन्होंने पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता व चिंता उत्पन्न की–

- बेल्जियम (1930) में मेयूजवैली में औद्योगिक वायु–प्रदूषण की घटना में कई दिनों तक विषाक्त धुआं छाया रहा जिससे 63 वृद्ध और कमजोर लोगों की मृत्यु हो गई।
- पेनसिलवेनिया, 1948 में औद्योगिक शहर डोनोरा में वायु प्रदूषण के जमा होने से कई 20 व्यक्तियों की मृत्यु हुई व कई लोग बीमार हुए।
- प्रकाश रासायनिक स्मोग 1952 लंदन एक औद्योगिक शहर है, दिसंबर 1952 में वहां कोयले व वाहनों के धुएं से व अधिक ठंडा होने से वह क्षोभ मंडल के निचले हिस्से में धुएं के कुहरेनुमा बादल 5 दिनों तक जमे रहे जिससे लगभग 4000 व्यक्तियों की मौत हो गई व कई बीमार हो गए।
- भोपाल गैस कांड 1984 वायु प्रदूषण की एक अन्य घटना को भारतवासी 'भोपाल गैस दुर्घटना' के नाम से जानते हैं, जबकि खाद बनाने वाले, यूनियन कार्बाइड कारखाने से 2–3 दिसम्बर 1984 की रात को जहरीली मिथिल आइसोसायनाइड गैस का अत्यधिक मात्रा में एक साथ रिसाव होने से हजारों लोगों की मृत्यु हुई, अंधापन, मस्तिष्क घात जैसी बीमारियां पैदा हुई, हजारों में मवेशी मरे। यह दुर्घटना इतिहास की एक दुःखद घटना है, जिसके प्रभाव आज कई वर्षों बाद भी दिखाई देते हैं।
- चेर्नोबिल (रूस) परमाणु संयंत्र दुर्घटना रूस की नाभिकीय प्रदूषण की यह दुर्घटना जानी मानी है। परमाणु संयंत्र से रिसाव से, जल, मृदा व वायु प्रदूषण के हानिकारक प्रभाव लम्बे समय तक चलते हैं।

- 1994 में सूरत (भारत) में प्लेग प्लेग जैसी बीमारी, जिसके समूल नाश का दावा किया जाता है, गंदगी के कारण सूरत जैसे औद्योगिक शहर में पुनः प्रकट हुई जिससे कई लोग मरे व व्यापार पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा।
- मैनामाता (जापान) दुर्घटना जल प्रदूषण की इस घटना में पारे से विषाक्त हुई मछलियों के सेवन से, लगभग 20,000 जापानी बीमार हुए व कई लोगों की मृत्यु हो गई।
- 1998 में ओजोन छिद्र एंटार्कटिका पर, वैज्ञानिकों को, ओजोन परत के क्षय का पता चला जिसका कारण वायू प्रदूषण में क्लोफ्लोरो कार्बन्स का होना पाया गया।
- फ्लोराइड प्रदूषण देश के किसी–किसी क्षेत्र में फ्लोराइड प्रदूषण इतना अधिक है कि उन क्षेत्रों में युवावस्था में ही दांत टूटे हुए व हड्डियां मुड़ी हुई होती है। उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले में सिराहा खेड़ा में इसकी भयावहता देखी जा सकती है।

6. गरीबी

विश्व में गरीबी अल्पविकसित राष्ट्रों में विद्यमान एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सामाजिक बुराई है। गरीबी, असमानता, और आर्थिक सुरक्षा एक दूसरे से जुड़ी समस्याएं हैं। भारत जैसे अल्प विकसित देशों में आर्थिक असमानताएं एक हद तक तो गरीबी के लिए उत्तरदायी हैं और गरीबी की हालत में व्यक्ति असुरक्षित अनुभव करता है।

वर्ग व्यवस्था पर आधारित अल्प–विकसित देशों में गरीबी व्यापक स्तर पर पाई जाती है। इन देशों में प्रायः 30 से 60 प्रतिशत लोगों का जीवन स्तर इतना नीचा होता है कि उन्हें जीवन रक्षक अनिवार्य आवश्यकताओं को संतुष्ट करने के लिए आवश्यक वस्तुओं के अतिरिक्त कुछ भी उपलब्ध नहीं होता। यही नहीं कुल जनसंख्या का अधिकांश भाग भुखमरी का शिकार भी होती है। गरीबी शहरी और ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों में पाई जाती है, परंतु इस सम्बन्ध में कोई संदेह नहीं है कि गांवों में इसकी व्यापकता अधिक है। इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता है कि शहरों की औद्योगिक बस्तियों में जीवन कष्टदायक है। शहरी क्षेत्रों में झुग्गी झोपड़ी बस्तियों में रहने वाले परिवारों को पोषक भोजन और जीवन की अन्य अनिवार्यताएं उपलब्ध नहीं हैं, परंतु गांवों में खेतिहर मजदूर, छोटे किसान और दस्तकार की स्थिति इससे भी अधिक दयनीय होती है।

वस्तुतः गरीबी एक ऐसी समस्या है जिसे पहचाना जा सकता है किंतु जिसका नपे–तुले शब्दों में वर्णन करना कठिन है। इस कठिनाई के बावजूद भी इसके अर्थ को स्पष्ट करने के सार्थक प्रयास समय–समय पर किये गये हैं। गरीबी एक ऐसी अवस्था है जिसमें समाज का एक महत्त्वपूर्ण भाग अपने जीवन, स्वास्थ्य एवं कार्य कुशलता के लिए आवश्यक न्यूनतम उपभोग–आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाने से भी वंचित रहता है। इन आवश्यकताओं में भोजन, कपड़ा, मकान, शिक्षा तथा स्वास्थ्य से सम्बन्धित मानवीय न्यूनतम आवश्यकताओं को सम्मिलित किया जाता है।

भारत में लगभग सभी अर्थशास्त्री जिन्होंने गरीबी की व्यापकता का अध्ययन किया है, इस बात से सहमत हैं कि इस देश में केवल उन्हीं लोगों को गरीब माना जा सकता है जो निर्धारित न्यूनतम जीवन–स्तर से भी नीचे जीवन–यापन करते है। परंतु न्यूनतम जीवन–स्तर के लिए प्रति व्यक्ति मासिक आय क्या होनी चाहिए, इस पर सभी पूरी तरह सहमत नहीं हैं। जुलाई 1962 में सरकार द्वारा मनोनीत 9 विद्वानों की एक समिति ने सिफारिश की कि 1960–61 में प्रचलित मूल्यों के आधार पर न्यूनतम जीवन–स्तर के लिए प्रति व्यक्ति निजी उपभोग पर बीस रुपये मासिक व्यय होना चाहिए। यह समिति किस आधार पर इस राशि पर पहुंची थी, इस सम्बन्ध में कोई स्पष्ट जानकारी उपलब्ध नहीं है इसके अतिरिक्त समिति ने शहरी और ग्राम्य क्षेत्रों में न्यूनतम जीवन–स्तर के लिए वांछित उपभोग पर व्यय की दो अलग–अलग राशियां न बतलाकर एक

ही राशि की सिफारिश की है, जो ठीक नहीं है क्योंकि शहरों तथा गांवों में समान जीवन–स्तर के लिए उपभोग पर असमान व्यय होना आवश्यक है।

6.1 गरीबी की व्यापकता

भारत में गरीबी की व्यापकता का अनुमान लगा सकने के लिए समुचित एवं संतोषजनक आंकड़ों का अभाव है। इसका कारण यह है कि इस देश में आय के वितरण से सम्बन्धित आंकड़ों का प्रायः संकलन नहीं किया जाना। परंतु राष्ट्रीय सैम्पल सर्वेक्षण के विभिन्न दौरों में जनसंख्या के विभिन्न वर्गों द्वारा निजी उपभोग पर व्यय के संतोषजनक आंकड़े उपलब्ध हुए हैं। भारत में लगभग उन सभी अर्थशास्त्रियों ने जिन्होंने गरीबी की समस्या का अध्ययन करना चाहा है, अपने विश्लेषण के लिए इन्हीं आंकड़ों का प्रयोग किया है। परंतु गरीबी की परिभाषा पर मतभेद और अध्ययन की रीतियों में अंतर के कारण प्रणव बर्धन, बी.एस. मिन्हास, पी. डी. ओझा तथा वी.एस. दांडेकर व नीलकंठ रथ गरीबी की व्यापकता के सम्बन्ध में एक दूसरे से भिन्न निष्कर्षों पर पहुंचे हैं।पी.डी. ओझा तथा दांडेकर व नीलकंठ रथ ने जहां शहरी और ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों में गरीबी के अनुमान लगाए हैं, वहां बर्धन और मिन्हास ने केवल ग्रामीण क्षेत्र में गरीबी की जांच की है।

6.1.1 पी.डी. ओझा के अनुमान

ओझा का मत है कि वे सभी व्यक्ति जिन्हें अपने आहार से प्रतिदिन 2,250 कैलोरी ऊर्जा की प्राप्ति नहीं होती, गरीब माने जा सकते हैं गांव में लोगों के आहार में खाद्यान्नों की प्रधानता है। अतः वहां पर गरीबी की रेखा के ऊपर आने के लिए आवश्यक है कि प्रतिदिन खाद्यान्नों से 1,800 कैलोरी ऊर्जा की प्राप्ति हो। 1960–61 में प्रचलित मूल्यों के आधार पर भोजन के उपर्युक्त स्तर के अनुरूप प्रति व्यक्ति आय 15–17 रुपए प्रतिमाह होना चाहिए। इस अधार पर ओझा के अनुसार 1960–61 में 52 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या गरीबी स्तर के नीचे थी। इसी वर्ष शहरी क्षेत्र में भी 76 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी के स्तर से नीचे थी। 1967–68 में प्रचलित मूल्यों पर गरीबी की रेखा पर ग्रामीण क्षेत्र में प्रति व्यक्ति निजी उपभोग पर मासिक व्यय 40 रुपए था। इस वर्ष ग्रामीण क्षेत्र में उपभोग के इस स्तर से नीचे रह जाने वाले लोगों की कुल संख्या 20 करोड़ 90 लाख थी, जो समस्त ग्रामीण जनसंख्या की 70 प्रतिशत थी।

6.1.2 दांडेकर और रथ के अनुमान

दांडेकर और रथ के अनुसार 1968–69 में ग्रामीण क्षेत्र में वे परिवार गरीबी के स्तर के नीचे थे, जिनकी वार्षिक आय 324 रुपये से कम थी। इस श्रेणी में आने वाले लोग समस्त ग्रामीण जनसंख्या के 40 प्रतिशत थे। शहरी क्षेत्र के लिए दांडेकर और रथ ने गरीबी का स्तर प्रति व्यक्ति 486 रुपए वार्षिक आय पर निर्धारित किया है। इस आधार पर 1968–69 में शहरी क्षेत्र में 50 प्रतिशत से अधिक व्यक्ति गरीबी के स्तर के नीचे थे। 1960–61 से 1968–69 के बीच इनके अनुसार गांव और शहर दोनों ही स्थानों पर असमानताएं बढ़ी हैं।

6.1.3 प्रणव के बर्धन के अनुमान

बर्धन ने कृषि के तकनीकी प्रगति के वितरण पर प्रभाव का अध्ययन किया है। उनके अनुसार वर्तमान शताब्दी के सातवें दशक के अंतर में भारत की लगभग 54 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या न्यूनतम स्वीकार्य जीवन–स्तर के नीचे थी। बर्धन ने गरीबी की रेखा 1960–61 के मूल्यों के आधार पर प्रति व्यक्ति 15 रुपए मासिक निजी उपभोग के स्तर के अनुरूप स्वीकार की है। 1967–68 और 1968–69 में प्रचलित कीमतों के आधार पर इन वर्षों में गरीबी की रेखा क्रमशः 30.0 और 29.9 रुपए प्रति व्यक्ति मासिक उपभोग के अनुरूप होगी। इस आधार पर बर्धन का अनुमान है कि 1968–69 में गरीबी की रेखा के नीचे आने वाले ग्रामीणों की संख्या 23 करोड़ थी, जो तत्कालीन ग्रामीण जनसंख्या की 54 प्रतिशत थी।

6.1.4 बी.एस. मिन्हास के अनुमान

मिन्हास का विचार है कि 1960–61 के मूल्यों के आधार पर 200 रुपए वार्षिक के प्रति व्यक्ति निजी उपभोग द्वारा ग्रामीण परिवारों के लिए न्यूनतम जीवन–स्तर को प्राप्त कर सकना संभव होगा। गरीबी का स्तर निर्धारित करने के लिए मिन्हास इस राशि पर किसी वैज्ञानिक परिकलन के द्वारा नहीं पहुंचते। उनकी रीति बहुत सरल है। चूंकि शहरी और ग्राम्य दोनों ही क्षेत्रों को मिलाकर देखने पर सारे देश के लिए सरकारी विशेषज्ञ समिति न्यूनतम जीवन स्तर के लिए 240 रुपए वार्षिक प्रति व्यक्ति निजी उपभोग की राशि निर्धारित करती है तो गांवों में न्यूनतम जीवन स्तर के लिए प्रति व्यक्ति निजी उपभोग की राशि इससे कम ही होनी चाहिए और मिन्हास इसे 200 रुपए मान लेते हैं। इस प्रकार मिन्हास द्वारा निर्धारित गरीबी की रेखा बर्धन और दांडेकर व नीलकंठ रथ द्वारा स्वीकृत गरीबी की रेखा से ऊंची है। परंतु मिन्हास के अनुमानों के विषय में सबसे मनोरंजक बात यह है कि यद्यपि वे गरीबी की रेखा दांडेकर व रथ और बर्धन की तुलना में ऊंची निर्धारित करते हैं, फिर भी उनके अनुसार 1967–68 में गांवों में गरीबों की संख्या 15.4 करोड़ थी, जो समस्त ग्रामीण जनसंख्या की 37.1 प्रतिशत थी।

गरीबी की व्यापकता सम्बन्धी उपरोक्त सभी अनुमान लगभग 25 वर्ष पुराने हैं और परस्पर भिन्न हैं। जहां ओझा के अनुसार 1967–68 में लगभग दो तिहाई से भी अधिक ग्रामीण जनता गरीबी की रेखा के नीचे थी, वहां मिन्हास का विचार है कि इसी वर्ष में केवल 37.1 प्रतिशत ग्रामीणजन गरीबी की स्थिति में थे। प्रणव बर्धन का अनुमान ओझा और मिन्हास के अनुमानों के बीच में है। दांडेकर और नीलकंठ रथ यद्यपि गरीबी की रेखा मिन्हास द्वारा निर्धारित रेखा से नीचे रखते हैं, परंतु उनके द्वारा अनुमानित गरीबों की संख्या मिन्हास द्वारा दी गई गरीबों की संख्या से बड़ी है। विभिन्न शोधकर्ताओं के निष्कर्षों में इस अंतर से भ्रम नहीं होना चाहिए क्योंकि सभी के अध्ययनों से इतना अवश्य सिद्ध होता है कि भारत में गरीबी बहुत व्यापक है और इसके निवारण के लिए स्पष्ट नीति होनी चाहिए।

6.2 गरीबी के कारण

भारत में निर्धनता की समस्या तथा उसके कारणों की विवेचना दीर्घकाल से अलग–अलग लोगों द्वारा अलग–अलग प्रकार से की जाती रही है। सन् 1870 में दादाभाई नौरोजी ने भारत की निर्धनता के कारणों की विवेचना की थी। इसके मुख्य कारणों को दो भागों में बांटा जा सकता है–

अ. आर्थिक कारक और

ब. गैर आर्थिक कारक।

6.2.1 आर्थिक कारक

निम्नलिखित आर्थिक कारक भारत में गरीबी की विद्यमानता हेतु प्रमुख रूप से उत्तरदायी हैं–

6.2.1.1 राष्ट्रीय उत्पाद का निम्न स्तर

भारत का कुल राष्ट्रीय उत्पाद जनसंख्या की तुलना में काफी कम है। इस कारण देश के नागरिकों की प्रति व्यक्ति आय का स्तर अत्यन्त निम्न है। भारत का शुद्ध राष्ट्रीय उत्पादन 2000–2001 में उसी वर्ष की कीमतों के आधार पर 16,79,982 करोड़ रुपए था तथा प्रति व्यक्ति आय केवल 16,047 रुपए थी, इस दृष्टि से भारत जो यू.एन.ओ. द्वारा निर्धारित बहुत अधिक निर्धन देशों की कसौटी में आता है।

6.2.1.2 विकास की कम दर

भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में विकास की दर बहुत कम रही है। योजनाओं की अवधि में विकास की दर 4.1 प्रतिशत रही है। इसके विपरीत जनसंख्या 1.8 प्रतिशत की दर से बढ़ रही है। अतएव जनसंख्या

वृद्धि दर की तुलना में विकास की दर बहुत कम बढ़ रही है। विकास की दर में कम वृद्धि होने के फलस्वरूप निर्धनता को दूर नहीं किया जा सका है।

6.2.1.3 कीमतों में वृद्धि

भारत में द्वितीय पंचवर्षीय योजना के आंरभ से ही कीमतों में जो बढ़ने की प्रवृत्ति आरंभ हुई है वह अभी तक जारी है। इस तीव्र गति से होने वाली कीमत वृद्धि का देश की निर्धन जनता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके फलस्वरूप निर्धनता का प्रभाव बढ़ता जा रहा है।

6.2.1.4 जनसंख्या का अधिक दबाव

भारत में जनसंख्या अत्यन्त द्रुतगति से बढ़ रही है भारत में जनसंख्या का अकार न केवल बड़ा है वरन् इसमें तेजी से वृद्धि हो रही है। इस वृद्धि के कारण पिछले कई वर्षों से मृत्यु दर का तो कम हो जाना पर जन्म दर का लगभग स्थिर रहना है। जनसंख्या की वृद्धि की यह दर, जो 1941–51 में 1.0 प्रतिशत थी, बढ़कर 1981–91 में 2.1 प्रतिशत हो गई है। जनसंख्या 2000–2010 में बढ़कर 102.70 करोड़ हो गई, जबकि 1991 की जनगणना के अनुसार जनसंख्या 84.63 करोड़ थी। जनसंख्या का यह दबाव विकास के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा रही। जनसंख्या इस गति से बढ़ रही है कि कुल उत्पादन बढ़ने पर प्रत्येक व्यक्ति के हिस्से में अधिक धन नहीं हो पाता, जिससे जीवन–स्तर ऊंचा नहीं हो पाता। प्रति व्यक्ति भूमि भी बेकार होकर 0.13 हैक्टेयर रह गई है।

6.2.1.5 निरन्तर रहने वाली बेरोजगारी

भारत में बेरोजगारी के विभिन्न प्रकारों प्रच्छन्न अल्प रोजगार, मौसमी आदि, में प्रत्येक प्रकार की बेरोजगारी पाई जाती है। जनसंख्या के निरन्तर बढ़ने से यहां चिरकालीन बेरोजगारी व अर्द्धबेरोजगारी की स्थिति उत्पन्न हो गई है। भारत में शिक्षित बेरोजगारी से भी बढ़ कर कृषि में अदृश्य बेरोजगारी की समस्या है। बेरोजगारी की समस्या निर्धनता का मुख्य कारण है। भारत में 2000–2001 में लगभग 90 लाख व्यक्ति बेरोजगार थे। बेरोजगारी के कारण राष्ट्र की श्रमशक्ति का उत्पादक कार्यों में पूर्ण उपयोग नहीं हो पाता है। इसके अतिरिक्त कार्यशील जनसंख्या पर आश्रितों की संख्या भी बढ़ रही है। इससे आय तथा उपभोग का स्तर भी कम हो रहा है।

6.2.1.6 पूंजी की अपर्याप्तता

यद्यपि पूंजी का सभी कार्यों में महत्त्व होता है किंतु उद्योग, परिवहन, सिंचाई तथा विकास के अन्य साधनों की स्थापना में पूंजी का विशेष स्थान होता है। इसलिए किसी देश के आर्थिक पिछड़ेपन का मुख्य कारण वहां पर पूंजी का अभाव हुआ करता है। भारत में भी ऐसी स्थिति विद्यमान है। भारत में लोगों की बचत का स्तर अत्यन्त निम्न है।

6.2.1.7 कुशल श्रम व तकनीकी ज्ञान की कमी

भारत में औद्योगिक शिक्षा तथा प्रशिक्षण का भी उचित प्रबंध नहीं है। इस अभाव में जनसंख्या का आकार अधिक होने के कारण श्रम की पूर्ति तो बहुत अधिक है परन्तु कुशल व प्रशिक्षित श्रम का अभाव है।

6.2.1.8 योग्य व निपुण उद्यमकर्ताओं का अभाव

अल्प–विकसित देशों में औद्योगिक विकास की प्रारंभिक अवस्था में साहस और कल्पना शक्ति रखने वाले, जोखिम उठाने की योग्यता रखने वाले तथा अपने कार्य में दक्ष, निपुण एवं चतुर उद्यमकर्ताओं का अभाव होता है। भारत में भी ऐसे उद्यमकर्ताओं का नितान्त अभाव है। फलस्वरूप, देश में मुख्यतः उन्हीं उद्योगों का विकास हो सका है जिनमें बहुत कम जोखिम है।

6.2.1.9 उचित औद्योगिकरण का अभाव

औद्योगिक दृष्टि से भारत अभी बहुत पिछड़ा हुआ है। भारत की गिनती पिछड़े हुए राष्ट्रों में की जाती है। यह इस तथ्य से प्रमाणित हो जाता है कि आज भी बड़े स्तर के उद्योगों में भारत की कुल कार्यशील जनसंख्या का केवल 3 प्रतिशत भाग ही लगा हुआ है। यद्यपि उपभोक्ता वस्तु उद्योग जैसे साबुन, कपड़ा, चीनी, चमड़ा, तेल आदि उद्योगों का काफी सीमा तक विकास संभव हुआ है किंतु पूंजीगत एवं उत्पादक वस्तुओं के उद्योगों का विकास अभी तक समुचित प्रकार से नहीं हो पाया है। इसके लिए आज भी भारत को विदेशों पर निर्भर रहना पड़ता है।

6.2.1.10 पुरानी सामाजिक संस्थाएं

भारतीय अर्थव्यवस्था का मूल सामाजिक आधार आज तक भी पुरानी सामाजिक संस्थाएं तथा रूढ़ियां हैं। यह वर्तमान समय के अनुकूल नहीं है। ये संस्थाएं हैं– जातिप्रथा, संयुक्त परिवार प्रथा और उत्तराधिकार के नियम आदि। ये सभी भारतीय अर्थव्यवस्था में तेजी से होने वाले परिवर्तनों में बाधा उपस्थित करते हैं।

6.2.1.11 प्राकृतिक साधनों का उचित प्रयोग न होना

भारत प्राकृतिक संसाधनों की उपलब्धि की दृष्टि से अत्यन्त ही सम्पन्न देश हैं। यहां लोहा, कोयला, मैंगनीज, अभ्रक जैसे बहुमूल्य खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं तथा सम्पूर्ण वर्ष बहने वाली नदियां विद्युत शक्ति का एक महत्त्वपूर्ण साधन हैं। भारत में विभिन्न प्रकार की मिट्टी पाई जाती है जो भिन्न भिन्न किस्म की फसलें उपजा सकती हैं तथा मानव शक्ति भी अन्य देशों से बहुत अधिक है। परंतु इन सब साधनों का हमारे देश में ठीक प्रकार से प्रयोग नहीं हुआ है।

6.2.1.12 आधारिक संरचना के समुन्नत साधनों का अभाव

भारत के विशाल क्षेत्र के अनुसार यहां यातायात एवं संदेशवाहन के साधनों का समुचित विकास नहीं हो सका है। सड़क और रेल यातायात के समुचित रूप से उन्नत न होने के कारण कृषि विपणन दोषपूर्ण है। उद्योगों में समय पर कच्चा माल नहीं पहुंच पाता तथा उत्पादित वस्तुओं का सही वितरण नहीं हो पाता।

6.2.1.13 स्फीतिकारी दबाव

भारत में विशेषकर आम जरूरत की वस्तुओं की लगातार बढ़ती हुई कीमतों के कारण गरीब एवं मध्यम वर्ग पर दबाव बढ़ता जाता है। निरंतर बढ़ती हुई कीमतों के कारण गरीबी की रेखा के नीचे जीवन यापन करने वाली जनसंख्या के आकार में निरंतर वृद्धि हो रही है।

6.2.2 गैर–आर्थिक कारण–भारत में गरीबी की विकराल स्थिति की विद्यमानता हेतु केवल आर्थिक ही नहीं वरन् अनेक सामाजिक कारण भी समान रूप से उत्तरदायी रहे हैं। गरीबी के लिए प्रमुख उत्तरदायी कारण निम्नलिखित हैं–

6.2.2.1 ब्रिटिश शासन की विरासत

अंग्रेजों ने अपने उपनिवेशी शासन के दौरान भारत में जमकर शोषण किया, यहां के परम्परागत उद्योग धन्धों को नष्ट किया और इस देश के आर्थिक विकास के प्रतिकूल नीतियां अपनाई। इन सभी का सम्मिलित प्रभाव यह हुआ कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था इस प्रकार से छिन्न–भिन्न हुई की अभी तक संभल नहीं पाई है।

6.2.2.2 जनसंख्या में तेजी से वृद्धि

भारत की जनसंख्या का आकार बड़ा है साथ ही इसमें बहुत तेजी से वृद्धि होती जा रही है। इसके कारण राष्ट्र की कुल आय में वृद्धि के बावजूद भी प्रति व्यक्ति आय एवं उपभोग के स्तर में कोई खास वृद्धि नहीं हो पा रही है।

6.2.2.3 सामाजिक कारण

अशिक्षा, अज्ञानता, भाग्यवाद, पुरातनपंथी, पिछड़े एवं विकास–विरोधी ढांचे, विचारों, मान्यताओं एवं परम्पराओं के कारण भी देश विकास पथ अनेक बाधाओं से झुझना पड़ा है। इसके अतिरिक्त सरकार की कराधान और व्यय नीतियों का भी धनवान और गरीब के बीच के अंतराल को पाटने में ठीक प्रकार से अपनी उपयुक्त भूमिका का निर्वाह नहीं किया जा सका है।

6.3 भारत में गरीबी से सम्बन्धित कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्य

भारत में गरीबी की व्यापकता का अनुमान यह आंकड़े स्पष्ट नहीं करते कि गरीबी की अवस्था में व्यक्ति और समाज का सामान्य जीवन–स्तर क्या होता है। यह समझने के लिए प्रति व्यक्ति आय के आंकड़े और रहन–सहन के स्तर सम्बन्धी तथ्य सहायता करते हैं।

6.3.1. अल्प प्रति व्यक्ति आय

भारत में प्रति व्यक्ति वार्षिक आय अल्प है। लेकिन इस औसत को व्यापारियों, उद्योगपतियों, बड़े किसानों तथा ऊंचा वेतन पाने वाले मध्यम वर्ग के लोगों की आय प्रभावित करती है। इसलिए बड़ी संख्या में लोगों की आय इस औसत से बहुत नीची होगी। योजना आयोग ने शहर में उन लोगों को गरीब माना है जिनकी 1979–80 की कीमतों के आधार पर प्रतिदिन आय 3 रुपए से भी कम है। दरअसल यह ठीक नहीं है। 1979–80 की कीमतों के आधार पर इस आय में व्यक्ति रहन सहन क्या होगा, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। यदि हम यह मान लें कि वे सभी व्यक्ति जिनकी आय प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय से कम है, गरीब है तो संभवतया इस देश के दो तिहाई से अधिक लोग गरीबों की श्रेणी में आ जाएंगे।

6.3.2.रहन–सहन का नीचा स्तर

यदि हम भारत के जनसाधारण के रहन सहन के स्तर पर विचार करते हैं तो जनसंख्या के एक बड़े भाग की दयनीय स्थिति स्पष्ट हो जाती है। अधिकांश भारतीय अल्प अहार पर जीवित रहते हैं। देश में लगभग 99 प्रतिशत लोगों की संतुलित भोजन नहीं मिलता। खेतिहर, मजदूर, छोटे किसान, ग्रामीण दस्तकार, शहरी मजदूर प्रायः अपर्याप्त भोजन पर जीवित रहते हैं। स्पष्ट कि सम्पन्न परिवारों ने इस औसत से बहुत अधिक कपड़े का उपभोग किया होगा। इसलिए अधिकांश परिवारों ने प्रति व्यक्ति 6–7 मीटर से भी कम उपभोग किया होगा। किसान तथा मजदूर परिवारों के लोगों के जीर्ण शीर्ण वस्त्र उनकी मौसम के प्रकोप से रक्षा भी नहीं कर पाते।

6.3.3 आवास

यद्यपि सभ्य समाज में रहने वाले लोगों के लिए आवास बहुत आवश्यक है लेकिन देश में बहुत थोड़े लोगों के पास इसकी उचित व्यवस्था है। गांव में कच्चे मकान और फूस की झोपड़ियों और शहरों में मजदूरों की गन्दी बस्तियों तथा सड़कों के किनारें फुटपाथ पर सोने वाले लोगों को देखकर भी इस देश में गरीबी के स्वरूप का अनुमान हो सकता है। इस देश में आज भी 64 प्रतिशत लोग पूरी तरह अशिक्षित हैं। यहां बीमारियों और महामारी का प्रकोप रहता है। अधिकांश लोगों के लिए देश में किसी प्रकार की चिकित्सा की व्यवस्था नहीं है। यही कारण है कि भारत में लोगों की औसत आयु पश्चिमी देशों के लोगों की औसत आयु से काफी नीची है।

6.4 भारत में गरीबी–उन्मुलन के उपाय

गरीबी मानव सभ्यता में एक अभिशाप है जिसे दूर करना राष्ट्रिय अर्थव्यवस्था की प्राथमिक एवं अनिवार्य आवश्यकता है। गरीबी दूर किए बिना न तो देश के समस्त व्यक्तियों को आर्थिक विकास में सहभागी ही हैं और न ही देश के आम आदमी को सम्मानजनक ढंग से जीवन जीने का अवसर ही प्रदान किये जा सकते हैं। इसलिए गरीबी उन्मुलन भारत की पंचवर्षीय योजनाओं का एक प्रमुख उद्देश्य रहा है। गरीबी हटाने के लिए मुख्य रूप से निम्नलिखित उपायों को अपनाना श्रेयस्कर होगा–

6.4.1. जनसंख्या नियंत्रण

संभवतः किसी राष्ट्र में गरीबी की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कारण अवांछनीय जनसंख्या में वृद्धि रहा है। भारत में राष्ट्रीय आय एवं राष्ट्रीय उत्पादन में जिस दर से वृद्धि हुई है, प्रति व्यक्ति आय एवं प्रति व्यक्ति उत्पादन में उस दर से वृद्धि नहीं हो सकी है। गरीबी में वृद्धि यहीं से प्रारंभ हुई है। कुल उत्पादन में बढ़ोतरी होने के बावजूद भी आम आदमी के उपभोग स्तर में वृद्धि नहीं हो सकी और गरीबों की संख्या बढ़ती गई। अतः भारत में गरीबी, उन्मुलन के लिए जनसंख्या पर नियंत्रण स्थापित करना आवश्यक है। इसके लिए परिवार नियोजन कार्यक्रम को प्रभावी रूप से लागू करना होगा।

6.4.2. आय का पुनर्वितरण

आय और धन के वितरण की असमानता गरीबी को स्थायी बना देती है। यह नागरिकों की कार्यकुशलता को भी विपरीत रूप से प्रभावित करती है। जब देश की अर्थव्यवस्था का ढांचा इस प्रकार का हो कि विकास के प्रयत्नों के कारण बढ़ी हुई आय को अमीर लोग ही हड़प जाते हों तो विकास के सारे प्रयत्न ही बेकार हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में गरीबी घटने की बजाय और अधिक बढ़ जाती है। भारत में बहुत कुछ हद तक ऐसा ही हो रहा है। अतः यहां गरीबी उन्मुलन के लिए आय का इस प्रकार पुनर्वितरण कराना आवश्यक है जिससे गरीब वर्ग का आय व उपभोग का स्तर ऊंचा उठ सके। इसके लिए राष्ट्रीय साधन, सम्पत्ति एवं आय के प्रवाह को अमीरों से गरीबों की ओर मोड़ना होगा।

6.4.3. विकास की ऊंची दर

गरीबी उन्मुलन के लिए आय का पुनर्वितरण, जनसंख्या नियंत्रण आदि उपायों का महत्त्व है, किन्तु इनकी कुछ सीमाएं हैं। अतः यह आवश्यक है कि गरीबी के स्थायी उपचार हेतु आर्थिक विकास की दर बढ़ाने पर ही सर्वाधिक ध्यान देना होना। यद्यपि आय के पुनर्वितरण के द्वारा वर्तमान वस्तुओं आपस में बंटवारा तो संभव है। किन्तु देश की वस्तुओं के कुल भंडारों में वृद्धि करने के लिए तो उत्पादन में वृद्धि करनी होगी। अतः भारत में गरीबी–उन्मुलन की दृष्टि से तीव्र आर्थिक विकास सर्वप्रथम अनिवार्य शर्त है। तीव्र आर्थिक विकास के लिए हमें उत्पादकता एवं कार्यकुशलता बढ़ाने, तकनीकी ज्ञान के स्तर में सुधार लाने, देश के मानवीय व प्राकृतिक साधनों का पूरा पूरा उपयोग करने जैसे उपाय करने होंगे।

यहां यह तथ्य विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि विकास की ऊंची दर गरीबी हटाने की दृष्टि से एक अनिवार्य शर्त तो है किन्तु पर्याप्त शर्त नहीं। यह भी संभव है कि उत्पादन बढ़ने पर गरीबों के उपभोग–स्तर में सुधार न हो। ऐसा जनसंख्या के बढ़ने अथवा बढ़े हुए उत्पादन को देश के गिने–चुने अमरों लोगों द्वारा हड़प जाने के कारण हो सकता है। अतः तीव्र आर्थिक विकास के साथ–साथ ही जनसंख्या के नियंत्रण एवं आय के पुनर्वितरण के उपाय भी आवश्यक है। वास्तव में ये सभी उपाय एक दूसरे के पूरक हैं।

6.4.4. कृषि का विकास

भारत मूल रूप से एक कृषि प्रधान देश है और भारत की खेती पिछड़ी हुई है। भारत में गरीबों का काफी बड़ा भाग कृषि क्षेत्र में ही पाया जाता है। अतः कृषि के विकास पर ध्यान देना प्रथम प्राथमिकता होना

चाहिए। भूमिहीन किसानों व सीमान्त किसानों की स्थिति में सुधार लाने हेतु विशेष प्रयास किये जाने चाहिए। ग्रामीण क्षेत्र की गरीबी को दूर करने के लिए भूमि का पुनर्वितरण भी काफी उपयोगी उपाय है।

6.4.5. कुटीर व लघु उद्योगों का विकास

भारत में बेरोजगार लोगों को रोजगार प्रदान करने की दृष्टि से कुटीर व लघु उद्योगों का विकास किया जाना आवश्यक है। इससे न केवल बेरोजगार गरीब लोगों को काम मिलेगा वरन् आय की असमानता भी घटेगी।

6.4.6. सामाजिक भागीदारी

यदि गरीब लोग विकास के कार्यक्रमों में सक्रिय भागीदारी प्रारंभ कर दे तो गरीबी दूर किया जाना सरल हो जाएगा। इसके लिए गरीबों को स्वयं को गरीबी–उन्मुलन और आर्थिक विकास के कार्यक्रमों में शामिल करना होगा। इस कार्य में पंचायती राज संस्थानों, स्वैच्छिक संगठनों और स्व–सहायता समूहों की भागीदारी को बढ़ाना आवश्यक होगा।

6.4.7. छिपी हुई बेरोजगारी की समाप्ति और रोजगार में वृद्धि

निर्धनता दूर करने के लिए रोजगार, अर्द्धरोजगार तथा छिपी हुई बेरोजगारी दूर करने के लिए विशेष प्रयत्न किये जाने आवश्यक है। ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार बढ़ाने के अधिक अवसर है उनका पूरा लाभ उठाना चाहिए। कृषि का विकास करके भूमि पर एक से अधिक फसल उगाने के फलस्वरूप अर्द्ध बेरोजगारी तथ छिपी बेरोजगारी को कम किया जा सकता है। ग्रामीण क्षेत्र में कुटीर उद्योग, निर्माण आदि के कार्यों का विकास किया जाना चाहिए। शहरों में लघु उद्योग, यातायात आदि का अधिक विकास किया जाना चाहिए। शिक्षा की प्रणाली में परिवर्तन करके शिक्षित बेरोजगारों को रोजगार प्रदान किया जाना चाहिए।

6.4.8. उत्पादन की तकनीकों में परिवर्तन

प्रो. गुन्नर मिर्डेल के अनुसार भारत के लिए पश्चिमी पूंजी प्रधान तकनीक नहीं अपनाई जानी चाहिए। भारत के लिए उत्पादन की श्रम प्रधान तकनीक अपनाई जानी चाहिए। भारतीय अर्थव्यवस्था में इस प्रकार का तकनीकी विकास करना चाहिए जिससे श्रम का पूरा उपयोग हो सके। वास्तव में, भारत के लिए मध्यम तकनीकें, जो श्रम प्रधान तथा पूंजी प्रधान तकनीकों के मध्य का मार्ग हैं, अपनाई जानी चाहिए। इसके फलस्वरूप रोजगार की मात्रा बढ़ेगी तथा निर्धनता को दूर किया जा सकेगा।

6.4.9. पिछड़े क्षेत्रों पर विशेष ध्यान

भारत में कुछ क्षेत्र जैसे उड़ीसा, नागालैण्ड, उत्तर प्रदेश, बिहार आदि में आज भी निर्धनों का अनुपात दूसरे प्रदेशों से अधिक है। सरकार को पिछड़े इलाकों में विशेष सुविधायें प्रदान करनी चाहिए जिससे निजी पूंजी उन प्रदेशों में निवेश किया जाना संभव हो सकें। इसके लिए सार्वजनिक क्षेत्रों का भी विकास किया जाना चाहिए।

6.4.10. न्यूनतम आवश्यकताओं की संतुष्टि

सरकार को निर्धनों की न्यूनतम आवश्यकताओं जैसे पीने का पानी, प्राथमिक चिकित्सा, प्राथमिक शिक्षा आदि को संतुष्ट करने के प्रयत्न करने चाहिए। इसके लिए यदि सरकार को अधिक से अधिक राशि व्यय करनी पड़े तो कोई बुराई नहीं है।

6.4.11. निर्धनों की उत्पादकता में वृद्धि

डॉ. वी.के.आर.वी. राव के अनुसार निर्धनता को दूर करने के लिए निर्धनों की आर्थिक उत्पादकता को बढ़ाना आवश्यक है। निर्धनों को स्वयं सतर्क होकर रोजगार की अवस्था को प्राप्त करने के प्रयत्न करने

चाहिए। सरकार को इसके लिए सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्रों में अधिक निवेश करना चाहिए। निर्धन वर्ग को रोजगार विन्मुख प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए तथा उनकी उत्पादकता बढ़ाने के प्रयत्न किये जाने चाहिए।

6.5 गरीबी और आर्थिक नियोजन

लगभग 20 वर्षों तक भारत सरकार और योजना आयोग की यह समझ रही है कि इस देश में आर्थिक विकास और गरीबी निवारण के उद्देश्यों को एक साथ प्राप्त कर सकना संभव नहीं है। यदि सरकार गरीबी निवारण के लिए साधनों को व्यय करती है तो आर्थिक विकास के लिए साधनों की कमी होगी जिससे विकास की प्रक्रिया बाधित हो जाएगी। वस्तुतः यह समझ न केवल गलत है, बल्कि विकास पर बल देकर गरीबी की उपेक्षा अन्यायपूर्ण भी है। भारतीय आर्थिक विकास का बोझ अंतिम रूप से गरीब वर्ग पर है जबकि विकास के लाभ सम्पन्न वर्ग द्वारा हथिया लिया गया है। यही कारण है कि पिछले 50 वर्षों में जहां एक और गरीबों की संख्या ही नहीं, उनकी दरिद्रता भी बढ़ी है वहां दूसरी ओर पूंजीपतियों की पूंजी और सम्पन्नता अधिक हुई है। इस स्थिति ने देश में व्यापक स्तर पर असंतोष को पैदा किया है और अनेक स्थानों पर गरीब अपने अधिकार लेने के लिए हिंसा पर भी उतर आए हैं। इस स्थिति में पहली बार पांचवी योजना में 'गरीबी–निवारण' आर्थिक नियोजन का उद्देश्य स्वीकार किया गया।

योजना आयोग की यह समझ थी कि गरीबी, मुख्य रूप से अल्प विकास और असमानताओं का परिणाम थी, इसलिए पांचवी और छठी योजनाओं में पुनः आर्थिक विकास पर जोर दिया गया लेकिन इस बार नीति यह थी कि विकास का लाभ गरीब वर्ग को अधिक मिलना चाहिए। इस दृष्टि से खाद्य पदार्थों और जनसाधारण के उपभोग की वस्तुओं के उत्पादन को बढ़ाने पर जोर दिया गया।

आठवीं योजना में सातवी योजना की भांति की गरीबी निवारण के उद्देश्य से मुख्यतः तीन बातों पर बल दिया गया है–

- बेरोजगारी को दूर करने की दिशा में प्रयत्न किए जा रहे हैं,
- सबसे गरीब वर्ग के लोगों के जीवन स्तर में पर्याप्त सुधार की व्यवस्था की जा रही है और
- गरीब वर्ग में आने वाले लोगों की अनिवार्य जरूरतों जैसे पीने के लिए पानी, प्रारंभिक शिक्षा, वयस्क साक्षरता, भूमिहीन किसानों के लिए आवास की व्यवस्था, इत्यादि की जा रही है।

इसका तात्पर्य यह है कि अब स्थिति ऐसी आ गई है कि भारतीय पंचवर्षीय योजनाओं में गरीबी की गणना होने लगी है चाहे व्यवहार में उनके लिए अभी तक कोई बहुत ठोस कार्य नहीं हुआ है। भविष्य में राज्य द्वारा गरीबी निवारण के लिए कितना कार्य होगा, यह गरीबों में अपने अधिकारों के प्रति चेतना के साथ–साथ अधिकार प्राप्त करने के लिए जरूरी संघर्ष कर सकने की सामर्थ्य पर निर्भर होगा।

7. ऊर्जा संकट

विकास के लिए ऊर्जा अति महत्त्वपूर्ण हैं। घरेलू आवश्यकताएं, कृषि, अभिगमन और औद्योगिक जटिलतायें सब ऊर्जा पर निर्भर है और प्रत्यक्ष रूप से मानव कल्याण से जुड़ी है। अन्य प्राकृतिक सम्पदाओं की तरह, ऊर्जा सम्पदाएँ भी नवीकरणीय और अनवीकरणीय होती है।नवीकरणीय या अक्षय ऊर्जा सम्पदाएँ अधिकतर जीवभार पर आधारित होती है और चूंकि ये थोड़े समय के पश्चात् फिर से नवीकृत हो जाती है ये प्रकृति में असीमित मात्रा में पाई जाती हैं। इसके अंतर्गत वनों से मिलने वाला ईंधन या ईंधन लकड़ी, पेट्रोप्लान्ट, पादप जीवभार, प्राणीशमल, सौर ऊर्जा, वात ऊर्जा, जल ऊर्जा, भूतापीय और डेन्ड्रोथरमल ऊर्जा इत्यादि आती है। ये प्रकृति में स्वतः पुनः उत्पादित होती है और प्रतिपादित उचित योजना और प्रबन्धन द्वारा संततः शस्यित की जा सकती है।अनवीकरणीय (या निर्वातक) ऊर्जा सम्पदाएँ सीमित मात्रा में उपलब्ध हैं और लम्बे समय के कालांक द्वारा बनते हैं। असीमित उपयोग के परिणामस्वरूप, ये शायद एक दिन निष्कासित हो जाएँगे। इसके अंतर्गत कोयला, खनिज तेल, प्राकृतिक गैस और नाभिकीय शक्ति आते हैं।

7.1 ऊर्जा के मुख्य स्रोत

ऊर्जा के मुख्य स्रोत हैं– कोयला, खनिज तेल और प्राकृतिक गैस, ईंधन और नाभिकीय शक्ति।

7.1.1. कोयला

लगभग 6000 अरब टन कोयला पृथ्वी के अंदर है और अब तक 200 अरब टन से अधिक का उपयोग किया जा चुका है। विश्व में कुल कोयला उत्पादन 1980 में 273 करोड़ मैट्रिक टन से बढ़कर 1986 में 323 करोड़ मैट्रिक टन हुआ जो 18.4: की वृद्धि पंजीकृत करता है।

कोयला औद्योगिक ऊर्जा का मुख्य स्रोत होने के अलावा कच्चा माल भी है। कोयला व लिग्नाइट मिल कर आज भी देश की वाणिज्य शक्ति माँग का 60: के लिए लेखा देते हैं। विकसित विश्व में कोयले से तेल या गैस पर विस्थापन होने की प्रवृत्ति है। भारत में मुख्य कोयला क्षेत्र है– रानीगंज, झारिया, पूर्वी बोकारो और पश्चिम बोकारो; पंच–कान्हम सिंगरौली, टालचर, चंदा–वर्धा और गोदावरी घाटी। कोयला निक्षेप के लिए जाने वाले मुख्य राज्य हैं– बिहार, उड़ीसा, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र। कुल मिलाकर अधिकतर भारतीय कोयले की गुणवत्ता ऊष्मा धारिता की दृष्टि से वस्तुतः खराब है। ये खराब ऊष्मा धारिता विद्युत, गैस और तेल में भी परिवर्तित की जा सकती है। यही कारण है कि हमारे ऊष्मीय और श्रेष्ठ ऊष्मीय शक्ति केन्द्र विद्युत शक्ति उत्पन्न करने के लिए व प्रादेशिक ग्रिड के भरण के लिए कोयला क्षेत्रों पर स्थित होते हैं। भारत में कोयला उत्पादन जो 1951 में केवल 35 दस लाख टन था 1988–89 में 189 दस लाख टन पहुंच गया। कोयले का प्रति व्यक्ति उपभोग 135 किलोग्राम से 225 किग्रा तक बढ़ा है। लिग्नाइट साधारणतः निम्न गुणी कोयला है। परन्तु भारतीय लिग्नाइट में कोयले के मुकाबले कम भस्म अंश है। नेवेली पर निचय लगभग 3,300 मिलियन टन है जो देश के लिग्नाइट निचय का 90: है। यह 600 मेगावाट ऊष्मीय शक्ति उत्पन्न करता है।

7.1.2. तेल और प्राकृतिक गैस

अवसादी शैल जिसमें पादप और प्राणी अवशेष होते हैं और लगभग 10 से 20 करोड़ वर्ष पुराने हैं खनिज तेल के स्रोत होते हैं। खनिज तेल किसी भी अन्य खनिज की तरह स्थल पर असमान वितरित रहता है। विश्व में छः प्रदेश हैं जो खनिज तेल में प्रचुर हैं। विश्व के मुख्य तेल उत्पादक देश हैं– संयुक्त राज्य अमेरिका, मेक्सिको, पहला यू.एस.एस.आर. और पश्चिम एशियाई प्रदेश (इराक, सऊदी अरब, कुवैत, ईरान, संयुक्त अरब इमरेट्स, कतार और बेहराईन)।

भारत में खासकर प्रायद्वीपेत्तर भारत में तृतीयक शैलों और जलोढ़ निक्षेपों के बड़े अनुपात हैं। इस प्रकार के तेल विभव क्षेत्र दस लाख वर्ग किमी से अधिक, कुल क्षेत्र का एक तिहाई अनुमानित है। यह गंगा–ब्रह्मपुत्र घाटी में उत्तरी मैदान को, तटीय पट्टियों के साथ, उनके अपतट महाद्वीपीय शेल्फ के साथ, गुजरात के मैदान, थार मरुस्थल और अंडमान निकोबार द्वीप समूह के आस–पास के क्षेत्र को ढकता है। स्वतंत्रता तक असम ही केवल राज्य था जहाँ खनिज तेल वेधन किया जाता था। भारत में सबसे पहले मकुम में पाया गया परंतु तेल का वेधन लखिमपुर जिले में डिगबोई पर शुरू हुआ। स्वतंत्रता के पश्चात् गुजरात के मैदान और मुख्य निचय बम्बई तट पर पाए गए– देश का सबसे धनी तेल निक्षेप, मुम्बई हाई कहलाता है। नए तेल निक्षेप गोदावरी, कृष्णा, कावेरी और महानदी के डेल्टीय तटों के अपतट क्षेत्रों में पाए गए हैं। गैस निचय साधारणतः तेल क्षेत्रों के साथ संघ में पाए जाते हैं। किन्तु, विशिष्ट प्राकृतिक गैस निचय त्रिपुरा, राजस्थान और गुजरात, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, आन्ध्र प्रदेश और उड़ीसा के लगभग सभी अपतट तेल क्षेत्रों में स्थित हैं।

1951 में हमारा कुल खनिज तेल उत्पादन 269,000 टन था। उस समय कुल उपभोग केवल 3.1 मिलियन टन था। 1984–85 तक उत्पादन 29 मिलियन टन तक बढ़ा परंतु उपभोग भी 390 लाख टन तक

पहुंच गया। अशोधित का 70 लाख टन और पेट्रोलियम उत्पाद का 50 लाख टन नेट आयात होता है। 1986–87 में तेल उत्पादन 30.5 मिलियन टन और 1988 में लगभग 36 मिलियन टन था। 1980–81 में यह केवल 10 मिलियन टन था। अशोधित तेल का प्राप्ति योग्य निचय 1980 में 266 मिलियन टन 1987 तक 580 मिलियन टन तक ऊँचा उठ गया।

भारत में गैस एक प्राकृतिक उपहार है। यह शैलरासायनिक उद्योग में ऊर्जा स्रोत और औद्योगिक कच्चा माल दोनों की तरह उपयोग में लिया जा सकता है। यह गैस आधारित शक्ति संयंत्र निर्मित करने में कम समय लेते हैं। पाइप लाइन द्वारा, गैस मुम्बई और गुजरात गैस क्षेत्रों से अब मध्य प्रदेश, राजस्थान ले जाई जा रही है और उत्तर प्रदेश हजीरा–बीजेपुर–जगदीशपुर गैस पाइप लाइन 1,730 किमी लम्बी है और प्रतिदिन 180 लाख घन मीटर गैस ले जाती है। यह छः उर्वरक और तीन शक्ति संयंत्र का भरण करती है। भारत में पहले ही 12 परिष्करणशाला हैं। द्रवित पेट्रोलियम गैस, रसोई गैस भी कहलाती है जो देश में अब अति सामान्य घरेलू ईंधन है।

7.1.3 ऊष्मीय शक्ति

जल–विद्युत नवीकरणीय स्रोत, जल से प्राप्त होती है। परंतु ऊष्मीय शक्ति संयंत्र ऊष्मीय विद्युत उत्पन्न करने के लिए कोयले, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस का उपयोग करते हैं। ये स्रोत खनिज उद्‌गम के होते हैं और फॉसिल ईंधन भी कहलाते हैं। ये निर्वातक और प्रदूषणकारी हैं। विद्युत चाहे ऊष्मीय, नाभिकीय या जलीय हो वो ऊर्जा का सबसे उपयुक्त और बदलने योग्य रूप है। यह उद्योग कृषि, अभिगमन और घरेलू सेक्टरों में अधिक माँग में है। भारत में 1988–89 में सही शक्तिजनित 201 अरब मात्रक थी। इसके विपरीत हाइडिल शक्ति के लिए 53.8 अरब मात्रक और नाभिकीय शक्ति के लिए 5 अरब मात्रक। एक ही वर्ष में यह लगभग 10ः तक बढ़ गया।

दोनों, बड़े और छोटे शक्ति केन्द्र पूरे देश में फैले हुए हैं। इनके द्वारा उत्पादित विद्युत प्रादेशिक ग्रिड का भरण करती है। एकक राष्ट्रीय ग्रिड होने की प्रस्तावना है। ग्रिड सभी चार मुख्य स्रोतों– कोयला, तेल और नाभिकीय से उत्पादित विद्युत प्राप्त करते हैं। 1950 में पथों की कुल लम्बाई 10,000 परिपथ किमी था जो 1987 में 1,71,000 परिपथ किमी तक बढ़ा। इसके अतिरिक्त 400 किवॉल्ट प्रबलता की उच्च वोल्टता संचरण पथ 220 किवॉल्ट प्रबलता का 16,000 किमी, और 55,855 किमी की है।

7.1.4. ईंधन

ईंधन की पर्यावरणीय आपूर्ति और अन्य जीवभार ऊर्जा स्रोतों को अवश्य मिलाना चाहिए। इसके अलावा हमें जीवभार के कुल उपयोग और/या ठोस, द्रव और गैसीय ईंधन में रूपांतरण के लिए प्रौद्योगिकी की आवश्यकता है।

एबीई के अनुसार ईंधन की माँग 120–130 मिट्रिक टन के वर्तमान स्तर के विपरीत 2004/05 में 300–330 मीट्रिक टन के क्रम तक पहुंच सकती है। ईंधन का 7% ग्रामीण क्षेत्रों की मिल्कियत है। केवल 50 मीट्रिक टन ईंधन प्राकृतिक वनों से प्राप्त हो सकता है। एन.सी.ए. के अनुसार अगले 15 वर्षों के लिए या लगभग इतने वर्षों में प्राकृतिक वनों से औसत ईंधन का योगदान 0.75 टन/हेआ/वर्ष होगा और शेष रोपण से मिलेगा। पूरा आवश्यक रोपण कृषि अयोग्य भूमि, निम्नीकृत भूमि, स्थायी चरागाह और चारण भूमियों पर होना चाहिए। स्थूलतः इस प्रकार की 60 मेगा हेआ भूमि उपलब्ध है, और इस प्रकार की 50ः भूमि का रोपण के अंतर्गत लाना कठिन हो सकता है।

7.1.5. जल–शक्ति

जल ऊर्जा, ऊर्जा का अत्यधिक रूढ़ नवीकरणीय स्रोत है। ऊर्जा जल ऊँचाई से गिरने वाले जल के प्रवाह द्वारा मिलती है। पहाड़ी और उच्चभूमि क्षेत्र इस कार्य के लिए उचित हैं जहां जल का बड़ी मात्रा में उच्च ढलानों से संतत प्रवाह होता है। उत्तरकालीन 18वीं और आरंभिक 19वीं शताब्दी में अधिकतर उद्योग जलप्रपात के निकट स्थित थे। भापीय ऊर्जा के उपयोग के लिए भी प्रौद्योगिकी विकसित हुई है। जल–शक्ति ऊर्जा का साफ, अप्रदूषणकारी स्रोत है। यह तारों और केबिल द्वारा लम्बी दूरी तक पारगत किया जा सकता है। परंतु, इस प्रकार की ऊर्जा भविष्य के लिए संचित नहीं की जा सकती है। इसलिए, इस प्रकार की ऊर्जा के उत्पादन से पूर्व इसके बाजार निश्चित किए जाने चाहिए। नदियों पर बांध बनाए गए हैं। नार्वे, स्विट्जरलैण्ड, कनाडा, स्वीडन और न्यूजीलैण्ड अपनी जल सम्पदाओं को जल ऊर्जा के लिए प्रयोग करते हैं। दक्षिण अफ्रीका में कुल विद्युत उपभोग का लगभग 75: जल से आता है। जापान, संयुक्त राज्य अमेरिका, पूर्व यू.एस.एस.आर. जल शक्ति के उत्पादन में अग्रणी देश हैं।

भारत में जल विद्युत शक्ति के उत्पादन पर बल प्रथम पंचवर्षीय योजना में दिया गया। कई बहुउद्देशीय नदी घाटी परियोजनाएं शुरू की गईं जिसके उदाहरण हैं–सतलुज पर भाकड़ा नंगल परियोजना, दामोदर घाटी में बोकारो, पंचेट और तिलईया, हीराकुण्ड, रीहन्ड, नागार्जुन सागर, कोसी और कोयाना इत्यादि। इस प्रकार की कई परियोजनाएं और साथ ही बड़े बांधों का निर्माण जैसे उत्तरांचल में भागीरथी नदी पर टिहरी बांध, गुजरात में सरदार सरोवर, और नर्मदा घाटी परियोजना भी विकास के भिन्न स्तरों के अंतर्गत आते हैं। इन बांधों के निर्माण ने काफी राजनैतिक और पर्यावरणीय विवाद जनित कर दिए हैं।

7.1.6. नाभिकीय शक्ति

जब फॉसिल ईंधन निचय तीव्रता से अवक्षयित हो रहे हैं यह निश्चित ही ऊर्जा का मुख्य स्रोत है। थोड़ा सा रेडियोऐक्टिव पदार्थ बृहत् मात्रा में ऊर्जा का उत्पादन कर सकता है। उदाहरण के लिए, एक टन यूरेनियम235 द्वारा इतनी ऊर्जा प्राप्त होती है जितनी तीस लाख टन कोयले या 120 लाख बैरल तेल से होती है। विद्युत के अतिरिक्त, परमाणु शक्ति का ईंधन की तरह समुद्री जहाज के लिए, रासायन और खाद्य संसाधन संयंत्र और अंतरिक्ष यान के लिए ऊष्मा उत्पादन हेतु भी उपयोग होता है।परमाणु ऊर्जा के लिए नाभिकीय रिऐक्टर की आवश्यकता होती है। विखंडनीय पदार्थ का क्षय बृहत् ऊष्मा उत्पन्न कर सकता है। इसका उपयोग भाप बनाने के लिए होता है और टरबाइन द्वारा पहुंचने का रास्ता होता है जो विद्युत जनित्र से जुड़ा होता है। नाभिकीय रिऐक्टर भिन्न प्रकार के हैं।

अ. हल्का जल रिऐक्टर

साधारण जल का उपयोग शीतलन और विमंदन के लिए करते हैं। ये दो मूल प्रकार के होते हैं–1. क्वथन जल रिऐक्टर और 2. दाबानुकूलित जल रिऐक्टर उच्च तापमान गैस शीत रिऐक्टर भी होते हैं जो मूलतः एलडब्ल्यूआर प्रकार के होते हैं।

ब. भारी जल रिऐक्टर

भारी जल का उपयोग करते हैं। सबसे लोकप्रिय कनेडियाई ड्यूटीरियम–यूरेनियम रिऐक्टर है। यहां डिजाइन एलडब्ल्यूआर प्रकार से भिन्न होता है। ईंधन क्षैतिज व्यवस्थित होता है बजाय उर्ध्वाधर की जैसाकि एलडब्ल्यूआर में होता है।

स. तरल धातु तीव्र प्रजनक रिऐक्टर

इसमें शीतलक की तरह तरल सोडियम का उपयोग करते हैं। 300 से अधिक परमाणु शक्ति संयंत्र, विश्व में प्रचलित हैं। अधिकतम संयुक्त राज्य अमेरिका (83) में, जिसके पश्चात् है यूएसएसआर (40), पूर्व सोवियत संघ (35), फ्रांस (34), जापान (25), एफआर जर्मनी (15) और कनाडा (13)।

भारत नाभिकीय शक्ति का शांतिमय उपयोग औषधि, कृषि और अंतरिक्ष में करने में अग्रणी है। भारत कुछ परमाणु खनिजों में धनी है। यूरेनियम खदान बिहार में सिंगबल्म में और राजस्थान के हिस्सों में स्थित है। सबसे बाहूल्य स्रोत केरल के तटों पर मोनेजाइट बालू है। इन बालू से थोरियम व्युत्पन्न होता है। भारत में, न्यूक्लिअर पॉवर कार्पोरेशन नाभिकीय शक्ति संयंत्र के निर्माणशाला के साथ व्यवहृत है। हम विश्व में नाभिकीय ईंधन चक्र की दक्षता के सातवें राष्ट्र हैं। फिलहाल छः नाभिकीय शक्ति संयंत्र हैं संक्रिया में व 1230 मेगावाट उत्पादन करते हैं। ये संयंत्र महाराष्ट्र, राजस्थान और तमिलनाडु के राज्यों में स्थित हैं। कुछ अन्य इकाइयाँ गुजरात (काकरापर), कर्नाटक (कलपक्कम) और उत्तर प्रदेश (नरोरा) में निकट भविष्य में आगे आने वाली हैं 1230 मेगावाट की वर्तमान अधिष्ठित धारिता को 2000 ईसवी तक 10000 मेगावाट तक वृद्धित करेगा।

7.2 ऊर्जा के अरूढ़ स्रोत

कोयला, खनिज तेल, प्राकृतिक गैस और नाभिकीय खनिज अनवीकरणीय है और इन्हें एक दिन खत्म हो जाना है। इसके अतिरिक्त, इनका उपयोग अपरिवर्तित रूप से पर्यावरणीय प्रदूषण की समस्याओं से जुड़ा है। लकड़ी का बड़े पैमाने पर उपयोग वनोन्मूलन कर सकता है। इसके अतिरिक्त, ऊर्जा के रूढ़ स्रोत के केन्द्रीकृत तंत्र में अवसंरचना और प्रबंधन के निर्माण में अत्यधिक व्यय आता है। अब विकेन्द्रीकरण की ओर प्रवृत्ति है। यह स्थानीय लोगों को अधिक प्रारंभिक कदम प्रदान करेगा जो उनकी आवश्यकताओं और सम्पदाओं को निर्धारित कर सके और युक्ति की योजना बनाए जो उन्हें अच्छी तरह स्वीकार्य है।

1970 के दौरान हुई ऊर्जा संकट ने वैज्ञानिकों को ऊर्जा के उन वैकल्पिक स्रोतों को जो नवीकरणीय हों और प्रदूषण मुक्त हों उत्पन्न करने के लिए मजबूर किया। रूढ़ ऊर्जा स्रोतों के तीव्रता से अवक्षय के कारण, विश्व के सभी देश अरूढ़ ऊर्जा स्रोतों जैसे डेन्ड्रोथरमल, सौर, वात, महासागरी, भूतापीय ऊष्मा, जीवभार, फार्म और प्राणी अपशिष्ट एवं मानवीय मल विकसित करने को मजबूर हुए। ये सभी स्रोत नवीकरणीय और सस्ते हैं।भारत में, रूढ़ प्रौद्योगिकी द्वारा ऊर्जा के लिए विभव प्रयोग का दायित्व शक्ति विभाग। केन्द्रीय विद्युत अधिकारी और राज्य सरकारों के साथ हैं, अरूढ़ ऊर्जा स्रोतों का विभाग सक्रियता से आर तथा डी विकिरण शीलता में लगा है। अरूढ़ प्रौद्योगिकी के कार्य करने की पद्धति का ज्ञान विकसित करने में व्यस्त है। अरूढ़ स्रोत विकेन्द्रीकृत ढंग में निश्चित क्षेत्र में शक्ति संवर्धन कर सकती है। उनका विभव असल में स्थानीय उपयोग के लिए होता है।

7.2.1. सौर ऊर्जा

घरेलू तापन और जल आपूर्ति इस स्रोत द्वारा पूरी की जा सकती है। इजराइल में, इस प्रकार के तंत्र घर तापन और जल आपूर्ति के लिए पहले से ही प्रयोग में है। संयुक्त राज्य अमेरिका में, वाणिज्य सौर हीटर फ्लोरिडा और केलीफोर्निया में उपलब्ध हैं। एशिया, अफ्रीका और आस्ट्रेलिया में जहां धूप वाले दिनों की संख्या अधिक होती है, इस विधि के होनहार भविष्य हैं। भारत लगभग 1648–2108 कि. वाट घंटा/मी^{2}/वर्ष, वर्ष में लगभग 250–300 दिनों की उपयोगी धूप ग्रहण करता है। देश के भिन्न भागों पर प्रतिदिन सौर ऊर्जा आपात 5 से 7 कि. वाट घंटा/मी^{2} के बीच है। यह बृहत् सौर ऊर्जा सम्पदा तापीय या प्रकाश वोल्टीय रूपांतरण मार्गों द्वारा ऊर्जा के अन्य प्रकार में परिवर्तित हो सकती है। सौर तापीय मार्ग विकिरण का उपयोग ऊष्मा के रूप में करता है जिसके बदले में यांत्रिक, वैद्युत या रासायनिक ऊर्जा में परिवर्तित की जा सकती है। सौर तापीय यंत्र जैसे सौर कूकर, सौर जल/वायु हीटर, सौर शुष्कक, सौर काष्ठ भट्टी का संशोषण और सिलिकन तंत्र विकसित हुए हैं। सौर कूकर जिसमें एल्यूमिनियम परावर्तक है को डीएनईएस द्वारा लद्दाख के अत्यधिक ठंडे और सुदूर क्षेत्रों में आजमाया और अंतपुर स्थापित किया गया। आईआईटी अंटार्कटिका के बर्फीले महाद्वीप और लेह तथा लद्दाख के सुदूर क्षेत्रों पर सौर और वात ऊर्जा को विपाश करने की

प्रौद्योगिकी बनाने में सफल हुए हैं। सौर कूकर में, 17.3% दक्षता पर लगभग एक मी^{2} संग्राहक क्षेत्रफल 4708x103 कि कैलोरी/किग्रा पर काष्ठ की 663 कि. ग्राम की बचत होगी।

प्रकाशवोल्टीय रूपांतरण तंत्र सौर विकिरण को सिलिकन सौर सेल द्वारा सीधे विद्युत में बदल देता है। ये या तो एकल क्रिस्टल सिलिकन सैल, बहुक्रिस्टलीय सेल, अक्रिस्टलीय सौर सैल इत्यादि हो सकते हैं। इस प्रकार के तंत्र समुदाय बिजली, रेडियो और टीवी सेट, लाइट हाऊस, अपतट प्लेटफार्म और सुदूर क्षेत्रों में संस्थापन के लिए उपयोग होते हैं। इन तंत्रों के महत्त्वपूर्ण अनुप्रयोग हैं सूक्ष्म सिंचाई और पीने के लिए जल का पम्पन। इस प्रकार के तंत्र उसी समय विद्युत जनन तंत्रों पर विकेन्द्रीकृत हैं और डिजल उपयोग करने वाले तंत्रों को प्रतिस्थापित करने में मदद करते हैं। इस प्रकार वोल्टीय पूरी तरह रसायन और ध्वनी प्रदूषण व हीन हैं। ये सुदूर क्षेत्रों जैसे वनों, मरूस्थलों इत्यादि में संस्थापित किए जा सकते हैं। राष्ट्रीय सौर प्रकाशवोल्टीय ऊर्जा निरूपण कार्यक्रम के अंतर्गत डीएनईएस ने 1980 में 1 मेगावाट विद्युत उत्पादन करने के ध्येय के साथ कई प्रकाश वोल्टीय यंत्र स्थापित किए। इस प्रकार के तंत्र पम्पन, ग्रामीण विद्युतीकरण, टी.वी. सेट में उपयोग इत्यादि के लिए उपयोग किए गए।

ग्रामीण विद्युत कार्पोरेशन ने सुदूर क्षेत्रों में 90,000 गांवों को पहचाना है जहां विद्युत आपूर्ति अत्यधिक खर्चीली और कठिन है। इस प्रकार के केसों में प्रकाश वोल्टीय को जीवभार–आधारित तंत्रों की तरह भी इस्तेमाल किया जा सकता है। एबीई के अनुसार लगभग 30,000 गांव प्रकाश वोल्टीय से, 75 मेगावाट के लिए मांग का लाभ पा सकते हैं। राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश और हरियाणा में 300 गांवों से अधिक को सड़क विद्युत इकाइयों की आपूर्ति है। भारत शीघ्र ही दिल्ली के पास अपना पहला सौर शक्ति केन्द्र स्थापित करेगा। डीएनईएस/यूनेस्को द्वारा प्रायोजक एशियाई सौर ऊर्जा नेटवर्क के कार्यकारी समूहों की सौर हीटर, शुष्कन, विलवणीकरण इत्यादि के लिए प्रौद्योगिकी विकास के लिए सभाएं थी। धातुकी विभाग अभियांत्रिकी कॉलेज, पूणे ने सौर भ्राष्ट्र डिजाइन किया जो 2,000^{o}C का तापमान जनित कर सकता है। इसका ऊष्मा उपचार जैसे स्टील और ढलवा लोहा इत्यादि का पृष्ठीय दृढ़ीभवन के लिए उपयोग किया जा सकता है। हरियाणा में, पहला सौर जल हीटर 1982 में हरियाणा ब्रेवरीज लिमिटेड, मुरथल पर संस्थापित किया। तंत्र 15,000 लीटर जल प्रतिदिन 65^{o}C के औसत तापमान पर गर्म करने की योग्यता रखता है। मेडिकल कॉलेज, रोहतक, तंत्र 65^{o}C पर 25,000 लीटर जल गर्म करने की योग्यता रखता है। हरियाणा में अन्य जगहों पर, इस प्रकार के तंत्र प्रचलन में हैं। पहला सौर विलवणीकरण संयंत्र हरियाणा पर्यटक काम्प्लैक्स पर डुबचिक पर संस्थापित किया गया है। यह प्रतिदिन 2000 लीटर पेय जल को अभिक्रिया करेगा। पहला बहुउद्देशीय सौर शुष्कक कम गोदाम गन्नोर में निर्मित किया है। यह मिर्चियों, आलू के चिप्स इत्यादि सुखाने के लिए उपयोगी है। 1001 धारिता के 100 से अधिक घरेलू सौर हीटर हरियाणा के भिन्न भागों में संस्थापित हैं। प्रकाशवोल्टीय सिंचाई पम्पसेट हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार पर संस्थापित हैं।

7.2.2. वात ऊर्जा

देश में ऐसे क्षेत्र हैं जो वातीय हैं। 3 कि. वाट/मी^{2}/दिन की औसत वार्षिक वात घनत्व प्रायद्वीपीय भारत में कई जगहों पर प्रभावी हैं और साथ ही गुजरात, पश्चिमी घाट में तट रेखा के साथ और मध्य भारत के भागों में भी प्रभावी है। शीतकाल के दौरान वात घनत्व 10 कि. वाट/मी^{2}/दिन से भी अधिक होती है और 4 कि. वाट/मी^{2}/दिन बढ़ती हुई वात घनत्व वर्ष में 5–7 महीने उपलब्ध होती हैं।वात ऊर्जा यांत्रिक और विद्युत ऊर्जाओं में परिवर्तित की जा सकती है। इस समय वात ऊर्जा ग्रामीण क्षेत्रों में जल पम्पन के लिए उपयोग हो रही है और सुदूर क्षेत्रों में भी उपयोगी हो सकती है। भारत में पवन से लगभग 20,000 मेगावाट विद्युत जनित हो सकती है। डीएनईएस के अनुसार 3–3 मेगावाट की कुल धारिता के साथ वायु चक्र पहले से ही मांडवी में कच्छ में; 1.1 मेगावाट ओखा में, 5.50 मेगावाट किवाट, देवगढ़ में 550 किवाट; तुतीकोरीन में 550 किवाट; और पुरी में 550 किवाट के स्थापित हैं। पवन चक्की के विकसित प्रकार

12पीयू–500, सेल प्रकार, उदग्र अक्ष प्रकार इत्यादि हैं।वात ऊर्जा सुदूर क्षेत्रों में उपयोगी हैं, फॉसिल ईंधन बचाने में सहायता करती है, निश्चित स्थान पर ऊर्जा की थोड़ी मात्रा जो प्रदूषण और पर्यावरणीय पतन से मुक्त होती है प्रदान करती है। डीएनईएस ने 924 वायु पम्प लगभग 200 मी की पम्पन धारिता के पूरे देश में संस्थापित किए हैं। देश में पवन शक्ति का उपयोग शुरू करने वाला गुजरात पहला राज्य है।

7.2.3. महासागरीय (ज्वारीय) ऊर्जा

ज्वारीय शक्ति उत्पादन ज्वारीय क्रिया से समुद्री स्तर के उछाल और गिरावट के काम में लाने पर निर्भर करता है। छोटे ज्वारीय शक्ति संयंत्र चीन और तत्कालीन यूएसएसआर में बनाए गए। ज्वारीय शक्ति का सबसे महत्त्वपूर्ण अनुप्रयोग विद्युत उत्पादन में है। 1996 में, फ्रांस ने पहला मुख्य ज्वारीय विद्युत संयंत्र निर्मित किया। भारत में, ज्वारीय ऊर्जा के समुपयोजन के लिए प्रत्याशित स्थान कच्छ की खाड़ी, कैस्बे और सुन्दरवन हैं। कच्छ में, फ्रेंच सहायता प्राप्त हुई है। अन्य दोनों जगहों पर, तट के निकट 1,000 मीटर गहराई पर शीतल जल स्तरति होता है। भारत में, 9,000 मेगावाट के क्रम का ज्वारीय शक्ति विभव के अभिनिर्धारित है, जिसमें से 800–1000 मेगावाट गल्फ खाड़ी में, 7000–8000 केम्बे की खाड़ी और शेष सुन्दरवन में।

भारत महासागरीय तापीय ऊर्जा रूपान्तरण और तरंग ऊर्जा पर कार्य उग्रता से कर सकता है जो सुदूर महासागरीय द्वीपों और तटीय नगरों में शक्ति आवश्यकता को पूरा करने में लम्बा साथ देगा। देश पहले ही ज्वारीय ऊर्जा समुपयोजन से अनुभव प्राप्त कर चुका है। केन्द्रीय विद्युत प्राधिकार और गुजरात विद्युत बोर्ड ने कच्छ की खाड़ी में ज्वारीय संयंत्र की स्थापना के लिए विश्व के कुछ बेहतरीय स्थान भारतीय मुख्य भूमि से अलग स्थित है और लक्षद्वीप और अंडमान और निकोबार द्वीपों के निकट हैं। भारत के चारों ओर कुल OTEC विभव 50,000 मेगावाट के आस–पास है जो देश की वर्तमान कुल संस्थापित शक्ति उत्पादन धारिता की लगभग 150% है।

हम कोष्ण पृष्ठीय समुद्री जल और शीत गंभीर समुद्री जल के बीच में होने वाला तापमान अंतर का उपयोग कर सकते हैं जो उष्णकटिबंधीय जल में लगभग 800 मीटर से 1000 मीटर की गहराई पर उपलब्ध है। लाभ यह है कि शक्ति सतत, नवीकरणीय और प्रदूषण मुक्त होती है। प्लवन ओटीईसी पादप मध्य सागर पर भी शक्ति उत्पादन कर सकता है और इनका उपयोग अपतट खनन और मैंगनीज ग्रंथिका का प्रक्रमण जैसे प्रचलन के लिए शक्ति प्रदान करने में किया जा सकता है। हम पहले ही लक्षद्वीप के लिए एक नया मेगावाट संयंत्र डिजाइन कर चुके हैं।

पवनज तरंगों के रूप में समुद्र सतह की लगातार गति ऊर्जा का स्रोत होती है। सूर्य से आने वाली लगभग 1.5% ऊर्जा पवन ऊर्जा में परिवर्तित होती है। इसका कुछ भाग समुद्र सतह को स्थानांतरित हो जाती है जिसके परिणाम में तरंगों का उत्पादन होता है। फिर यह तटीय रेखाओं तक जाता है जहां ये तरंग विच्छेद की तरह क्षयीत होता है। तरंगों से ऊर्जा का निष्कर्षण करना अधिक योग्य होता है बजाय सीधे वायु से शक्ति के संग्रह के, क्योंकि तरह ऊर्जा वायु की पारस्परिक क्रिया और मुक्त महासागरीय सतह के द्वारा संकेन्द्रित होती है। भारत के लिए जिसकी तटीय रेखा लम्बाई में लगभग 6000 किमी तक विस्तृत है यह आकलित है कि तरंग ऊर्जा विभग 60,000 मेगावाट के आसपास है। तरंग ऊर्जा के निष्कर्षण में कई अन्य लाभ हैं। दीर्घ रोधिका के रूप में एक बहुउद्देशीय तरंग नियंत्रक तंत्र रोधिका और तट के बीच एक शांतकुंड का काम करता है। इसका उपयोग एक पोताश्रय, जलकृषि के लिए स्थल, हल्के और द्रुतगामी यानों से तटीय परिवहन के लिए स्थल और समुद्र से अपरदन के विरुद्ध तट रक्षण के रूप में किया जा सकता है। तरंग नियंत्रक तंत्र को लगभग 10 मीटर की गहराई पर स्थापित किया जा सकता है, जो तट से लगभग 500 मीटर की दूरी है। ज्वारीय शक्ति का उपयोग करने में गुजरात देश का पहला राज्य है।

7.2.4. भूतापीय ऊर्जा

इसमें शक्ति उत्पादन के लिए पृथ्वी के अंदर की ऊष्मा उपयोग करते हैं। यह संभव है ज्वालामुखीय प्रदेशों में या जहां ऊष्ण स्रोतों और उष्णोत्स होते हैं। विकासशील देशों के लिए 1990 में कुल प्रक्षेपित विभव 400x1018 जूल्स पर आंकलित है। भूतापीय ऊर्जा के लिए 2300 मेगावाट की प्रक्षेपित धारिता पर। प्राकृतिक गैस का 1971 के पुनः प्राप्ति सम्पदाओं का क्रियान्वयन करने पर कुल विभव लगभग 1/5 लगाया गया। इस ऊर्जा का शक्ति उत्पादन और प्रशीतन करने इत्यादि के लिए उपयोग में लाने हेतु कोशिशें की जा रही हैं। शीत संग्रहण इकाई और 5 मेगावाट शक्ति संयंत्र मनीकरण पर स्थापित किया गया है। विद्युत उत्पादन के लिए भूतापीय ऊर्जा के लिए प्रत्याशित स्थान का भूवैज्ञानिक अन्वेषण किया जाना चाहिए। इस समय लगभग 350 भूतापीय स्रोत देश में स्थनित हैं। पुगा (लद्दाख) भूतापीय क्षेत्र शक्ति उत्पादन के लिए अच्छी जगह है। अन्य आवृत के लिए 3 अन्य क्षेत्र आवृत के लिए हैं, तट्टापनी (सरगुजा जिला, मध्यप्रदेश), केम्बे द्रोणी (अलकनंदा घाटी, उत्तर प्रदेश) और पार्वती घाटी (हिमाचल प्रदेश)।

7.3 जीवभार–आधारित ऊर्जा

जीवभार एक साधारण शब्द है जो प्रकाश संश्लेषण से उत्पन्न होने वाले सभी पदार्थों के लिए उपयोग होता है। इस प्रकार जीवभार के अंतर्गत सभी नई पादप वृद्धि, अवशिष्ट और अपशिष्ट, शाकीय पादप, अलवणजलीय और समुद्री शैवाल; जलीय पादप; कृषि और वन्य अवशिष्ट, खोई, भुट्टा, छाल, बुरादा, लकड़ी छीलन, जड़ें, प्राणि पातन, अपशिष्ट आते हैं। उद्योगों से जैवनिम्नीकरणीय कार्बनिक बहिःस्रावी जैसे डिब्बाबन्द शालाएँ, चीनी मिल, बूचड़खाना, मांस पैंकिंग यंत्र, निसवनी, मद्यनिर्माणशाला इत्यादि भी इस संवर्ग में आते हैं। जीवभार हाइड्रोकार्बन पादपों, तेलों इत्यादि से भी उत्पादित हो सकता है। जीवभार ऊर्जा तंत्र नवीकरणीय होते हैं और CO_2 के अभिगम मृदा और जल संरक्षण करने में सहायता करता है और जल बहाव और मरुस्थलीकरण सीमान्त रोकने में सहायता करता है।

7.3.1. पेट्रोपादक

तरल हाइड्रोकार्बन के स्रोतों की तरह विभव पादप जातियों की पहचान के प्रयत्न किए जा रहे हैं; जो तरल ईंधनों के लिए प्रतिस्थापित हों। इस प्रकार के पादपों में उपस्थित हाइड्रोकार्बन को पेट्रोलियम हाइड्रोकार्बन में परिवर्तित किया जा सकता है। पादपों में उपस्थित हाइड्रोकार्बनको पेट्रोलियम हाइड्रोकार्बन में परिवर्तित किया जा सकता है। पादप यूफोबिऐसी, एस्कालिपिडेयेसी, एपोसाएनेसी, अरटीकेसी, कनवॉलवयुलेसी और सेपोटेसी कुलों के हैं और 385 स्पीशीज से अधिक हाइड्रोकार्बन अंश के लिए आवृत हैं। पन्द्रह स्पीशीज होनहार पाई गई हैं। इन पादपों का जीवभार और इनके हाइड्रोकार्बन का पेट्रोलियम भिन्न खण्ड करता में रूपांतरण वृद्धित करने की आवश्यकता है। इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ पेट्रोलियम, देहरादून ने इस क्षेत्र में मुख्यतः कच्चे उत्पादों के हाइड्रोजनी भंजन पर श्रेष्ठ कार्य किया है। इसके लैटक्स संसाधित जैव अपरिपक्व से उत्पन्न होने वाले उत्पाद हैं। गैसें नेफ्था, किरोसीन, गैस तेल, भारी, गैस निकाल लेने के बाद बचा हुआ पत्थर का कोयला कोक।

7.3.2. बायोगैस

भारत में गोबर गैस उत्पन्न करने के लिए सफलतम प्रयोग हुए हैं। बायोगैस मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा विषय स्थिति दिखाने का महत्त्वपूर्ण साधन है यह पर्यावरणीय साफ प्रौद्योगिकी है। प्रत्येक वर्ष बहुतायत प्राणी शमल होता है, जिससे लगभग 22,425 मिलियन मी3 गैस उत्पादित की जा सकती है। यह किरोसीन तेल को प्रतिस्थापित कर सकता है जिसका गांवों में बिजली और खाना बनाने के लिए उपयोग होता है। गैस के अतिरिक्त, कर्दम 206 मिलियन टन N_2, 1.3 मिलियन टन P_2O_5 और 0.9 मिलियन टन K_2O प्रतिस्थापित करता है। फिर भी जैव ऊर्जा का ये स्रोत पूरी तरह खटखटाया गया नहीं है। अभी हाल के वर्षों

के दौरान डीएनईएस बायोगैस प्रौद्योगिकी को बड़े पैमाने पर लगाने के कार्य में जुटा है। राष्ट्रीय बायोगैस विकास परियोजना भी शुरू किए गए हैं। 1984–85 के दौरान देश में 1,50,000 बायोगैस संयंत्र स्थापित किए गए। इस समय 330,000 से अधिक बायोगैस संयंत्र हैं। यह आंकलित है कि बायोगैस के 150,000 संयंत्र प्रतिवर्ष 600,000 टन काष्ठ के बराबर बचत करेंगे। लगभग 16–25 मिलियन ग्रामीण परिवार बायोगैस द्वारा पाचन ऊर्जा आवश्यकतायें पूरी कर सकते हैं। शमल का लगभग 75% बायोगैस के लिए उपलब्ध होगा। शमल उत्पादन के लिए सारे भारत का औसत पशु के लिए 11.30 किग्रा और भैसों के लिए 11.60 किग्रा है 67.10 मी3 गैस प्रति शुष्क शमल के प्रति टन के साथ, बायोगैस, मीथेन, CO_2H_2 और N_2 की बनी होती है। 40% मीथेन अंश पर 3,214 कि केलोरी/मी3 ऊष्मीय मान, 50% पर 4,429 कि कैलोरी/मी3 और 55% पर 4,713 कि कैलोरी/मी3/बायोगैस प्रौद्योगिकी में, महत्त्वपूर्ण कारक है शमल मल और उपलब्धता, गैस उत्पादन, ऊष्मीय मान और सांधित्र दक्षता।

बायोगैस प्रौद्योगिकी का उचित उपयोग करने के लिए, दो चीजें अनुरूप हैं–जल का प्रतिबंध्ति उपयोग और मिथेन जनित जीवाणु के अच्छे स्ट्रेन। प्रसामान्य रोगाणुक क्रिया के लिए 90% जल अंश की आवश्यकता है, जबकि गो खाद और मानवीय अपशिष्ट में यह मान 80% है। इस प्रकार हमें अतिरिक्त जल की आवश्यकता है, जो देश के शुष्क क्षेत्रों में इस प्रौद्योगिकी के लिए क्रांतिक हो सकता है। शुष्क प्रक्रम विकसित होना चाहिए, जिसमें कम जल की आवश्यकता होती है। 20^oC से कम तापमान पर चालित करने वाले योग्य मिथेनोजेन्स की भी आवश्यकता है। भूमि क्षेत्र भी कारक है। चिनी भूमिगत डिजाइन इस्तेमाल करते हैं। मीथेन उत्पादन के लिए 350^oC या अधिक आदर्श तापमान है। उत्तरी क्षेत्रों में उत्पादन पर 10^oC पर रूक जाता है। चीन में इस प्रकार की कठिनाइयां सुलझाई जाती हैं तरल अंश के साथ 10% मानवीय उत्सर्ग, वृत और घास और 50% जल के साथ 40% सुअर, गाय और प्राणी खाद शमल के निवेश स्टॉक के उपयोग द्वारा। आम वाहित मल के प्राथमिक विवेचन से प्राप्त आपंक से भी जनित की जा सकती है और इस प्रकार का एक संयंत्र ओखला, दिल्ली में प्रचलित है। गैस के अतिरिक्त, वाहित मल के शेष पदार्थ अच्छा खाद हैं। जीवभार, प्राणी कुक्कुट अपशिष्ट और मानवीय उत्सर्ग उपयोग द्वारा ऊर्जा ग्राम्स विकसित किए गए हैं।

7.3.3. वृक्षीय उष्णता सम्बन्धी ऊर्जा

अनाच्छादित अपशिष्ट भूमियाँ उच्च ऊष्मीय मान के साथ तीव्र वर्धन झाड़ियों और पेड़ों के रोपण के लिए उपयोग होती हैं। इसके बदले में ये ईंधन चारकोल, चारा, शक्ति प्रदान करते हैं और ग्रामीण रोगजार के लिए भी कार्यक्षेत्र प्रदान करते हैं। गैसीकरण तंत्र द्वारा 1987 में 8,000 हैक्टेयर से अधिक पर ऊर्जा रोपण लगभग 1.5 मेगावाट के शक्ति उत्पादन कर रहे हैं।

ऊर्जा रोपण से ऊर्जा उत्पादन का यह ढंग मुख्यतः फिल्लिपिंस में प्रयुक्त है। 7 हैक्टेयर भूमि पर वर्धन काष्ठ से 3.75 मेगावाट का दावा है। हमारे देश में, अब तक डेन्ड्रोथारमल संयंत्र चलाने के लिए न तो अनुभव है और न प्रौद्योगिकी। यदि हम ऐसा संयंत्र डिजाइन भी कर सके, काष्ठ की अपेक्षित मात्रा की उपलब्धता सीमाकारी कारक है। यदि भूमि तथा काष्ठ भी उपलब्ध हो जाएं तो भी यह विधि सिर्फ स्थानीय लोगों तक सीमित रहेगी। डेन्ड्रोथरमल संयंत्र प्रायोगिक आधार पर राजस्थान और मध्य प्रदेश में स्थापित किए जा सकते हैं। इन राज्यों में भूमि पर अधिक दबाव नहीं हैं।

7.3.4. नगरीय अपशिष्ट से ऊर्जा

निरूपण के लिए एक चालक संयंत्र ठोस नगरपालिका अपशिष्ट को ऊर्जा में रूपांतरित करने के लिए पहले ही दिल्ली में स्थापित कर दिया गया है। यह लगभग 4 मेगावाट ऊर्जा प्रतिवर्ष उत्पन्न करता है। शहरों में वाहित मल का उपयोग गैस और विद्युत उत्पादन के लिए होता है।

7.3.5. खोई पर आधारित संयंत्र

खोई जो चीनी कारखानों का अपशिष्ट है ऊर्जा उत्पादन के लिए इस्तेमाल की जा सकती है। यह आंकलित है कि भारत में चीनी कारखाने विद्युत संदलन ऋतु के दौरान 2,000 मेगावाट अधिशेष उत्पादित कर सकते हैं। कारखाने के आमाप द्वारा 10 मेगावाट उत्पादित ऊर्जा में से, 4 मेगावाट उसकी स्वयं की शक्ति माँग को पूरा करता है और शेष 6 मेगावाट ऊर्जा का उपयोग सिंचाई के लिए किया जा सकता है। खोई की तरह, अन्य फार्म अपशिष्ट जैसे धान भूसी का भी विद्युत उत्पादन के लिए उपयोग किया जा रहा है।

7.4 वाणिज्य ऊर्जा का विश्व कथानक

ऊर्जा के रूढ़ स्रोतों में कोयला, पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मुख्य स्रोत हैं। ये वाणिज्य ऊर्जा के विश्व उत्पादन का लगभग 90: है, जल–विद्युत और नाभिकीय शक्ति केवल 10% है। संख्याएँ इस प्रकार हैं।

तेल–39.5% ; कोयला–30.3% ; प्राकृतिक गैस–19.6% ; जलविद्युत–6.7% ; नाभिकीय–3.9%।

विकसित विश्व में वाणिज्य ऊर्जा उपभोग पिछले 3–4 दशकों के दौरान वृद्धित हुआ है। ऊर्जा के कुल विश्व उपभोग का 80% से अधिक उनके द्वारा किया जाता है। इसके विपरीत, ऊर्जा का 20% विकासशील और सामाजिक देशों, जो विश्व जनसंख्या का 70% है के द्वारा उपभोगित किया जाता है।

7.5 भारत में ऊर्जा कथानक

भारत में ऊर्जा दृश्य अति जटिल है। अवाणिज्य ऊर्जा के महत्त्वपूर्ण स्रोतवात प्रवाह–प्राणी और मानवीय शक्ति के अतिरिक्त, ईंधन, कृषि अपशिष्ट और प्राणी शामिल हैं जबकि वाणिज्य ऊर्जा के अंतर्गत कोयला, निग्नाइट, तेल, जल–विद्युत और कुछ हद तक परमाणु ऊर्जा आते हैं।

एडवाइजरी बोर्ड ऑन एनर्जी के अनुसार ऊर्जा के भिन्न प्रकार में भारत का निम्न योगदान है– कोयला 450–540 मैट्रिक टन; तेल 90.110 मैट्रिक टन, विद्युत 501–592 बिलियन केलोवाट घंटा; अवाणिज्य ऊर्जा 500 मैट्रिक टन। कृषि, औद्योगिक और अभिगमन सेक्टरों में ऊर्जा उपभोग प्राथमिकता विद्युत, कोयला/कोक और औद्योगिक और अभिगमन सेक्टरों में ऊर्जा प्राथमिकता विद्युत, कोयला/कोक और हाइड्रोकार्बन पर आधारित होती है। कोयला घरेलू ऊर्जा के लिए महत्त्वपूर्ण योगदान नहीं देता, हालाँकि हमारे पास कोयले के बड़े निक्षेप हैं। एबीई के अनुसार, ग्रामीण सेक्टरों में, बिजली 53% विद्युत दर से और 45.2% किरोसीन से होती है, जबकि पाकक्रिया में 58.1% अवाणिज्य स्रोतों से और 26.5% किरोसीन से होती है।

7.6 ऊर्जा संकट

ऊर्जा प्रकृति की जीवंतता का प्रतीक है। पारिस्थैतिकी तंत्र को सतत क्रियाशील बनाये रखने में ऊर्जा की सर्वोपरि भूमिका है। ऊर्जा जीवन का आधार है। पर्यावरण के अजैव और जैव तत्त्व ऊर्जा के सहारे ही अंतर्प्रक्रिया करते हैं। सूर्य ऊर्जा का प्रधान स्रोत है जो विविध रूपों में एक जीव से दूसरे जीव में प्रवाहित होती है। यह प्रवाह प्रकृति के नियम के अनुसार होता है फलतः पारिस्थैतिकी तंत्र में ऊर्जा का संतुलन बना रहता है। जितनी ऊर्जा खर्च होती है उतनी ही पैदा भी होती है। सौर्य ऊर्जा को पौधे संश्लेषण विधि से पदार्थ ऊर्जा में बदलते हैं जिसे अन्य जीव ग्रहण कर जीवन–चक्र पूरा करते हैं। इसे पारिस्थैतिकी तंत्र में ऊर्जा प्रवाह कहा जाता है। भोजन श्रृंखला का स्थानान्तरण और प्रत्येक पोषण स्तर पर ऊर्जा का ह्रास प्राकृतिक व्यवस्था का अनूठा रूप है। प्रत्येक पोषण स्तर पर ऊर्जा का भण्डारण जैव भार के अनुसार होता है। स्पष्ट है कि ऊर्जा का सर्वाधिक संग्रह वनस्पतियां करती हैं क्योंकि इनमें अधिक ग्रहक्षमता के साथ इनकी संख्या भी सबसे अधिक होती है। यही कारण है कि आदि काल से मानव अपनी ऊर्जा की पूर्ति वनस्पतियों से करता आ रहा है। भोजन के अतिरिक्त वनस्पतियां ऊर्जा प्रदान करने में अद्वितीय हैं। इनके

सड़ने गलने से ऊर्जा के नये स्रोत विकसित होते हैं जिन्हें कोयला, तेल एवं गैस के रूप में जाना जाता है। लकड़ी का उपयोग आदिकाल से ऊर्जा के रूप में होता आ रहा है। वनस्पतियों को खाने वाले जीवों के मल–मूत्र से भी ऊर्जा की प्राप्ति होती है। वनस्पतियों के अतिरिक्त आणविक खनिज जल, हवा और भूताप भी ऊर्जा के स्रोत हैं जिनमें किसी न किसी रूप में सौर्य ऊर्जा निहित हैं। अतः प्रकृति ने ऊर्जा के विविध स्रोत उत्पन्न किये हैं। इन स्रोतों में कुछ सीमित भण्डार के हैं और कुछ असीमित भण्डार वाले। ऐसे स्रोतों का व्यापारिक महत्त्व हो गया है जिसके कारण उन्हें व्यापारिक ऊर्जा कहते हैं जैसे कोयला, तेल, गैस विद्युत और लकड़ी। आधुनिक काल में कुछ स्रोतों का सर्वाधिक उपयोग होने से उनकी एक श्रृंखला बन गई हैं जिसके कारण उन्हें पारम्परिक ऊर्जा स्रोत कहा जाता है जैसे कोयला, तेल, गैस, बिजली और लकड़ी। इन स्रोतों के परिप्रेक्ष्य में कम उपयोग होने वाले स्रोतों को गैर पारम्परिक स्रोत कहा जाता है जैसे सूर्य प्रकाश, हवा, परमाणु खनिज, ज्वारीय जल, भूताप आदि।

ऊर्जा का उपयोग आर्थिक कर्म का आधार रहा है। आदिकाल में लकड़ी से प्राप्त ऊर्जा ही पर्याप्त थी लेकिन जैसे–जैसे विकास क्रम आगे बढ़ा उन्नत प्राविधिक के लिये अधिक और विशिष्ट ऊर्जा की आवश्यकता हुई। वस्तुतः ऊर्जा और प्राविधिकी के बल पर मानव अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित कर अन्य जीवों का मालिक बन सका। स्पष्ट है कि मानव की शक्ति का आधार ऊर्जा है क्योंकि इसके उपयोग से वह अधिक उत्पादन करने में सफल हो सकता है। जब से कोयला, तेल, बिजली और गैस का उपयोग मानव जीवन का आधार बना मानव की शक्ति कई गुनी बढ़ गई। जो रास्ता वह सप्ताह में तय करता था यातायात साधनों से कुछ घंटों में तय करने लगा। जिस काम को सैकड़ों व्यक्ति पूरा करते थे उसे कुछ व्यक्ति पूरा करने लगे। ऊर्जा उपयोग से मनुष्य प्रकृति का एक ऐसा उपादान प्रमाणित हुआ जो प्रकृति को वश में करने का स्वप्न देखने लगा।

कोयला, पेट्रोल, प्राकृतिक गैस और बिजली के व्यावसायिक उत्पादन और उपयोग के साथ मानव इतिहास का आधुनिक युग शुरू हुआ। इन ऊर्जा स्रोतों से उद्योग, यातायात, संचार, कृषि और व्यापार में क्रांतिकारी परिवर्तन लाकर विकास को एक ऐसी दिशा दी जिससे ऊर्जा की मांग बढ़ती गई। जितनी ऊर्जा विगत तीन या चार हजार वर्षों में मानव समुदाय ने उपयोग नहीं किया उससे कई गुना आधुनिक समाज ने केवल 200 वर्षों में किया है। स्पष्ट है कि सीमित भण्डार वाले स्रोतों पर दिनोदिन दबाव बढ़ता गया और स्थिति समाप्ति के निकट पहुंच गयी। कोयला और तेल के भण्डार शायद ही अगली सदी के लिए पर्याप्त हैं।

औद्योगिक देशों की 80 प्रतिशत ऊर्जा की आपूर्ति तेल और कोयला से होती है जबकि विकासशील और अविकसित देश अपनी ऊर्जा की आपूर्ति इनके अतिरिक्त लकड़ी, गोबर आदि से करते हैं। नेपाल की 86 प्रतिशत ऊर्जा लकड़ी से प्राप्त होती है। अफ्रीकी देश भी अपनी आधी से अधिक ऊर्जा लकड़ी से प्राप्त करते हैं। औसतन विश्व की 45 प्रतिशत ऊर्जा कोयला से तथा 40 प्रतिशत खनिज तेल से प्राप्त होती है। इन दोनों स्रोतों के उत्पादन और उपयोग में निरंतर वृद्धि हो रही है। 1960 के बाद इनका उपयोग कई गुना बढ़ गया है क्योंकि विश्व के सभी देश आर्थिक दौड़ में शामिल हो गये हैं। इस दैड़ के कारण ऊर्जा स्रोतों, विशेषकर कोयला और तेल पर जैसे डाका डाला जा रहा है। पश्चिमी एशिया तेल उत्पादन के कारण राजनैतिक संकट में घिर गया है क्योंकि पश्चिमी देश अपने–अपने ढंग से इनको वश में रखना चाहते हैं। पेट्रोल और कोयला आधारित तकनीकों की प्रधानता के कारण इनको किसी कीमत पर प्राप्त करने की जैसे होड़ लग गयी है। इस धकापेल के कारण पेट्रोल उत्पादन वाले देश उसकी कीमत तेजी से बढ़ाते जा रहे हैं।

तीव्र आर्थिक विकास और उच्च जीवन स्तर के लिए अधिक ऊर्जा का उपयोग अनिवार्य है। अतः ऊर्जा स्रोतों के उत्पादन और उपयोग में संतुलन आवश्यक है। बढ़ती मांग के कारण यदि एक देश अपने

उत्पादन से पूरा करने में असमर्थ होता है तो उसके लिए आयात करना अनिवार्य होता है। यदि निर्यातक देने से इंकार करे या अधिक मूल्य मांगे तो स्थिति संकटमय हो जाती है। अनुमान है कि अगले 20 या 25 वर्षों में ऊर्जा की खपत आज से दुगुनी हो जायेगी जबकि तेल और कोयला के संचित भण्डार संकट के बिन्दु पर पहुंच जायेंगे। 1960 के बाद जिस तीव्र गति से ऊर्जा का उपयोग बढ़ा, संकट वहीं से शुरू हुआ। इसके पूर्व अधिकांश ऊर्जा का उपयोग विकसित देश कर रहे थे। फलतः विश्वव्यापी मांग में कई गुनी वृद्धि से मांग और पूर्ति का संतुलन बिगड़ने लगा। 1974 में पेट्रोल निर्यातक देशों ने पेट्रोल की कीमत में छः गुनी वृद्धि कर दी। 1980 में यह पुनः बढ़कर 30 डालर और 1981 में 34 डालर हो गया जिससे विश्व के सभी देश संकट की स्थिति महसूस करने लगे क्योंकि सभी स्रोतों की तुलना में पेट्रोल बहुउपयोगी है और कुछ उपयोगों में इसकी कोई स्थानापन्न सामग्री नहीं है। दहनशीलता, ढोने की सुविधा, विविध उपयोग और भण्डारण की सुविधा के कारण पेट्रोल पर निर्भरता बढ़ती जा रही है जबकि इसकी कीमत में बेतहाशा वृद्धि हो रही है। इस आर्थिक संकट का सबसे अधिक कुप्रभाव विकासशील देशों पर हो रहा है। इस आर्थिक संकट का सबसे अधिक कुप्रभाव विकासशील देशों पर हो रहा है क्योंकि अपनी कीमती विदेशी मुद्रा को वे पेट्रोल के आयात पर खर्च कर रहे हैं।

भारत अपने निर्यात से अर्जित भारी रकम पेट्रोल के आयात पर खर्च करता है। लेकिन विचारणीय प्रश्न यह भी है कि अब भी भारत उपभोग में लायी जाने वाली कुल ऊर्जा का अधिकांश गैर व्यापारिक ईंधनों से प्राप्त करता है। भारत में उपयोग में लायी जाने वाली ऊर्जा का केवल 39 प्रतिशत भाग कोयला, तेल, जल विद्युत और गैस से प्राप्त किया जाता है जबकि 21 प्रतिशत भाग लकड़ी और 12 प्रतिशत गोबर आदि से प्राप्त किया जाता है। व्यापारिक स्रोतों में 85 प्रतिशत ऊर्जा कोयला से, 15 प्रतिशत तेल, बिजली आदि से प्राप्त की जाती है। स्पष्ट है कि व्यापारिक स्रोतों में कोयला का उपयोग सबसे अधिक हो रहा है। भारत में ज्ञात भण्डारों के आधार पर अनुमान लगाया गया है कि वर्तमान भण्डार केवल 90 सालों के लिए पर्याप्त हैं। अतः ऊर्जा स्रोतों पर बढ़ता दाबव ऊर्जा संकट का मुख्य कारण है।

ऊर्जा संकट के अनेक पहलू हैं जैसे सीमित ऊर्जा स्रोतों का अधिक दोहन, असीमित ऊर्जा स्रोतों की उपेक्षा, परमाणु ऊर्जा से विकिरण को खतरा गैर पारम्परिक स्रोतों का कम विकास, लकड़ी के अधिक उपयोग से वन विनाश औश्र कोयला, तेल के अधिक उपयोग से बढ़ता प्रदूषण। जैसाकि पहले बताया जा चुका है कि विश्व का तकनीकी विकास अधिकांश कोयला, तेल, गैस और विद्युत आधारित है। फलतः सीमित भण्डार वाले स्रोतों पर दिनोंदिन बढ़ता दबाव संकट का कारण है। इस संकट से निबटने के लिये अनेक देश इनके संरक्षण और परिष्करण के मार्ग ढूंढ रहे हैं। अनेक विकसित देश अपने भण्डारों को सुरक्षित कर आयात पर अधिक निर्भर रहने लगे हैं जापान इसमें अग्रणी हैं।

ऊर्जा संकट को बढ़ाने में असीमित स्रोतों यथा पन बिजली, हवा और किरण, ज्वार शक्ति आदि के विकास की ओर कम ध्यान दिया जाता है। संकट आने के बाद इधर ध्यान गया है। विश्व के अनेक देश इन साधनों के उपयोग की तकनीक विकसित करने में व्यस्त हैं। यदि सौर बैटरी का व्यापारिक उत्पादन होने लगेगा तो संकट को कम किया जा सकता है। इसी प्रकार ज्वार शक्ति, हवा और भू–ताप से बिजली पैदा करने की तकनीक संकट को कम कर सकती है। पन–बिजली का यदि समुचित विकास किया जाय तो ऊर्जा संकट को कम किया जा सकता है।

ऊर्जा संकट का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष अधिक लकड़ी के उपयोग के कारण वन विनाश और पर्यावरण का असंतुलन है। लकड़ी के उपयोग को कम करना तब तक संभव नहीं है जब तक ग्रामीण क्षेत्रों में ऊर्जा के साधन सुलभ न हो जाय। अतः गैर पारम्परिक स्रोतों तथा गोबर गैस, सौर ऊर्जा, हवा आदि का उपयोग बढ़ाने की आवश्यकता है। इस दिशा में अभी सीमित काम हो सके हैं।

7.7 भारत में ऊर्जा संकट की स्थिति

भारत अपने आर्थिक विकास को त्वरित करने के लिये अधिक से अधिक पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों का दोहन कर रहा है। इससे कोयला, तेल, परमाणु खनिज और गैस के भण्डार अभी पूर्णतः ज्ञात नहीं हैं। ज्ञात भण्डारों के आधार पर कहा जा सकता है कि अगली सदी में किसी प्रकार काम चलाया जा सकता है।

भारत में अधिकांश व्यापारिक ऊर्जा स्रोतों का उपयोग उद्योग और यातायात में होता है। घरेलू खपत न्यूनतम है। कृषि में ऊर्जा की खपत बढ़ रही है लेकिन संपूर्ण जनसंख्या के परिप्रेक्ष्य में बहुत कम है। भारत कृषि प्रधान और ग्राम प्रधान देश है। गांवों के जीवन और कृषि में गुणात्मक परिवर्तन लाने के लिए ऊर्जा की उपलब्धता अनिवार्य है। लेकिन अब भी 40 प्रतिशत गांव विद्युत ऊर्जा से वंचित हैं। जिन 60 प्रतिशत गांवों में विद्युत ऊर्जा का प्रसार किया गया है वहां आपूर्ति अनिश्चित है। इस अनिश्चितता का कुप्रभाव कृषि कार्य पर पड़ता है। गांवों में घरेलू खपत के लिए लकड़ी, गोबर, आदि प्रमुख ऊर्जा स्रोत हैं। जिनका उपयोग अब रोका जाना चाहिये। लकड़ी के उपयोग से वन विनाश होता जा रहा है और ईंधन के रूप में गोबर के उपयोग से खाद की समस्या कठिन होती जा रही है। भारत के 5 लाख 76 हजार गांवों में बसी 75 प्रतिशत जनसंख्या प्रकाश के लिए अब भी केरोसीन तेल और अन्य प्रकार के वनस्पति तेलों पर निर्भर है क्योंकि अब भी आधे गांव विद्युत प्रकाश से वंचित हैं। जहां विद्युत प्रकाश का प्रबंध किया गया है वहां भी बिजली की आपूर्ति अनियमित है। अधिक अन्न उत्पादन के लिए यंत्रों से सिंचाई आवश्यक है लेकिन न तो पर्याप्त बिजली उपलब्ध है और न डीजल। फलतः उन्नत बीज, खाद और उपुयक्त कृषि विधि का लाभ न मिलने के कारण कृषि उत्पादन कम हो रहा है जिससे लागत खर्च बढ़ता जा रहा है। कृषि वैज्ञानिकों के आसार यदि गंगा के उर्वरक मैदान में सिंचाई का समुचित प्रबंध हो जाय तो सारे भारत के लिए अन्न पैदा किया जा सकता है। लेकिन ऊर्जा के अभाव में भूमिगत जल का दोहन कठिन कार्य बन गया है। भारत के जिन क्षेत्रों में सिंचाई की सुविधा हो सकती है वे हरितक्रांति के प्रतीक बन गये हैं जैसे पंजाब, हरियाणा, गुजरात आदि।

कृषि के अतिरिक्त उद्योग और परिवहन ऊर्जा के अभाव में गति नहीं पकड़ रहे हैं। ऊर्जा की बढ़ती मांग को कभी भी सही रूप में आंका नहीं जा सका। फलतः नये स्रोतों जैसे जल विद्युत, अणुशक्ति खनिज तेल के विकास के बावजूद स्थिति दयनीय बनी हुई है। उद्योगों में ऊर्जा कटौती का भारी प्रभाव औद्योगिक उत्पादन पर पड़ रहा है। 1985 तक सभी स्रोतों से केवल 98156 मी.वा. विद्युत का उत्पादित करने की क्षमता विकसित हो सकी थी जिसमें 35 प्रतिशत जल विद्युत, 61 प्रतिशत ताप विद्युत और केवल 3 प्रतिशत अणु विद्युत का योगदान था। भारत में 35 प्रतिशत जल विद्युत उत्पादन यह इंगित करता है कि हमारे कर्णधारों ने इस स्रोत की सबसे अधिक उपेक्षा की है जो भारत के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण साधन है। वास्तविकता यह है कि कुछ बड़ी जल विद्युत योजनाओं को ही महत्त्व दिया गया जबकि छोटी योजनाओं पर अधिक बल देने की आवश्यकता थी। कोयला पर आधारित विद्युत गृह रचना के दृष्टिकोण से सरल और कम समय में पूरा होते हैं।

जल विद्युत की उपेक्षा अब महसूस की जा रही है। यह भी उल्लेखनीय है कि कोयला के वितरण और खपत क्षेत्र के बीच लम्बे परिवहन मार्ग से खर्च बढ़ता जा रहा है जिससे उत्पादन खर्च अधिक आता है। यह भी विचारणीय प्रश्न है कि जल संसाधन का उपयोग एकांगी होने से सिंचाई और ऊर्जा उत्पादन के लिए उसका वृहत पैमाने पर दुरुपयोग हो रहा है। ताप विद्युत गृह जल का उपयोग एकांगी कर रहे हैं जिस पर ध्यान देना आवश्यक है। साथ ही पर्यावरण संरक्षण को ध्यान में रखकर ऊर्जा स्रोतों का दोहन किया जाना चाहिये।

भारत में गैर पारम्परिक ऊर्जा स्रोतों का विकास अभी प्रारंभिक अवस्था में है हालांकि इसकी संभावना बहुत अधिक है। भारत के गांवों को सबसे अधिक लाभ ऐसी ही ऊर्जा से हो सकता है लेकिन आवश्यकता इसके प्रचार और विकास की है। भोजन पकाने, रोशनी और छोटे यंत्रों के लिए गैर पारम्परिक ऊर्जा स्रोत, गोबर गैस, हवा, कचरा गैस, सौर ऊर्जा आदि सबसे उत्तम प्रमाणित हो सकता है। इससे एक तरफ जलावन

लकड़ी की समस्या का समाधान होगा वहीं गोबर का उपयोग खाद के लिए किया जा सकेगा। जहां जंगल साफ कर दिये गये हैं वहां जलावन की समस्या विकट हो गई है। यह भी विचारणीय है कि घरेलू कार्यों में प्रयोग की जाने वाली ऊर्जा की तकनीक को सुधार कर खपत को कम किया जा सकता है और धुआं आदि से स्वास्थ्य को होने वाली हानि से बचाया जा सकता है। इस दिशा में धुआं रहित चूल्हे का प्रचार–प्रसार लाभकारी सिद्ध हो सकता है। सौर चूल्हा का उत्पादन लागत कम करके उसके प्रचार–प्रसार को बढ़ाया जा सकता है। ऐसे प्रयोग को बढ़ाने की आवश्यकता है। इससे प्रदूषण की समस्या भी हल हो सकती है।

8- vH;kl i'u

fucU/kkRed i'u

1. मनुश्य और पर्यावरण के अंतर्संबंधों की विविध दृश्टिकोणों से विवेचना करो।

y?kqÙkjkRed i'u

1. औद्योगिक जनित समस्याओं का वर्णन कीजिए।
2. भारत में ऊर्जा संकट की स्थिति को समझाइये।

vfr y?kqÙkjkRed i'u

1. वन संरक्षण को प्रोत्साहित करने वाला आंदोलन है–
   (a) चिपको आंदोलन (b) नर्मदा बचाओ आंदोलन
   (c) अपिको आंदोलन (d) उपरोक्त सभी
2. नेशनल एनवायरमेंट इंजीनियरिंग इंस्टीट्यूट कहां अवस्थित है?
   (a) कानपुर (b) दिल्ली
   (c) नागपुर (d) हैदराबाद
3. भुद्ध वायु में नाइट्रोजन का कितना प्रतिशत होता है?
   (a) 76 (b) 21
   (c) 78 (d) 22
4. वनस्पति की वृद्धि के लिए मिट्टी में कितने खनिज तत्त्वों की आवश्यकता होती है?
   (a) 18 (b) 16
   (c) 14 (d) 15
5. एक सामान्य व्यक्ति के लिए कितने डेसीबल तक की ध्वनि सुनना उपयुक्त होता है?
   (a) 40–50 डेसीबल (b) 50–60 डेसीबल
   (c) 30–40 डेसीबल (d) 60–70 डेसीबल
6. चेर्नोबिल संयंत्र दुर्घटना किस प्रदूशण से सम्बन्धित हैं?
   (a) वायु प्रदूशण (b) जल प्रदूशण
   (c) तापीय प्रदूशण (d) नाभिकीय प्रदूशण
7. ..... से पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है।
8. ..... व्यक्ति की कार्यक्षमता व एकाग्रता को प्रभावित करता है।
9. ..... की समस्या निर्धनता का प्रमुख कारण है।
10. भारत में पवन भाक्ति का उपयोग भुरू करने वाला ..... प्रथम राज्य है।

bdkbl & 4
i;koj.kh; uhfr'kkL=

mís';

1. पर्यावरणीय नीतिशास्त्र की अवधारणा को जानना।
2. पारिस्थितिकी धर्म का अध्ययन करना।
3. पारिस्थितिकी कर्म के क्षेत्र को जानना।

lajpuk

1. भारतीय परम्परा में पर्यावरणीय नीतिभाास्त्र
2. गांधी दर्शन में पर्यावरण
3. नीतिशास्त्र और पर्यावरण
    - 3.1 प्राविधिक व्यक्तिवाद (Technocratic Individualism)
    - 3.2 पर्यावरणीय साकल्यवाद (Environmental Holism)
        - 3.2.1 पर्यावरणीय साकल्यवाद की समस्याएं
    - 3.3 पर्यावरणीय समानता अथवा पर्यावरणीय समदृश्टि (Environmental Equity)
        - 3.3.1 सशक्त मानवाधिकार बनाम अशक्त मानवाधिकार
        - 3.3.2 मध्यम मार्ग : समानता, स्वास्थ्य और सामाजिक संविदा
            - 3.3.2.1 अन्तर्पीढ़ीय समानता
            - 3.3.2.2 अंतर्राश्ट्रीय और क्षेत्रीय समानता
4. जीवन के प्रति सम्मान
5. पारिस्थितिकी दर्शन का धर्म
    - 5.1 पारिस्थितिक चेतना
    - 5.2 आदर का भाव
        - 5.2.1 समादरणीय (Reverential) तकनीक
    - 5.3 पारिस्थितिकी धर्म (Ecological Dharma)
        - 5.3.1 धर्म और उसका बोध
    - 5.4 धर्म और पर्यावरण
    - 5.5. पारिस्थितिकी और आध्यात्मिकता
    - 5.6 पारिस्थितिकी दर्शन
6. पारिस्थिकी कर्म (Ecological Karma)

6.1 पारिस्थितिकी कर्म का अनुभव

6.2 सामूहिक कर्म

6.3 पारिस्थितिकी कर्म (Eco-karma) की अनदेखी

7. अभ्यास प्रश्न

1- Hkkjrh; ijEijk e i;koj.kh; uhfr"kkL=

प्राचीन भारत में प्रकृति के साथ समन्वय स्थापित करना सामाजिक जीवन का दर्शन था। भारतीय उपदेश को, सन्त–महात्माओं ने एकांत जंगलों में ध्यान, साधना और तपस्या से अर्जित ज्ञान वेद, उपनिषद्, स्मृति और धर्मशास्त्रों के माध्यम से इस भूमि के जन–जन को समर्पित किया। इसी प्राचीन ज्ञान ने भारतीयों को प्रकृति–पूजा के माध्यम से पर्यावरण–प्रबन्धन का पाठ सिखाया। इस ज्ञान से भारतवासियों ने प्राकृतिक संसाधनों, यथा–वनस्पति, पृथ्वी माता, जल, वायु, आकाश, पेड़–पौधों तथा पशु–पक्षियों का शोषण करना नहीं सीखा, बल्कि इनकी पूजा के माध्यम से पर्यावरण प्रबन्धन की शिक्षा प्राप्त की। इन संसाधनों की सुरक्षा का दायित्व धार्मिक रणनीति के रूप में क्रियान्वित हुआ। प्राकृतिक पर्यावरण और संसाधनों को देवतुल्य मानकर उनके प्रति भक्ति भाव की शिक्षा वैदिक ज्ञान से प्राप्त हुई। भारतीय जीवन दर्शन में निम्न सिद्धान्तों या मान्यताओं को लोग अपनी दिनचर्या में स्वाभाविक रूप से आत्मसात करते थे–

- प्रकृति के प्रति आदर।
- प्राणियों का जीवन प्राकृतिक तत्त्वों की देन है।
- प्रकृति के साथ समन्वय।
- प्राकृतिक पर्यावरण की सुरक्षा।
- आवश्यकता पूर्ति के लिए ही प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग।
- सभी जैव–अजैव पदार्थों में ईश्वरत्व की उपस्थिति।
- प्रकृति का विनाश मानवता का विनाश।
- जीव–जगत् के प्रति करुणा व संवेदना।
- वायु, जल, भूमि, आकाश, वनस्पति, पशु सभी ईश्वर की रचना इनमें ईश्वर का निवास, इनकी पूजा ईश्वर की पूजा सृष्टि के रचनाकार की पूजा।
- मनुष्य ईश्वरीय सृष्टि की अनेक रचनाओं में से एक रचना है, उसका अन्य प्राणियों व रचनाओं पर कोई आधिपत्य नहीं है, बल्कि उस पर उनकी सुरक्षा का दायित्व है।
- अहिंसा परमो धर्मः, अहिंसा सबसे बड़ा धर्म है इसलिए समस्त जीव जगत के प्रति अहिंसा भाव का पालन करना प्रत्येक मनुष्य का दायित्व है।
- तूफान, मन और वातावरण को शुद्ध और स्वच्छ रखना मानव का धर्म है। पर्यावरणीय पवित्रता आत्मशुद्धि के बराबर है।
- सभी प्राणी समान महत्त्व के हैं।
- सभी प्राणियों को अपने अस्तित्व का समान अधिकार है।

ऋग्वेद और अथर्ववेद के अनेक श्लोक पर्यावरणीय घटकों को ईश्वर की पवित्र कृति मानकर उनकी पूजा, अर्चना, आराधना, वंदना एवं स्तुति के स्तर में कहे गये हैं। पर्यावरणीय घटकों को देवी–देवताओं के रूप में संबोधित किया गया है, जैसे– सूर्य देवता, वायु देवता, अग्नि देवता, जल देवता, पृथ्वीमाता, वनदेवी, ऋतुराज आदि। जिस समाज में पर्यावरण के संघटकों को पूजनीय, वंदनीय और देवतुल्य माना गया है वहां जल, वायु, भूमि आदि घटकों का प्रदूषण कैसे हो सकता है? वन–देवी का पुजारी वनों का

विनाश कैसे कर सकता है? पृथ्वीमाता का पुत्र अपनी माता को संकट में कैसे डाल सकता है? भारतीय समाज में इन घटकों को पवित्र बनाये रखना सभी का दायित्व रहा है।

ऋग्वेद, मनुस्मृति व चरक संहिता में जल की शुचिता, आरोग्यता व औषधीय गुणवत्ता की व्याख्या की गई है। जल को शुद्ध रखने के लिए समाज में मर्यादा का विकास हुआ। इसी प्रकार पेड़ पौधों को भी मानव जीवन के लिए अपरिहार्य बतलाया गया है। ऋग्वेद में पेड़ पौधों की आरोग्यता व औषधीय गुणवत्ता का व्यापक उल्लेख मिलता है। दूसरी ओर वृक्षों को देवी–देवताओं से जोड़कर उनकी पूजा की जाती है।वृक्षों का देवी–देवताओं से निम्न रूप में साहचर्य मिलता है–

o{k	no&nsoh
कमल	लक्ष्मी
वटवृक्ष	ब्रह्मा
अशोक	इन्द्र
कदम्ब	कृष्ण
पलास	ब्रह्मा, गन्धर्व
नीम	सीतला, मनसा
अंजीर	विष्णु, रूद्र
आम	लक्ष्मी, गोवर्धन
पीपल	विष्णु, कृष्ण

वृक्ष देवता की पूजा, अर्चना, प्रार्थना व परिक्रमा की जाती है, पवित्र धागा बांधा जाता है तथा वृक्षारोपण को शुभ माना जाता है। मत्स्य पुराण में एक वृक्ष को दस पुत्रों के बराबर बतलाया गया है। वहां पुराण के अनुसार एक पीपल, एक नीम, एक बड़, दस पुष्पी–पादप या लता, दो अनार, दो संतरे या पांच आम के वृक्ष उगाने वाला व्यक्ति कभी नरक में नहीं जायेगा।

वृक्षों की भांति पशु–पक्षियों को देवी–देवताओं की सवारी मानकर उनकी पूजा की जाती है। निम्न तालिका में इनका साहचर्य वर्णित है–

i'k&if{k	no&nsoh
सिंह	दुर्गा
कलहंस	ब्रह्मा
गज	इन्द्र, गणेश
नंदी सांड	शिव
चूहा	गणेश
राजहंस	सरस्वती
गरूड़	विष्णु

सर्प	शिव
मत्स्य	कामदेव
वानर	हनुमान, राम
मयूर	कार्तिकेय, सरस्वती
उल्लू	लक्ष्मी
मगर	गंगा
गंधर्व	गंगा
श्वान	सीतला
हरिन	वायु

पशुओं को उनके आर्थिक महत्त्व के अतिरिक्त पर्यावरणीय एवं धार्मिक महत्ता प्रदान की गई है। गाय को माता कहा गया है। उसके दूध, घृत की औषधीय गुणवत्ता सर्वविदित है। गौमूत्र, गोबर को पवित्र तथा गौवध को अपराध समझा गया है। हिन्दू धर्म के अलावा वेद और उपनिषद्काल के बाद प्रतिपादित बौद्ध एवं जैन धर्मावलम्बी भी अहिंसा के पुजारी हैं। ईसा पूर्व चक्रवर्ती सम्राट अशोक महान् ने वनस्पति एवं जीवों को संरक्षण प्रदान किया, तथा चूहे और चींटी के हत्यारे के लिए भी दण्ड निश्चित किया। इस प्रकार प्राचीन भारत में पर्यावरण के जैव–अजैव संघटकों को धर्म एवं ईश्वर से सम्बद्ध कर उसकी रक्षा और संवर्द्धन का अनूठा प्रयोग मिलता है। धार्मिक क्रियाओं का समाज में सर्वोपरि स्थान रहा और धर्म ने प्रकृति की सदैव रक्षा की। प्राचीन भारत में धार्मिक अनुष्ठान से पर्यावरण प्रबन्धन स्वतः सिद्ध हो जाता था।

2- xk/kh n'ku e i;koj.k

विगत तीन दशकों से पर्यावरण हमारे दैनिक जीवन एवं चिंतन प्रक्रिया में चर्चा का केन्द्र–बिन्दु हो गया है। बुद्धिजीवी, भाोधार्थी, संसद एवं राजनीतिज्ञों के बीच भी इस सम्बन्ध में विवाद एवं चर्चाओं का माहौल है। औद्योगिक विकास, प्रौद्योगिक सम्पन्नता, असीमित जनसंख्या–वृद्धि के कारण धुआँ, औद्योगिक अवशिष्ट, कचरे, वायु, जल तथा ध्वनि प्रदूषण से प्रभावित मानव अनेक प्रकार के रोगों तथा कैंसर, तपेदिक, मलेरिया, हैजा, पेचिस, रक्तचाप, उच्च तनावा आदि से ग्रसित हो रहा है। इन परिस्थितियों में राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के पर्यावरण संरक्षण सम्बन्धी विचार अत्यन्त प्रासंगिक हो गये हैं।

गाँधीजी ने कभी भी प्रकृति के प्रतिकूल किसी भी विचार को मान्यता नहीं दी। यहाँ तक कि भाारीरिक व्याधि से छुटकारा पाने के लिये भी प्राकृतिक चिकित्सा को ही उत्तम माना। इस सम्बन्ध में उनके वक्तव्य का कुछ अंश निम्नानुसार है–''मनुष्य का भौतिक भारीर पृथ्वी, पानी, आकाश, तेज और वायु नाम के पाँच तत्त्वों से बना है। इनमें से तेज तत्त्व भारीर को भाक्ति पहुंचाता है। सबसे जरूरी चीज हवा है जिसे ईश्वर ने सबके लिए सुलभ बनाया है लेकिन हम जिसे अपने घरों के अंदर खिड़की और दरवाजे बंद करके सोते हैं और ईश्वर की प्रत्यक्ष प्रसाद जैसी ताजी और साफ हवा से फायदा नहीं उठाते। प्रकृति सत्य है और सत्य से बड़ा कुछ नहीं ऐसा उनका दृढ़ विश्वास अपनी आत्म–कथा को भी उन्होंने सत्य के प्रयोग कहा।''

गाँधीजी का मानना था कि आर्थिक एवं जैविक पहलू के अलावा मानव–जीवन का एक और पहलू, जिसका सम्बन्ध प्रकृति के साथ होता है, आध्यात्मिक है। जब आध्यात्मिक और भौतिक पहलू के बीच का संतुलन टूटता है तब रोग पैदा होता हैः पृथ्वी प्रत्येक मनुष्य की आवश्यकता पूरी करने के लिए तो काफी देती है, परन्तु प्रत्येक मनुष्य के लोभ को तृप्त करने के लिए नहीं देती। जब तक हम जीवन–चक्र के साथ सहयोग करते हैं, तब तक जीवन अपना उपजाऊपन निरन्तर नये सिरे से निर्माण करती रहती है और जो

उस पर निर्भर करते हैं उन्हें स्वास्थ्य, मनोरंजन, पोषण और सुख–शांति प्रदान करती है। परन्तु जब ''छीन कर खाने'' की वृत्ति का बोलबाला होता है, तब प्रकृति का संतुलन बिगड़ जाता है और सर्वत्र जीवन के क्षेत्र में बिगाड़ होने लगता है।

गाँधीजी का ट्रस्टीशिप सिद्धान्त की बुनियाद में भी प्रदूषण–विहीन पर्यावरण की धारणा निहित रही, जब वे कहते हैं– जैसे सूर्य की किरणें हमें प्रकाश देती हैं, उष्णता देती हैं और पता नहीं सूक्ष्म रूप से और भी कितनी–कितनी चीजें देती हैं। मन में उलटा सवाल उठना चाहिये कि हमारे जीवन में ऐसी कौन–सी चीजें हैं, जो सूर्य से हमें नहीं मिलती होंगी? हमारे वर्चस्व की हस्ती सूर्य के कारण ही है।अब जो सूर्य किरणें, उनकी उष्णता और उनका प्रकाश हमें जीवन में मिलता है उनका मालिक कौन? जैसा प्रश्न ही हास्यास्पद मालूम होता है। सूर्य किरणों का हम उपयोग कर सकते हैं, उनसे लाभ उठा सकते हैं। लेकिन जिन पर किसी का मालिकी हक नहीं हो सकता।हमारी पृथ्वी के इर्द–गिर्द आकाश में मीलों तक हवा फैली हुई है। हवा के बिना हम एक क्षण भी जी नहीं सकते। (प्राणी भाब्द का अर्थ ही होता है जैसे जीव, जो हवा को पेट में लेते हैं और बाहर निकालते हैं और हवा की मदद से जीते हैं।) जिस हवा पर मालिकी हक किसका? यह प्रश्न हास्यास्पद लगता है।आकाश के बादल हमें पानी देते हैं। जिस पानी के कारण ही हवा में नमी रहती है, घास और वनस्पति उगती है। जैसे बादलों पर और उनकी बारिश पर मालिकी हक किसका? जिस प्रश्न को भी हम हास्यास्पद मानते हैं।

हम नदी के किनारे बसते हैं। नदी की मदद से खेती होती है। नदी के प्रवाह में नाव चलाकर हम स्थानान्तर करते हैं। जिन नदियों पर मालिकी किसकी? किसी की भी नहीं। नदी के किनारे रहने वाले मनुष्य, पशु–पक्षी, कृमि–कीटक सबको नदी से लाभ मिलता है। नदी हमारी मालिक बन सकती है। हम नदी के मालिक नहीं हैं।तब जिस जमीन पर हम रहते हैं, जिस जमीन से हमें खाने के लिये कन्दमूल, फल, अनाज, धान्य मिलते हैं, पीने के लिये पानी मिलता है, उस पर ही मनुष्य अपना हक क्यों मानने लगा? जमीन के तो हम आश्रित हैं। जमीन के आधार पर ही हम जीते हैं। इसलिए जमीन हमारी मालिक हो सकती है। सूर्य की किरणों से, हमारे आसपास घिरी हुई हवा से, आकाश के पानी से जिस तरह हम लाभ उठाते हैं उसी तरह जमीन से भी हम लाभ उठायें। लेकिन अपने को जमीन का मालिक क्यों मानें?जमीन पर खड़े होकर जमीन के अमुक भाग को हम अपना सकते हैं। यानी दूसरों को उस जमीन का उपयोग करने से रोक सकते हैं। यही है हमारे जमीन पर के अधिकार का रहस्य। नदी पर किसी व्यक्ति का अधिकार नहीं है। लेकिन देश की नदियों पर उन लोगों का अधिकार माना जाता है, जिनके देश में से (यानी जमीन पर से) नदियाँ बहती हैं। अगर एक नदी अनेक देशों में बहती है, तो हम उस नदी पर अधिकार उन लोगों का है, जिनकी जमीन पर से वह नदी बहती है। जिसमें से कैसी–कैसी झंझटें पैदा होती हैं सो हम रोज अनुभव करते हैं। नदियों के बंटवारे होने लगे हैं।अब हम आकाश भी बंटवारा करने लगे हैं। भारत की जमीन के ऊपर जो आकाश अथवा अवकाश खड़ा है उतना आकाश का टुकड़ा हमारा है। बाकी का आकाश हमारा नहीं है। हमारे देश पर जिनका अधिकार नहीं है वे लोग अपने अपने हवाई जहाज लेकर हमारे आकाश में घुस नहीं सकते; जिस पर से हम देख, सकते हैं कि हवा, पानी, आकाश और प्रकाश आदि सब कुदरती चीजों से लाभ उठाने का अधिकार हम कुदरत का दिया मान सकते हैं। लेकिन मालिकी हक तो मनुश्य–कृत है, काल्पनिक है और हमारी भाक्ति से मर्यादित भी है। जहां हमारी भाक्ति नहीं चलती वहां हमारा अधिकार टिक नहीं सकता; वास्ते वह माना भी नहीं जा सकता।

गाँधीजी ने स्पष्ट संकेत किया है कि प्रकृति हमें समान और न्यायपूर्ण रूप में अपना सर्वस्व प्रदान करती है किन्तु यह मनुष्य है जो उसका संतुलन बिगड़ कर पर्यावरणीय संकट पैदा करता है, अपने और अपनी समष्टि के लिए अवांछनीय एवं अमानवीय कृत्य करता है। यही कारण है कि आज सत्यव्रती बापूजी की जीवनशैली से शिक्षा न लेकर हम भोगवादी संस्कृति में बुरी तरह उलझते जा रहे हैं जिसके कारण

सम्पूर्ण पर्यावरण प्रदूषित होता जा रहा है जबकि गांधीजी का स्पष्ट सुझाव था कि ''प्रकृति के पास हमारी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बहुत कुछ है परन्तु हमारे लालच अथवा भोगवाद को पूरा करने के लिए बहुत कम।'' दुर्भाग्यवश या तो लोगों ने इस चेतावनी को गंभीरता से नहीं लिया या बात उनकी समझ में नहीं आयी। प्रकृति में पर्यावरण को दोनों घटक जैविक; यथा मानव, पादप, जीव–जन्तु आदि तथा अजैविक, यथा प्रकाश, तापमान मृदा, वायु, जल, खनिज आदि सम्मिलित होते हैं। आज भौतिक विकास के कारण उपरोक्त सभी प्रदूषित है।

स्वच्छता एवं सफाई गांधीजी के जीवन के अपरिहार्य अंग थे। उनका विचार था कि ''जो आदमी जहां चाहे वहां कूड़ा करकट डालकर या दूसरे तरीकों से गंदगी फैलाकर कुदरत और मनुष्य के प्रति अपराध करता है। मनुष्य का भारीर ईश्वर का मंदिर है और मंदिर को बिगाड़ना बहुत बड़ा अपराध है।''

वर्तमान भाताब्दी में जहां एक ओर आर्थिक, वैज्ञानिक, तकनीकी, प्रौद्योगिकी एवं सामाजिक विकास में अत्यधिक वृद्धि हुई है, वहीं दूसरी ओर पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकी समस्याओं का प्रादुर्भाव हुआ है। गांधीजी किसी को भी बेरोजगार तथा विपन्न नहीं देखना चाहते थे। उनका कहना था कि ''अर्थशास्त्र में भी हमारा केन्द्र–बिन्दु मानव है। उसका मूल्य सबसे अधिक है। मशीन का उपयोग उसकी सेवा में होना चाहिए। उसे बेकार बनाकर अगर मशीन लायेंगे तो वह मशीन विनाश करेगी।'' अभी कुछ समय पहले ही न्यायालय के आदेश से अधिक प्रदूषणकारी कारखाने बंद कर दिये गये है या अन्यत्र स्थानान्तरित किये जा रहे हैं। पर्यावरण संतुलित रहे, लोगों का परस्पर भाईचारा बना रहे, उनका यह विचार उनकी ग्राम–स्वराज की अवधारणा से स्पष्ट होता है। ''ग्राम–स्वराज की मेरी कल्पना यह है कि वह एक ऐसा प्रयास होगा जो अपनी अहम् जरूरतों के लिये अपने पड़ौसी पर भी निर्भर नहीं करेगा। जात–पांत और अस्पृश्यता जैसे भेद जो हमारे समाज में पाये जाते हैं, वैसे इस ग्राम–समाज में बिलकुल नहीं रहेंगे।''

गांधीजी का कथन था– मानव की न बुझने वाली भौतिक सुखों की चाह और उसकी खोज, का गुणन करना एक बुराई है। मैं वादे से कह सकता हूं कि पश्चिमी देशों को अपने विचारों का रूपान्तरण करना ही पड़ेगा नही ंतो वह अपनी ही विलासिता के बोझ तले दब जायेंगे, जिनके वह दास बनते जा रहे हैं। वे आगे कहते हैं कि एक ऐसा समय आएगा कि जो लोग आज अपनी इच्छाओं को बढ़ाने की होड़ में है, उन्हें उल्टे कदम लौटना पड़ेगा और पछतावा पड़ेगा कि हमने यह क्या कर दिया।गांधीजी ने पश्चिमी विकास आदर्श के बारे में बहुत ही सटीक विचार रखे जिन्हें निम्न बिन्दुओं द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है–

- यदि हम पश्चिमी भौली व गुणवत्ता को अपनाना चाहते हैं तो सर्वप्रथम हमें हमारे देश में संसाधनों व ऊर्जा के असीमित भंडारों की सुनिश्चितता पुष्ट करनी होगी।
- गांधीजी पश्चिमी आदर्श पर अविश्वास इसलिए करते थे क्योंकि वे जानते थे कि इससे सतत् विकास संभव नहीं है।
- गांधीजी को इस बात का डर था कि पश्चिमी और विकसित राष्ट्र अपनी खुशहाली और वैभवता को बनाए रखने के लिए साधन सम्पन्न विकासशील व अविकसित राष्ट्रों का शोषण करेंगे व अन्य विकसित राष्ट्र इस कार्य में उनका सहयोग करेंगे।
- गांधीजी जानते थे कि प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन से देश का विकास तो होगा पर साथ ही विकास की प्रक्रिया भी तीव्र हो जाएगी।
- भारत में प्राकृतिक संपदाओं का संरक्षण कई धार्मिक मान्यताओं से भी जुड़ा है। पृथ्वी के संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग, सादगीपूर्ण जीवन भौली सुखी व दीर्घायु जीवन की द्योतक रही है। संरक्षण, संवर्द्धन और पुनःचक्रण भारतीय सभ्यता का एक महत्त्वपूर्ण अंग रहा है।
- अधिकांश विकासशील देश जनसंख्या प्रधान हैं जैसे–भारत। इन देशों में जनसमूह का एक बड़ा भाग अपनी मूलभूत और अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति पर ही पूर्णतया निर्भर

रहता है। फलस्वरूप इनके पास पृथ्वी के संसाधनों के शोषण के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं रहता।

विश्व क्षितिज पर अब यह चेतना उभरने लगी है कि यदि मानव को अपना अस्तित्व बनाए रखना है तो उसे प्रकृति के दिशा निर्देशों का पालन अनिवार्य रूप से करना होगा। मानव को अपने भौतिक विकास की सीमा तय करनी होगी व साथ ही साथ आध्यात्मिक विकास की ओर तीव्र गति से कदम बढ़ाने होंगे। आज हमें ऐसे विकल्प की आवश्यकता है जो पर्यावरण अनुकूल विकास पद्धति पर आधारित हो। इस पद्धति से आशय ऐसे विकास से है जो पारिस्थितिकी के नियमों पर आधारित हो, ऐसा विकास जो पर्यावरण के प्रति मैत्रीपूर्ण आर्थिक कौशलता व संसाधन और ऊर्जा संवर्द्धन की ओर ले जाए, जो स्वावलम्बी बनाए और जो सामाजिक–आर्थिक न्याय का पोशक हो।

भारत के जनसंख्या व कृषि प्रधान होने के कारण देश को Bio-industrial (Industries based on organic and industrial base-agro based industries) आधार आवश्यक है।यद्यपि भारत में आधुनिकता का अप्रत्याशित प्रवेश हुआ, द्रुत गति से विकास हुआ तथापि इसका लाभ गरीब ग्रामीण जनता को नहीं मिल पाया है। आज आवश्यकता इस बात की है कि हमारे विकास कार्यक्रमों में पर्यावरण, सामाजिक व आर्थिक दिशा निर्देशों का सही मिश्रण हो। एक सतत् समाज का विश्वास विज्ञान और तकनीकी पर तब तक रहेगा जब तक यह हमारे सामाजिक आर्थिक परिवर्तन के माध्यम और पर्यावरण मैत्री में सहायक होंगे क्योंकि अब यह स्पष्ट है कि सम्पूर्ण आर्थिक विकास केवल प्राकृतिक संसाधनों के दोहन से ही संभव नहीं है। हमें प्रकृति के साथ सहयोग व सहअस्तित्व की भावना को लेकर चलना होगा, अनवीनीकरण संसाधनों व ऊर्जा स्रोतों का संरक्षण करना होगा तथा मितव्ययिता को प्रोत्साहन देना होगा।

प्रश्न आज केवल मानव जाति के अस्तित्व और कल्याण का ही नहीं वरन् पृथ्वी के अन्य जीवों के अस्तित्व और संरक्षण का भी है। अतः हमें संसाधन उपभोग के लिए अन्य जीवों के साथ सह–उपभोग के लिए अन्य जीवों के साथ सह–उपभोगी बनकर रहना होगा क्योंकि हम जीवन–यापन के संदर्भ में एक–दूसरे से जुड़े हैं। मनुष्य एक विशाल परिवार का सदस्य मात्र है, मालिक नहीं।गांधीजी कहते थे कि पृथ्वी सबकी आवश्यकताओं की पूर्ति करने में तो सक्षम है पर लोभ और लालच की नहीं। इसलिए यदि हम सादगीपूर्ण जीवन जीएं तो दूसरे भी सादगीपूर्ण जीवन जी सकते हैं। गांधीजी ने आगे कहा– यदि हम सभी उतना ही लें जितना हमें जरूरत है तो पृथ्वी से गरीबी का नामों निशान मिट जाएगा।

3- uhfr'kkL= vkj i;koj.k

हम क्यों बाह्य अंतरिक्ष में एक व्यक्ति को पोषण दे सकते हैं और क्यों नहीं हम अपने ही भाहर में एक बच्चे को खाना और पोषण नहीं दे सकते? इस प्रश्न के उत्तर में प्रायः यह कहा जाता है– हम विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में तो दक्ष है किन्तु नीति के क्षेत्र में उतने ही कमजोर। अगर हम नीतिशास्त्र में कमजोर हैं तो भाायद सबसे अधिक पर्यावरण प्रदूषण कोई है तो वह है– मन का प्रदूषण। हमारा मन भ्रमित है। उसमें अन्धे भाव हैं, अविश्लेषित दावे हैं और स्वार्थपूर्ण सोच है। ऐसी स्थिति में हम न तो मानव जाति और न ही पर्यावरण का भला कर सकते हैं।

3-1 ikfof/kd 0;fäokn **(Technocratic Individualism)**

ऐतिहासिक रूप से जॉन लॉक के पाश्चात्य नीतिशास्त्र के समान ही नीतिशास्त्र व्यक्तिवादी है। कुछ संदर्भों में व्यक्तिवादी नीतिशास्त्र जैसे–जैसे मानव दुःखी होता गया वैसे–वैसे इनका भी अंत होता गया। यह नीतिशास्त्र बहुत से व्यक्तियों के लिए मूलभूत मानवाधिकार के लिए नैतिक और राजनैतिक आधार प्रदान करते हैं, परिणामस्वरूप काले लोग, महिलाएं और बच्चों को समानता का अधिकार मिल जाता है। आर्थिक समृद्धि के साथ व्यक्तिवादी नीतिशास्त्र प्रगति के नाम पर निष्ठुर व्यवहार को प्रोत्साहित करते हैं। पर्यावरण के

प्रति उनका व्यवहार आज तक प्रभुत्व वाला है। ऐसे लोग अपने देशवासियों को मारते हैं, भूमि के साथ बलात्कार करते हैं तथा अपने आसपास के परिवेश को पूर्णतया समाप्त कर देते हैं। समकालीन प्राविधिक व्यक्तिवादी यह विश्वास करते हैं– प्रौद्योगिकी विकास और आर्थिक विस्तार का साध्य भूमि के शोषण रूपी साधन को सदैव उचित ठहराता है।

निश्चित ही प्राविधिक व्यक्तिवाद के अंतर्गत आने वाले अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र और विज्ञान के साथ बहुत सी कठिनाइयां हैं। प्राविधिक व्यक्तिवादी सभी चीजों का मूल्य जानते हैं किन्तु किसी की भी महत्ता नहीं जानते। यह नैतिक मूल्यों को क्रूर बाजारी तंत्र के कारण समझने में असफल रहते हैं। वे जोखिम, लागत और लाभ के समान वितरण की उपेक्षा करते हैं। वे लोगों की प्राथमिकताओं की भी उपेक्षा करते हैं, उपयोगिता और वैयक्तिक कल्याण में अंतर की भी उपेक्षा करते हैं और वे इस बात की भी उपेक्षा करते हैं कि वर्तमान का आय का वितरण सदैव नहीं रहने वाला। किन्तु वे इस तरह के वितरण को विकास का पैमाना मानते हैं।

प्राविधिक व्यक्तिवादी नैतिक रूप से इसलिए गलत नहीं है कि वे मानव प्रगति को मापने के आर्थिक पैमाने में गलत है; किन्तु इसलिए भी नैतिक रूप से गुमराह हैं क्योंकि उनकी मूलभूत सोच उन्हें अन्य मनुष्यों और पर्यावरण पर प्रभुत्व स्थापित करने देती है। ये लोग मानव कल्याण को वैयक्तिक प्राथमिकता के आधार पर मापते हैं और असमानता पर आधारित वितरण की उपेक्षा करते हैं। वे गरीब और अमीर की योग्यता में भी अंतर कर व्यक्ति और राष्ट्रों के बीच मूलभूत विषमता को बढ़ावा देते हैं।

इसके अतिरिक्त प्राविधिक व्यक्तिवादी पर्यावरणीय संसाधनों के त्वरित उपयोग को बढ़ावा देते हैं। वस्तु की वर्तमान में भाुद्ध कीमत क्या है?– इसको केन्द्र में रखकर पर्यावरणीय संसाधनों को लूटा जाता है। इसलिए विवेकी आर्थिक मनुष्य पृथ्वी के सीमित संसाधनों को जितनी तेजी से उपयोग कर सकता है, वह करता है। भाुमाकर ने चेतावनी देते हुए कहा था– इस तरह का संसाधनों का उपभोग एक जीवन भौली को प्रदर्शित करता है जो यह सोचती है कि यहां कोई भी स्थायी नहीं है। इसलिए जितना तेजी से उपभोग कर सकें, कर लें। प्राविधिक व्यक्तिवादियों की जीवनशैली अत्यधिक उपभोगवादी है, जो इस सच्चाई को झुठलाती है कि विश्व के संसाधन सीमित हैं। यदि विकसित राष्ट्र इसी तरह प्राविधिक व्यक्तिवादियों का अनुसरण करते रहे, अपूरीय संसाधनों को समाप्त करते रहे और उनका असमान वितरण करते रहे तो वह दिन दूर नहीं जब आर्थिक और पर्यावरणीय विनाश का सामना करना पड़ेगा। हम सदैव भविष्य की, पर्यावरणीय सम्पदा की उधारी पर परजीवियों की तरह जीवित नहीं रह सकते, क्योंकि हम कभी भी पुनः चुकाने में सक्षम नहीं हैं।

प्राविधिक व्यक्तिवाद और अति उपभोग पर आधारित अर्थशास्त्र की आलोचना करते हुए भाुमाकर कहते हैं– ''यह प्रकृति के विरुद्ध हिंसा का कार्य है और जो निश्चित रूप से मनुष्य–मनुष्य के बीच में अपरिहार्य हिंसा का कारण बनेगा।'' प्राविधिक व्यक्तिवाद भाीघ्र ही त्रासदी की ओर ले जाता है। एक ऐसी दुखान्तिका जिसमें व्यक्तिवादी नैतिक तंत्र के अंतर्गत अधिकांश व्यक्ति निरन्तर दूसरे के मूल्य पर अपने कल्याण को खोजते हैं। परिणामतः प्रत्येक व्यक्ति कष्ट भोगता है। उदाहरण के लिए विकसित राष्ट्रों में अधिकांश व्यक्ति उच्च प्रदूषण वाले निजी वाहनों का उपयोग करते हैं ताकि उनकी कार्यक्षमता और आराम बढ़ सके। किन्तु इसके द्वारा होने वाले प्रदूषण और संसाधनों का विनाश सभी लोगों को प्रभावित करता है। त्रासदी यह भी है कि कुछेक लोग ऐसे भी हैं जो सम्पदा को सुरक्षित करते हैं।

यदि विज्ञान और प्रौद्योगिकी प्राविधिक व्यक्तिवादी द्वारा निर्मित समस्याओं का समाधान कर पाते तो सामान्य लोगों के लिए यह त्रासदी नहीं होता। सालाना चालीस हजार से भी अधिक लोग जहरीले कीटनाशकों से नहीं मरते और विश्व के एक तिहाई पर्यावासों में कुपोषण की समस्या नहीं होती। यदि उन्होंने सही नैतिक दिशा निर्देश दिये होते तो आज बहुत सी प्रजातियां बहुत तेजी से लुप्त नहीं हो रही

होती। स्पष्टतः हमें एक ऐसे पर्यावरणीय नीतिशास्त्र की आवश्यकता हैं जो इस पृथ्वी के अपक्षय को रोक सके, प्रदूषण को रोक सके और संसाधनो के विनाश को रोक सके।

3-2 i;koj.kh; lkdY;okn **(Environmental Holism)**

आज बहुत से प्राणी मानवीय गतिविधियों के कारण मारे जा रहे हैं। यह प्रश्न पीड़ादायक है कि जंगली कौन है– पशु या मनुष्य। पर्यावरणीय साकल्यवादी इसी तरह के प्रश्न उठाते हैं। वे लोग निर्दयता और अज्ञानता को चुनौती देते हैं जो प्रकृति को कम करके आंकते है। वे धन लोलुपता और कचरे की आलोचना करते हैं जो कि बहुत से विकसित राष्ट्रों के द्वारा संसाधनों के दुरुपयोग और प्रदूषण को दर्शाते हैं। जीवविज्ञानी Wayna Davis के अनुसार तीसरी दुनियां के 500 लोग पर्यावरण को उतना नुकसान पहुंचाते हैं, जितना नुकसान विकसित देशों के एक व्यक्ति द्वारा पहुंचाया जाता है।

Jeremiah इसे इस रूप में प्रकट करते हैं– अमेरिकन जीवनशैली एक आपराधिक कार्य है।

पर्यावरणीय साकल्यवादी अति उपभोग, नव क्लासिकल आर्थिक मूल्य और प्राविधिक व्यक्तिवादियों की मनुष्य केन्द्रित सोच को नकारते हैं। यह सभी तथ्य हमें मृत्यु की ओर धकेल रहे हैं और पर्यावरण को बार–बार क्षति पहुंचा रहे हैं। कुछ साकल्यवादी तो मानव केन्द्रित नीतिशास्त्र को भी प्रतिबंधित करने की बात करते हैं। उनके अनुसार, सभी प्राणियों– मानव और मानवेतर– को समान आदर और इस जैव समुदाय का समान सदस्य माना जाना चाहिए।

पर्यावरण साकल्यवाद वैज्ञानिक और नीतिशास्त्रीय समस्या से पीड़ित है। वैज्ञानिक समस्या यह है कि किसी प्रजाति विशेष की बढ़ती आबादी से उत्पन्न समस्या से कैसे निपटा जाये उदाहरण के लिए दक्षिणी अमेरिका में बढ़ते चमगादड़ों की समस्या से कैसे निपटा जाए? वैज्ञानिक कहते हैं– इस समस्या से निपटने के लिए हमें मानव केन्द्रित होना ही पड़ेगा। इसी तरह से एक महत्त्वपूर्ण नैतिक समस्या भी है। यद्यपि हम जानते हैं कि मानव केन्द्रित होकर हम प्रकृति को नुकसान पहुंचाते हैं किन्तु कुछ मामले विवादास्पद हैं। उदाहरण के लिए आग विध्वंसात्मक है और पर्यावरणीय तंत्र के लिए आवश्यक भी। यहां पर्यावरणवादी स्वस्थ पर्यावरण की स्थितियों को परिभाषित नहीं कर पाते। यद्यपि यह गलत है कि लालची विचार और स्वार्थी मनुष्य द्वारा प्रकृति को क्षति पहुंचायी जाये। किन्तु यह भी स्पष्ट नहीं है कि मनुष्य कैसे साकल्यवादी पर्यावरण को परिभाषित करे। हम यह नहीं जानते कि पौधों और पर्यावरणीय तंत्र के लिए क्या अच्छा है? प्रकृति भी हमें यह नहीं बताती कि उसके लिए क्या अच्छा है? पर्यावरण सदैव परिवर्तित होता रहता है, उत्पन्न होता रहता है। इसलिए पर्यावरणीय साकल्यवादियों को पर्यावरणीय स्वास्थ्य के लिए स्पष्ट नैतिक निर्देश देने चाहिए कि उनके लिए क्या अच्छा है? समुदाय, सौरमण्डल तथा जीवजगत के लिए भिन्न–भिन्न रूप से भिन्न–भिन्न भुभ हो सकता है और इन सबके भुभ के लिए भिन्न–भिन्न, यहां तक कि विरोधी कार्यों की अपेक्षा है।

3-2-1 i;koj.kh; lkdY;okn dh leL;k,a

पर्यावरणीय साकल्यवाद के साथ एक और नैतिक समस्या है, जिसे रीगन पर्यावरणीय फासीवाद कहते हैं। यदि एक व्यक्ति पर्यावरणीय आचार का पर्यावरणीय कल्याण के अधिकतम सीमा तक पालन करता है तो वह मानव कल्याण के विरुद्ध हो जाता है। क्योंकि पर्यावरणीय कल्याण की दृष्टि से उसे मनुष्य के भले के स्थान पर पर्यावरणीय तन्त्र को प्राथामिकता देनी होती है। इसका तात्पर्य है कि बड़े पैमाने पर मानव मौतें या नागरिक अधिकारों का हनन न्यायोचित हो सकता है और यहां तक भी यदि वे उनकी आवश्यकता भी है। जनसंख्या की समस्या से निपटने के लिए ऐसा समाधान पर्यावरणीय कल्याणको बढ़ावा देते हैं तो बहुत भयावह होते हुए भी न्यायोचित हो सकता है। गैरेट हार्डिन ने Life Boat Ethics के प्रसिद्ध विचार–विमर्श में यह दावा किया है कि विकसित राष्ट्र भीड़ भरे स्पमि ठवंजे की तरह है जो समुद्र में डूब

रहा है। हार्डिन तर्क देते हैं कि स्पमि ठवंजे में बैठे लोगों को जीवन से संघर्ष करते गरीबों की सहायता नहीं करनी चाहिए। क्योंकि इससे Life Boats के उलटने की संभावना है। दूसरे भाब्दों में यदि विकसित राष्ट्र प्रगति करते हैं तो हम पृथ्वी की वहनीय क्षमता से उस पर अधिक लाद देते हैं, और पृथ्वी गृह की लूट में लग जाते हैं। उनकी दृष्टि में पर्यावरणीय कल्याण मानव कल्याण से पहले किया जाना चाहिए किन्तु बहुत से लोग एसी प्राथमिकता को पर्यावरणीय फासीवाद की संज्ञा दे देते हैं।

पर्यावरणीय साकल्यवाद के समक्ष तीसरी समस्या नैतिक दुविधा की है। यदि मनुष्य इस जीव जगत के वास्तव में ही समान सदस्य है तो उनकी कोई विशेष जबावदेही नहीं होनी चाहिए और उन्हें दूसरे प्राणियों और पौधो को मारने से रोकने की बाध्यता भी नहीं है। उनका ऐसा घृणित व्यवहार नैतिक रूप से स्वीकार्य होगा। दूसरी तरफ इस जैविक समाज के यदि वे समान सदस्य नहीं हैं तो वे दूसरे प्राणियों से श्रेष्ठ हैं और ऐसी स्थिति में उनके सामने यह बाध्यता नहीं है कि वे कल्याण के सघर्ष में मनुष्य की अपेक्षा दूसरे प्राणियों के कल्याण की सोचें। किन्तु यह परिणाम पर्यावरणीय साकल्यवाद की नीति से असंगत हैं। अतः या तो यह मनुष्य के घृणित व्यवहार को न्यायोचित ठहराता है या फिर दुविधा की स्थिति में पड़ जाता है।

पर्यावरणीय साकल्यवाद के समक्ष चौथी समस्या यह है कि वह पर्यावरणीय तन्त्र पौधों और पशु–पक्षियों के नैतिक हित व अधिकारों का दावा करता है। यदि मनुष्य इन सभी जीव समुदाय के हितों और अधिकारों का सम्मान करने के लिए बाध्य है तो वहां यह समस्या है कि मनुष्य की बाध्यता इसकी तार्किक सीमा से कई गुना हो जायेगीं कोई भी व्यक्ति सभी पौधों, पशु–पक्षियों और पर्यावरणीय तन्त्र का तार्किक या वास्तव में सम्मान नहीं कर सकता। यदि एक व्यक्ति सभी प्रणियों के अधिकारों सम्मान का प्रयत्न करता है तो उसके लिए भोजन प्राप्त करना या बीमारियों को खत्म करना कठिन हो जायेगा।

3-3 Ik;koj.kh; lekurk vFkok Ik;koj.kh; lenf"V **(Environmental Equity)**

पर्यावरणीय साकल्यवाद के कुछ सही होने के बावजूद यह कमी भी है कि सम्पूर्ण प्रकृति के प्रति सम्मान असम्भव है। इस दृष्टि से पर्यावरणीय साकल्यवाद अपूर्ण है क्योंकि यह स्पष्ट रूप से यह नहीं बताता कि कब मानव हित की गैर मानव हितों से प्राथामिकता होती है। और दूसरा यह मानुष्यों के बीच उत्तरदायित्व देने में भी असफल हो जाता है।हम पहले पहली समस्या पर विचार करें जिसका समाधान अरस्तु के सिद्धान्त से किया जा सकता है। अरस्तु के अनुसार समानता के लिए यह आवश्यक है कि हम समान जीवों के साथ समान व्यवहार करें। मनुष्य और अन्य प्राणी समान नहीं है। जब हम पर्यावरण के बारे में निर्णय करते है तो उन्हें समान प्राथमिकता नहीं दी जा सकती।

कम से कम चार ऐसे सन्दर्भ हैं जिनमें मनुष्य अन्य प्राणियों की तुलना में विशिष्ट है–

- मनुष्य में सुख और दुःख के अनुभव की विशेष योग्यता है।
- उनमें परिष्कृत बौद्धिक योग्यता है, जो उन्हें अच्छे और बुरे को समझने तथा इस विश्व को अच्छा बनाने के लिए योजना और कार्य करने की योग्यता है।
- केवल मनुष्य में ही भले और बुरे के बीच अन्तर करने की नैतिक योग्यता है और अपने कार्यों को नैतिक धरातल पर करने की योग्यता है।
- केवल मनुष्य ही एक दूसरे के साथ अर्न्तनिहित समाजिक सम्बधों में सहभागी बन सकते है।
- ये सम्बध आदान–प्रदान तथा अच्छे जीवन की एक समान्य अवधारणा पर आधारित हैं।

इन चार विशिष्टताओं के कारण पर्यावरणीय समानता मनुष्य को दूसरे प्राणियों की तुलना में जीने के अधिकार को न्यायोचित ठहराती है इस प्राथमिकता के सिद्धान्त के बिना पर्यावरणीय आचार को समस्याओं का सामना करना पड़ेगा ।

एक नैतिक सिद्धान्त जो पर्यावरणीय साकल्यवाद की अपूर्णता और असम्बद्धता को ठीक कर सकता है, इस प्रकार है– ''सदैव सम्पूर्ण प्रकृति (पेड़–पौधे, पशु–पक्षी एवं अन्य) का सम्मान करें सिवाय ऐसे मामलों के जहां प्रबल (strong) मानवाधिकार संकट में हों। यहां प्रबल मानवाधिकार से तात्पर्य ऐसे अधिकारों से हैं जो मानव को सम्मान स्वास्थ्य, योग्यता और जीवित रहने के लिए आवश्यक हैं। उदाहरण के लिए भारीर रक्षा एक प्रबल मानवाधिकार है। दूसरे मानवाधिकार, जैसे– सम्पति की रक्षा आदि कमजोर मानवाधिकार हैं। क्योंकि वे मानवीय गरिमा, स्वास्थ्य, योग्यता और जीवित रहने के लिए आवश्यक नहीं हैं।चूंकि ये मानवाधिकार हैं इसलिए सम्पूर्ण समुदाय की भलाई के लिए उन्हें छोड़ा जा सकता है। उदारणतः निजी सम्पत्ति के अधिकार को समुदाय की उन आवश्यकताओं के लिए छोड़ा जा सकता है जिनकी तृप्ति अत्यावश्यक है।

3-3-1 l'kä ekuokf/kdkj cuke v'kä ekuokf/kdkj

जीवन के लिए सशक्त मानवाधिकार गैर मानवीय हितों से पहले आने चाहिए क्योंकि मानव जाति विशिष्ट है। यद्यपि पर्यावरण का स्वास्थ्य अशक्त मानवाधिकारों से पहले आना चाहिए क्योंकि कमजोर मानवाधिकार पर्यावरणीय स्वास्थ्य और उसकी उत्तरजीविता की तुलना में मानव हितों की कोई सुरक्षा नहीं करते। दूसरे भाब्दों में नैतिक प्राथमिकताएं निम्नानुसार होनी चाहिए–

- सशक्त मानवाधिकारों के लिए हमारा कर्त्तव्य।
- पर्यावरणीय हितों की सुरक्षा के लिए हमारा कर्त्तव्य।
- कमजोर मानवाधिकारों के सम्मान के लिए हमारा कर्त्तव्य।

उपर्युक्त प्राथमिकताओं के बिना बहुगुणित आचार कार्यक्रम नहीं होता और पर्यावरणीय फासीवाद के कारण वह अनैतिक भी हो जाता है। यद्यपि सशक्त मानवाधिकारों के सम्मान के लिए हमारे कर्त्तव्य की प्राथमिकता पर्यावरण को नुकसान न पहुंचाने की प्राथमिकता से ऊपर है। इसलिए लोग सामान्यतया अपने लालच, स्वार्थ और असंवेदनशीलता के कारण प्रकृति को नुकसान पहुंचाने की भूल कर बैठते हैं। उपर्युक्त प्राथमिकता की तभी आवश्यकता है जब सशक्त मानव अधिकार खतरे में हों और स्वयं की सुरक्षा के लिए दूसरों को नुकसान पहुंचाना मजबुरी बन गया। उदाहरण के लिए विकसित राष्ट्रों में सशक्त बड़े मानवाधिकारों की सुरक्षा हेतु बड़े पैमाने पर किसी बीमारी का समूल नाश आवश्यक हो जाता है। मलेरिया के कारण समूल नाश के बिना जीने का सशक्त मानवाधिकार खतरे में पड़ सकता है। यद्यपि ऐसी बीमारियों के समूल नाश के कार्यक्रम पर्यावरण को क्षति पहुंचा सकते हैं तथापि कभी–कभी पर्यावरण को क्षति न पहुंचाने के कर्त्तव्य को अनदेखा करना पड़ता है। किन्तु सशक्त मानवाधिकारों की सुरक्षा के लिए अविवेकपूर्ण ढंग से पर्यावरण को क्षति पहुंचाना कभी भी स्वीकार्य नहीं हो सकता। हमें स्वीकार करना ही होगा कि बहुत से ऐसे मामले हैं जिनमें सशक्त मानवाधिकारों का हनन हुआ है और पर्यावरण को क्षति पहुंचायी गयी है। उदाहरण के लिए कुछ क्षेत्रों में पेड़ों के विनाश के कारण वहां रेगिस्तान पर्यावरण मनुष्य की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम नहीं है। ऐसे मामलों में एक वृन्द की स्थिति पैदा हो जाती है क्योंकि रेगिस्तान के कारण सशक्त मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उन्हें जमीन को और अधिक बंजर बनाना पड़ता है और सशक्त मानवाधिकारों के लिए किए गए इस विनाश के कारण भविष्य के लोगों की आवश्यकताएं पूरी नहीं हो पाएगी। ऐसे मामलों में तीन तरफा (त्रिआयामी) नैतिकता की आवश्यकता है एक वह नैतिकता जो कम से कम पर्यावरणीय क्षति के लिए हमें निर्देशित करती है, दूसरी वह नैतिकता जो सशक्त मानवाधिकारों के कम से कम हनन के लिए निर्देशित करती है और तीसरी वह नैतिकता जो भविष्य के मानव के लिए है।

3-3-2 e/;e ekx% lekurk] LokLF; vkj lkekftd lfonk

यदि पर्यावरणीय नैतिकता में सशक्त मानवाधिकारों को प्राथमिकता दी जाए तो यह जानना महत्त्वपूर्ण है कि यह अधिकार कितने व्यापक हो जाते हैं। हम यह मान लें– सामाजिक संविदा के कारण सभी व्यक्तियों को एक समान अधिकार प्राप्त हैं। यह सामाजिक संविदा सभी राष्ट्रों, सभी पीढ़ियों के लोगों तक परिव्याप्त हैं और इस सामाजिक संविदा को संसाधनों, व्यापार और पर्यावरणीय कल्याण के लिए ब्रह्माण्डीय अंतर्निर्भरता के आधार पर न्यायोचित ठहराया जाता है। पीढ़ियों और राष्ट्रों की सीमाओं से परे मानव अतर्निर्भरता, मानव अधिकारों के सम्मान के लिए नैतिक रूप से बाध्य करती है। क्योंकि हमारे कार्य दूसरों को प्रभावित करते हैं तथा दूसरों के हमें। इसलिए हमारा एक–दूसरे के प्रति इन दायित्वों का तात्पर्य है– सभी मनुष्य एक सामाजिक संविदा के सहभागी है और इसलिए जाति, रंग, राष्ट्र व पीढ़ियों आदि के भेद के बिना सभी को अपनी सुरक्षा का समान अधिकार प्राप्त है और वे समान रूप से पर्यावरण के लिए भी उत्तरदायी हैं।

कोई भी मानव अधिकार और स्वतंत्रता पर्यावरण के प्रति उत्तरदायी हुए बगैर संभव नहीं है। दूसरे भाब्दों में सभी मूलभूत मानव अधिकार की पूर्व मान्यता यही है कि हम पर्यावरण के प्रति उत्तरदायी हैं। पर्यावरण के प्रति उत्तरदायित्व सभी मानवाधिकारों के सम्मान की पूर्व आवश्यक भार्त है। उदाहरण के लिए स्वास्थ्य के अधिकार के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति दूसरों के स्वास्थ्य में हस्तक्षेप न करने के दायित्व का भी निर्वहन करे। पर्यावरण के प्रति उत्तरदायी होने का अर्थ केवल इतना ही नहीं है कि हम जीवित रहेंगे। लेकिन यह भी हमें समग्र जीवन के लिए पर्याप्त भौक्षिक, सांस्कृतिक, मनोरंजन और आध्यात्मिक विकास के पर्याप्त अवसर भी मिलेंगे।

हमारी आवश्यकताओं की प्राथमिकता क्या हो? इसके लिए सामान्यतया अनिवार्यता, आरामदायक और विलासिता वर्गीकरण किया जाता है। प्रथम श्रेणी में भोजन, वस्त्र, आवास व चिकित्सा सम्मिलित है। दूसरी श्रेणी की वस्तुओं को पारिभाषित करना कठिन है किन्तु इसमें शिक्षा और मनोरंजन की चीजों को सम्मिलित किया जाता है जो कि अस्तित्व की आवश्यकता से परे है। तीसरी श्रेणी में सम्मिलित वस्तुएं हमारे कल्याण के लिए आवश्यक नहीं है। यद्यपि उनकी अच्छाई और बुराई उनके प्रयोग और उनके पीछे की मानसिकता पर निर्भर करती है। जैसे विलासिता की चीजों के उपयोग से कई राष्ट्र व व्यक्ति गुमराह हो सकते हैं और वे उन लोगों या राष्ट्रों की कोई मदद नहीं करते जिनकी प्राथमिक आवश्यकताएं भी पूरी नहीं होती। इसलिए वैश्विक सामाजिक संविदा में कम से कम चार चीजें होगी जिसमें पर्यावरण, आचार, समान मानवाधिकारों का सम्मान करेगा–

- व्यक्तियों के बीच
- पीढ़ियों के बीच
- राष्ट्रों के बीच
- राष्ट्रों में
- राष्ट्रों के बीच।

इन पर आधारित सम्बन्ध क्रमशः निम्न होंगे–

- अन्तर्वैयक्तिक समानता
- अन्तर्पीढ़ीय समानता
- क्षेत्रीय समानता
- अन्तर्राष्ट्रीय समानता

3-3-2-1 vUrihh<h; lekurk

इस सिद्धान्त के अनुसार भविष्य की पीढ़ियों के सदस्यों के सम्मान की भी आवश्यकता है जिससे उन्हें भी जीने और इस पृथ्वी पर आनन्द प्राप्ति का अवसर हमारे समान ही मिल सके। अंतर्पीढ़िय सामाजिक संविदा के अनुसार, जिस प्रकार हम अपने साथ चाहते हैं, उसी रूप में हम भविष्य में दूसरों के प्रति ऋणी हैं। क्योंकि अतीत में हम दूसरों से फायदा ले चुके हैं, इसलिए यह हमारा नैतिक दायित्व है कि हम भविष्य में दूसरों को भी फायदा दें। यदि हम भविष्य के लोगों के प्रति हमारी बाध्यता की बात को भूला भी दें तो भी हम उनके इस अधिकार का सम्मान करते हुए हमें इतना नुकसान नहीं पहुंचाना चाहिए कि भविष्य में उनकी महत्त्वपूर्ण आवश्यकताएं खाली ही रह जायें।

3-3-2-2 vrjk"Vªh; vkj {k=h; lekurk

हमें पर्यावरणीय संकटों को दूसरी पीढ़ियों पर थोपने से न केवल बचना चाहिए अपितु पर्यावरणीय संकटों का वितरण भी समान रूप से करना चाहिए। दूसरे भाब्दों में सरकारों को अपने नागरिकों को पर्यावरणीय खतरों से समान रूप से सुरक्षा के लिए गारण्टी देनी चाहिए, भले ही वे किसी भी भौगोलिक सीमा में रहते हों। विश्व के अधिकांश राष्ट्र पर्यावरणीय संकट का समान रूप से बंटवारा नहीं करते। इसके अलावा वर्तमान लोगों और भविष्य की पीढ़ियों के अधिकारों के सम्मान के लिए भी संघर्ष है। हमारे वंशजों के अधिकारों का संरक्षण पृथ्वी की अच्छाई के लिए अनिवार्य भार्त तो है ही किन्तु वर्तमान लोगों की भलाई के लिए भी यह सुरक्षा कवच है। जब एक उत्पादन व्यवस्था में परिस्थितिकीय तंत्र से कुछ भी लिया जाता है तो वह भविष्य के प्रति हमारा कर्ज है। अतएव भावी पीढ़ियों के अधिकारो की सुरक्षा करना वर्तमान पीढ़ी की सुरक्षा का एक प्रभावक तरीका है।

वर्तमान में बहुत से लोग निगम और राष्ट्र अंतर्राष्ट्रीय समानता के सिद्धान्त की अवहेलना कर रहे हैं और सामाजिक संविदा को नकार रहे हैं। उदाहरण के लिए बहुत से विकसित राष्ट्र अफ्रीका, एशिया, कैरेबियन और दक्षिणी अमेरिकन राष्ट्रों को उनके विशैले रासायनिक अपशिष्टों को लेने के लिए लाखों डॉलर की पेशकश कर रहे हैं। सरकारी नीतियों और अत्यधिक लागत के कारण अधिकांश पाश्चात्य राष्ट्रों में इन अपशिष्टों के निस्तारण को रोका जा रहा है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुमान के अनुसार 49,000 लोग प्रतिवर्ष विकासशील राष्ट्रों में ऐसे विशैले पदार्थों से मर रहे हैं। यह जहर पुनः विकसित राष्ट्रों से आता है जहां उन पर प्रतिबंध लगा है। यद्यपि सभी लोग सामाजिक संविदा के सहभागी है और सभी को स्वतंत्रता व सुरक्षा का अधिकार है। यहां यह नैतिक प्रश्न उपस्थित होता है कि जब सभी लोगों के लिए एक स्वच्छ पर्यावरण और जीने का अधिकार प्राप्त है तो ऐसे मामलों में जिन राष्ट्रों के लोग मारे जा रहे हैं उन लोगों को स्वच्छ पर्यावरण व जीने का अधिकार समान रूप से कहां प्राप्त हुआ। तीसरे विश्व के देश सामाजिक प्रगति के नाम पर यह सब करने को विवश हैं। यदि एक अंतर्राष्ट्रीय समानता के सिद्धान्त का अनुसरण करता है तो उनका कहना है कि वहां आर्थिक और सामाजिक विकास बहुत पीछे रह जाएगा। वस्तुतः समान अवाप्ति के अधिकार के लिए तर्क अंतर्निर्भरता पर आधारित है जो सामाजिक संविदा और वैश्विक मानवाधिकारों को स्थापित करती है। इसलिए विकसित राष्ट्रों को विकासशील राष्ट्रों के प्रति जो लाभ वे प्राप्त कर रहे हैं उनके लिए क्षतिपूर्ति करनी चाहिए। इसी तरह विकसित राष्ट्रों का यह भी दायित्व है कि वे दूसरे राष्ट्रों को जीने योग्य पर्यावरण की प्राप्ति में सहयोग करे। जो एक राष्ट्र के लिए नुकसानदेह है वह सभी के लिए नुकसानदेह है। हम सभी पृथ्वी रूपी एक ही नौका पर सवार है। यदि हम अच्छे बनने की इच्छा करते हैं तो हमें सबसे पहले प्रज्ञावान होना होगा।

4- thou d; ifr lEeku

अल्बर्ट स्वेजर एक ऐसे जर्मन दार्शनिक हो जिन्होंने पाश्चात्य दर्शन में नैतिकता के क्षेत्र में एक क्रान्तिकारी विचार प्रस्तुत किया। स्वेजर से पूर्व दार्शनिकों की यह मान्यता थी कि नैतिकता का क्षेत्र केवल मानव है। इसलिए व्यवहारों के औचित्य और अनौचित्य का प्रश्न केवल मानव जगत् से ही उठता है। मानवेतर प्राणियों के प्रति व्यवहार का नैतिकता से कोई सम्बन्ध नहीं है। अल्बर्ट स्वेजर ने भारतीय दर्शन और विशेषकर जैन दर्शन से प्रभावित होकर नैतिकता का विस्तार सम्पूर्ण प्राणियों के लिए किया। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि नैतिक और अनैतिक व्यवहार का प्रश्न केवल मानव जगत् तक ही सीमित नहीं है बल्कि इसका सम्बन्ध अन्य प्राणियों के प्रति मानव द्वारा किये गये व्यवहारों से भी है। स्वेजर ने नैतिकता के क्षेत्र में जिस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया, उसे हम जीवन के प्रति सम्मान (Reverence for life) के नाम से जानते हो। अल्बर्ट स्वेजर ने डेकार्ट के इस सिद्धान्त का खण्डन किया– ''मो सोचता हूं इसलिए मो हूं''। स्वेजर ने कहा–''मो जीवन हूं, जिसे मो उन प्राणियों के मध्य रहकर जीना चाहता हूं जो जीना चाहते हो।'' अर्थात् मनुष्य जीना चाहता है और वह अकेले नहीं जीना चाहता बल्कि उन सभी जीवों के बीच जीना चाहता है जो मनुष्य की भांति ही जीना चाहते हो। ''मो जीना चाहता हूं'' कथन से अल्बर्ट स्वेजर का यह अभिप्राय है कि मनुष्य में रहस्यात्मक उन्नति की चाहत है, जिसे हम एक शब्द में सुख (Pleasure) कहते हो।

भगवान् महावीर ने कहा–कोई भी मनुष्य दुःख नहीं चाहता। जिस प्रकार तुम सुख की चाहत रखते हो, उसी प्रकार अन्य जीव भी सुख की चाहत रखते हो दुःख की नहीं। स्वेजर के अनुसार वही मनुष्य नैतिक है, जो सभी जीवों की हर प्रकार से सहायता करने का दायित्व बोध अपने ऊपर लेता है। जहां तक उसमें क्षमता हो, वह दूसरे प्राणियों की सहायता करे तथा किसी भी प्राणी को कष्ट न पहुंचाये। दूसरे शब्दों में उनका कहना है कि जीव चाहे छोटा हो या बड़ा सबका जीवन पवित्र है (Life is sacred)। इससे स्पष्ट है कि अल्बर्ट स्वेजर निषेधात्मक और भावात्मक दोनों रूप से अहिंसा का प्रतिपादन करते हो। निषेधात्मक रूप से अहिंसा के अन्तर्गत सभी प्राणियों की हिंसा (हत्या एवं दुःख देना) का निषेध करते हो और भावात्मक रूप से सभी प्राणियों के उन्नत जीवन जीने में सहायता करने का समर्थन करते हो।प्रश्न है कि अल्बर्ट स्वेजर व्यक्तिगत जीवन से सार्वभौम जीवन की सुरक्षा का सिद्धान्त क्यों प्रस्तुत करते हो। वस्तुतः तो वे सभी जीवन की अखण्डता में विश्वास करते हो। वे मानते हो कि सभी प्राणी एक–दूसरे के लिए उपयोगी हो, इसलिए उनके प्रति प्रेम और उनके जीवन का सम्मान हमारा धर्म हो जाता है। केवल मनुष्य ही एक–दूसरे के लिए मूल्यवान नहीं है, पशु–पक्षी, छोटे जीव भी मनुष्य के लिए मूल्यवान हो। उदाहरणार्थ हम मानव कल्याण के लिए कुछ जीवों पर प्रयोगशाला में प्रयोग करते हो, उनको यातना देते हो, उनकी हत्या कर उनकी चीरफाड़ करते हो और उसके आधार पर मानव के लिए हितकर सिद्धान्त की स्थापना करते हो अथवा अमूल्य औषधि का निर्माण करते हो। इससे यह सिद्ध होता है कि हर जीव मनुष्य के लिए उपयोगी है। उन्हें उपयोगी जानकर हमें उनकी सुरक्षा करनी चाहिए। उन्हें कष्ट नहीं देना चाहिए। जानबूझकर उनका शोषण नहीं करना चाहिए और यदि अपरिहार्य कारणवश हम उनकी हिंसा करते हो तो इसके लिए पश्चाताप तो करना ही चाहिये, साथ ही साथ इस कर्म को दूर करने के लिए भावात्मक रूप से भी कदम उठाना चाहिये।

अहिंसा की नीति का आधार बाहरी जीव नहीं बल्कि अन्तरात्मा है। इसलिए उनकी दृष्टि में दया जो विशेष रूप से दूसरों के प्रति की जाती है, नैतिकता की दृष्टि से बहुत ही संकीर्ण है। नैतिकता के अंतर्गत अपनी हर परिस्थितियों में सुखमय जीवन की आकांक्षा रहती है तथा दूसरों के सुखमय जीवन में सहायक बनकर अपनी आत्मा को पूर्ण करने की चेतना होती है।अहिंसा सभी प्राणियों के प्रति प्रेम है। प्रेम का अर्थ सुख–दुःख एवं प्रत्येक प्रयत्नों में सभी के प्रति भाईचारेपन का अनुभव करना है। हर जीवन के प्रति सम्मान हमारे जीवन की मूल प्रेरणा है, दिशा निर्देशक शक्ति है तथा सहानुभूति, प्रेम तथा अन्य सभी मूल्यवान उत्साहों का आधार है। परन्तु दुःख की बात है कि यह संसार एक ऐसा दुःखान्त नाटक है कि जिसमें हर

व्यक्ति जीवन के विरुद्ध ही जीना चाहता है, एक–दूसरे को नष्ट कर अपना अस्तित्व कायम रखना चाहता है। तभी जीवन के प्रति सम्मान का सिद्धान्त इससे भिन्न परिदृश्य की कल्पना करता है। इस व्यवस्था में अपनी जिजीविषा के अन्तर्गत दूसरे की जिजीविषा का ज्ञान भी सम्मिलित है। इसमें सम्पूर्ण जीवन को सर्वभौम बनाने की दृष्टि से एकता स्थापित करने की आकांक्षा रहती है। इसलिए जीवों के प्रति सम्मान के नीतिशास्त्र का अर्थ है– अपने जीवन का सम्मान करना और अपने जीवन से इतर जीवन का सम्मान करना।अल्बर्ट स्वेजर कहते हो कि वही व्यक्ति अपनी आंतरिक स्वतंत्रता का अनुभव करता है जो दूसरे के जीवन की स्वतंत्रता के संरक्षण में सहायक है। यहां स्वेजर की स्थिति जैन दर्शन की उन भावनाओं से है, जहां कहा गया है–अन्तःकरण की विशुद्धता और बाह्य रूप से अन्य प्राणियों के प्रति दया दोनों अहिंसा व्रत के पालन के लिए आवश्यक है।

सामान्यतः हम क्षमा और सहिष्णुता को भी अहिंसा के अन्तर्गत लेते हो, परन्तु प्रश्न है कि हमें क्षमा क्यों करनी चाहिये? स्वेजर का मानना है कि हम दूसरों को क्षमा नहीं करते, अपने आपको क्षमा करते हो। उनका कहना है अच्छाइयां और बुराइयां सब में हो। सामान्यतः कोई हम पर गुस्सा करता है, गाली देता है, मारता है या अन्य प्रकार से अहित करता है, तो हम इसका बदला लेना चाहते हो। स्वेजर कहते हो कि उससे बदला लेने से पूर्व मुझे सोचना होगा कि मो किसी को मारता हूं या नहीं। और यदि मुझमें किसी न किसी परिमाण में ये दोष है तो इसका अर्थ है–दूसरे के द्वारा किये अहितकर व्यवहार को क्षमा करना, अपने आपके द्वारा किये गये अहितकर व्यवहार को क्षमा करना है। नीतिशास्त्र में दो प्रकार की युक्तियां काम में लाई जाती हो–पर–समर्थक और स्व–समर्थक। अल्बर्ट स्वेजर स्व–समर्थक युक्ति पर विश्वास करते हो और इस प्रकार की युक्ति श्रेष्ठ मानी जाती है। उनका कहना है–किसी भी व्यवहार पर दूसरों के आधार पर निर्णय नहीं किया जा सकता है। वे कहते हो–दूसरे के प्रति दया करके मो भद्र, शांत और क्षमाशील नहीं हूं बल्कि उस व्यवहार के कारण हूं, जिसके द्वारा मो गहरी आत्मानुभूति की सत्यता को प्रमाणित करता हूं। अल्बर्ट स्वेजर नैतिकता के संबंध में और विशेषकर जीवन के प्रति सम्मान के सिद्धान्त में सापेक्ष नैतिकता को नहीं मानते, उनके अनुसार शुभकर्म हर अवस्था में दूसरे के जीवन की प्रगति को देखता है। किसी भी परिस्थिति में अन्य प्राणी को कष्ट देना या हत्या करना उनकी दृष्टि में पाप है। यह ठीक है कि अपने अस्तित्व की रक्षा करने के लिए अनिवार्यतावश व्यक्ति को दूसरे जीवों की हत्या करनी पड़ती है, परन्तु यह उसकी अनिवार्यता है, नैतिकता नहीं। नैतिकता का तकाजा है–सोच समझकर किसी जीव की हत्या न करें या दुःख न पहुंचायें। जिस प्रकार जैन दर्शन में प्रमाद को हिंसा का मूल कारण माना गया है, अल्बर्ट स्वेजर भी असावधानी (प्रमाद) को ही हिंसा का मूल कारण मानते हो। इसलिए वे दूसरे जीवों के प्रति संवेदनशील होने की शिक्षा देते हैं और यथासंभव उनके कल्याण का दायित्व व्यक्ति के स्वयं के निर्णय पर छोड़ देते हैं। इसी दायित्व बोध में अहिंसा का निवास है।अतएव अल्बर्ट स्वेजर के दर्शन में अहिंसा का आधार सभी जीवों की समता है, जीवन की अखण्डता है, जीवों की परस्पर पूरकता है और अहिंसा का सार संयम में निहित है।

5- ikfjLFkfrdh n'kZu dk /keZ

पारिस्थितिकी दर्शन के धर्म को समझने के लिए पारिस्थितिकी चेतना की अवधारणा को जानना समीचीन होगा।

5-1 ikfjLFkfrd psruk

पारिस्थितिक चेतना के सभी रूप इतिहास में ही गुंफित है। इतिहास में ये रूप एक निश्चित स्थान या समय पर दृश्टिगोचर होते हें और कुछ समय बाद पारिस्थितिक चेतना का बोध कराने वाले ये रूप अन्य में परिवर्तित हो जाते हैं। आज हम इतिहास में वर्णित उसी पारिस्थितिक चेतना को पुनः जागृत करने की दिशा में है। इसी सन्दर्भ में हम विश्व के विभिन्न धर्मों वश में भी परिवर्तन देख रहे हैं। धर्मों के यह परिवर्तन उनमें निहित आध्यात्मिक उपदेशों का आज के सन्दर्भ में पुनर्व्याख्या के रूप में स्पश्ट होता है। 1980 के

दशक में जव विश्व में हिन्दू, बुद्ध, इस्लाम, यहूदी व ईसाई धर्म का प्रतिनिधित्व था तब भी इन धर्मों में पारिस्थितिक चेतना पर बल दिया गया था। पारिस्थितिक चेतना को आगे बढाने में विभिन्न पारिस्थितिक आंदोलनों तथा मानवीय मनोविज्ञान की विभिन्न भााखाओं का योगदान रहा है। इस सन्दर्भ में वे सभी मशीनीकरण के युग के विरोधी रहे हैं।

पारिस्थितिक आंदोलनों में कुछ मात्रा में धार्मिकता का अंश भी विद्यमान रहा है। इन आंदोलनों में स्वतंत्रता को मानव जीवन के उद्देश्य के रूप में वर्णित किया है। इस स्वतंत्रता का तापर्य यांत्रिकी व नियति के बंधनों से मुक्त होना है। इस स्वतंत्रता को पाने का प्रथम चरण है। भारतीय परम्परा में भी यह सीख मिलती है कि मनुश्य का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष (मुक्ति) ही है। आज के सन्दर्भ में हमें यह देखना है हमारी पर्यावरण के प्रति चेतना के मूल तत्व क्या है? पर्यावरण की चेतना का किस तरह से तकनीकी चेतना से निम्नतः संबंधित किया जा सकता है–

ikfjfLFkfrd p:ruk	rduhdh p:ruk
धार्मिक (Wholistic)	परमाणविक (Atomistic)
गुणात्मक (Qualitative)	मात्रात्मक (Quantitative)
आध्यात्मिक (Spiritual)	सांसारिक लौकिक (Secular)
सम्मान भाव (Reverential)	तटस्थता (Object)
विकासमूलक (Evolutionary)	यांत्रिक (Mechanistic)
सहभागिता (Participatory)	असंगतता (Alienating)

उपरोक्त विशेशताओं के सन्दर्भ में हमें यह जानना है कि इनकी हमारे जीवन में क्या उपयोगिता है? इस बह्माण्ड में एक स्वस्थ और सम्पूर्ण व्यक्ति वहीं है जो धार्मिक और गुणात्मक दृश्टि वाला है व्यक्ति जो उपभोग की घिसी–पीटी बात से परे होकर आगे की और देखता है वह अध्यात्म के मार्ग पर होता है।

5-2 vknj dk Hkko

एक व्यक्ति जो वास्तव में दूसरों का सम्मान करता है और इस ब्रह्माण्ड की विविधता की वास्तव में प्रशंसा करता है, वह इस जगत की प्रत्येक रचना के लिए सम्मान के भाव रखता है। अतः सम्मान के भाव का तात्पर्य इस ब्रह्माण्ड को गहराई से देखने और समझने से है। सम्मान या आदर की समझ तथा दृश्टिकोण–पर्यावरण चेतना का बोध कराने वाले सार तत्व नहीं है अपितु ये प्रचीन परम्पराओं व धर्मों में पहले से ही विद्यमान है। यह तो माना जाता है कि मनुश्य को मनुश्य के साथ Wholistic सम्मानीय व आध्यात्मिक व्यवहार किया जाना चाहिए। किन्तु इस भौतिक जगत के प्रति आदर और सम्मान के भाव रखने का क्या औचित्य है? डेविड बॉम ने अपनी पुस्तक "Wholeness and duplicate order' में यह माना है कि इस ब्रह्माण्ड भी अपनी प्रकृति से Wholistic है, चूंकि हम सभी की उजप्ति इसी एक आग के गोले से हुई है। वेदों का कथन इस संदर्भ में प्रासंगिक है, जिसमें कहा गया है– इसावस्यम इदम सर्वम यत्किंच जगतत्यम जगत अर्थात् इस जगत में जो कुछ भी, जहां कही भी अस्तित्व में है उन सबका संचालन एक ही भाक्ति व सत्ता के द्वारा होता है। यह अनुभव किया जाने लगा है कि इस जगत में जिसका भी अस्तित्व है, सभी में समान ऊर्जा है, समान भाक्ति है चाहे वह अरितत्व वस्तु के रूप लहर के रूप में इसी तरह से इस ब्रह्माण्ड की संरचना का भी बहुत महत्व है। असकी संरचना में विभिन्न भागों के बीच एक अद्भुत संतुलन है। वैज्ञानिक खोजों और अध्ययनों से यह बात सामने आयी है कि यदि ब्रह्मण्ड की विद्यमान संरचना में अंश मात्र भी परिवर्तन होता तो जीवन की उत्पति संभव नहीं होती। यदि ब्रह्माण्ड की रचना करने वाले मूलभूत तत्वों में यदि 101 का भी परिवर्तन किया जाए तो जीवन की उत्पति करने वाले तत्व इस ब्रह्माण्ड में जीवन

की उत्पति करने में असमर्थ होते। फ्रीमेन डायसन ने लिखा है– जब हम ब्रह्माण्ड में देखते हैं तो हमें यह प्रतीत होता है कि हमारे लाभ के लिए खगोल विज्ञान व भौतिक विज्ञान के कई संयुक्त कार्य होते हैं। यह इस प्रकार प्रतीत होता है कि जैसे ब्रह्माण्ड को यह आभास हो जाता है कि हमारे जीवन की उत्पति होने वाली है। यह भी कहा जा सकता हे कि ब्रह्माण्ड का कार्य बुद्धिमत्तापूर्ण जीवन की उत्पति करना है। यह दृश्टि हमें मानवशास्त्र के उस सिद्धान्त की ओर ले जाती है कि ब्रह्माण्ड, मनुश्य इस सौन्दर्य (Glory) का हिस्सा है। हमें हमारे उस विशेश स्थान को कभी नकारना नहीं चाहिए और न ही इस स्थान की उपेक्षा करनी चाहिए। पर्यावरण चेतना की दृश्टि से मानवशास्त्र का यह सिद्धान्त ब्रम्हाण्ड की समग्रता और अखण्डता की पुश्ठि करता है साथ ही इस वात को विश्वास दिलाता है कि हम इस विश्व–व्यवस्था को वैधानिक निवासी है। दूसरी तरह, ब्रम्हाण्ड हमारा घर है– यह सिद्धान्त भी बताता है कि हम इसके प्रति उत्तरदायी हैं।

यद्यपि ब्रह्मण्ड अपनी प्रकृति से समग्र है किन्तु इसकी आध्यात्मिकता और समादरणीय (Reverential) को कैसे प्रमाणित किया जा सकता है? इसके प्रमाण प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिश्क में ही निहित है। समादरणीय (Reverential) ब्रम्हाण्ड के प्रति हमारा भौतिक दृश्टिकोण नहीं अपितु मस्तिश्किय दृश्टिकोण है। यदि हम ब्रह्माण्ड को सम्मान (Revered) के भाव से देखने हैं तों हम सम्मानीय ब्रम्हाण्ड के निवासी है यदि हम ब्रम्हाण्ड को यांत्रिक स्वरूप में देखते है तो हम यांत्रिक ब्रम्हाण्ड के निवासी है। ब्रम्हाण्ड का यह यांत्रिक स्वरूप विज्ञान व तकनीक के द्वारा प्रमाणित किया जा सकता है किन्तु यदि हम इस ब्रम्हाण्ड को समादरणीय (Reverential) ब्रम्हाण्ड मे रूप में प्रमाणित करना चाहते है तो हमें समादरणी; (Reverential) विज्ञान और समादरणीय ;त्मअमतमदजपंसद्ध तकनीक पर और अधिक काम करना होगा।

5-2-1 lekn j.kh; **(Reverential)** rduhd

भारतीय परम्परा में वर्णित योग की विभिन्न विधियां समादरणीय (Reverential) तकनीक को प्रतिनिधित्व करती है। चंकि हम सामान्यतः तकनीक का अर्थ उन भौतिक उपकरणों से लेते हैं जो हमें इस भौतिक जगत से सम्बद्ध करते हैं अतः तकनीक के इस अर्थ को संभवत हम ता स्वीकार करो ऐसी तकनीकें या उपकरण जो हमें आध्यात्मिक स्तर पर ब्रम्हाण्ड से संबंधित करती हैं, वह भी तकनीक का एक प्रकार है। योग की विभिन्न पद्धतियां ऐसी ही तकनीक है जो आत्मा से हमारा सम्पर्क स्थापित करती है तथा कम उपभोक्तावादी बनाती है। प्रार्थना भी एक तकनीक है जो ब्रम्हाण्ड के साथ हमारा अर्न्तसंबंध स्थापित करती है। योग की तकनीक के लिए किसी प्रकार के उपकरण या मशीन की जरूरत नहीं होती अपित Reverential मस्तिश्क की आवश्यकता होती है। सहज सिद्धी योग के प्रचेता स्वामी सहज सदगुरु ने लिखा है– योग ऐसी तकनीक है जिससे लोगों के जीवन को बदला जा सकता है। योग का तात्पर्य केवल आसनों से नहीं है अपितु यह उससे बहुत आगे की तकनीक है। योग विज्ञान और दर्शन का समन्वय है। यह केवल तात्विक और आध्यात्मिक मूल्यों की ही सीख नहीं देता अपितु मानव व्यवहार। प्रकृति को पूर्णतः परिवर्तित करने के उपकरण भी उपलब्ध कराता है।

आधुनिक युग में नैतिकता और मूल्यों की दृश्टि से मनुश्य विकास में पिछड़ गया है। उदाहरण ऐसी शिक्षा पद्धति आज भी विकसित नहीं है पायी है मनुश्य के चरित्र का निर्माण एवं विकास हो सके। यदि हम उज्ज्वल भविश्य का निर्माण करना चाहते है। तो हमें बच्चों को सी दिशा में शिक्षित करना होगा। शिक्षा व्यवस्था में सम्मिलित विभिन्न विशयों में हमें Reverential Studies के विशय को अनिवार्यतः सम्मिलित करना चाहिए। हमें उच्च मूल्यों के सम्मान की शिक्षा अवश्य रूप से बच्चों को देनी चाहिए। इसी से हम उस प्रगतिशील और भाांतिपूर्ण विश्व की रचना भविश्य में कर सकेगें जिसकी कल्पना हम आज करते हैं।

Reverential Studies के एक भाग के रूप में ब्रम्हाण्ड विज्ञान का अध्ययन भी अपेक्षित है। ब्रम्हाण्ड विज्ञान में ब्रम्हाण्ड से संबंधित पूर्वानुमान लगाए जाते हैं। ब्रम्हाण्ड विज्ञान जिन तत्वों का ब्रम्हाण्ड में होने का

अनुमान लगाते हैं वे उनके अस्तित्व को प्रमाणित नहीं करते हैं। ये तत्त्व गुण ब्रम्हाण्ड की संरचना में ही विद्यमान रहते हैं। ब्रम्हाण्ड में जब तक हम किसी घटना या तत्व का अनुमान नहीं लगाते तब तक वह स्वयमेव घटित नहीं होती। यदि हम यह धारणा बना ले कि यह ब्रम्हाण्ड प्रकृति से केवल भौतिक ही है तो हम इसके समादरणीय (Reverential) गुण को कभी नहीं पहचान पायेगें। ब्रम्हाण्ड विज्ञान अनुमानों का ही एक खेल है। ये अनुमान प्रमाणित नहीं होते हैं। ये अनुमान बन जाते हैं और इन पर कार्य प्रारम्भ हो जाता है। अनुमानों की यह प्रक्रिया, पूर्व–वैज्ञानिक प्रक्रिया है– ऐतिहासिक और ज्ञान मीमांसा दोनों ही दृश्टि से।

पश्चिम का विज्ञान ब्रम्हाण्ड के एक ही स्वरूप का अनुमान लगाता है और वह है– यांत्रिक ब्रम्हाण्ड विज्ञान। भारतीय परम्परा में तीन तरह के विज्ञान की चर्चा होती है। प्रथम भौतिक विज्ञान जिसमें मानव कल्यापण लाभ के लिए प्रकृति व इसकी विभिन्न भाक्तियों को अघ्ययन होता है। दूसरा उच्च विज्ञान जिसमें अन्य मनुश्यों के साथ प्रेम, करुणा, समझ आदि का व्यवहार सम्मिलित होता है। तीसरा अध्यात्म का विज्ञान है जिसमें स्वयं के दैविक स्वरूप से व्यवहार करना होता है। भारतीय चेतना इन प्रकार के विज्ञानों से प्रारंभ से ही निर्देशित होती रही है। इन विज्ञान के रूपों को जब ब्रम्हाण्ड विज्ञान की अवधारणा से संबंधित करते है तो समपूर्ण ब्रम्हाण्ड एक परिवार की तरह प्रतीत होता है। यदि हम अयांत्रिक ब्रम्हाण्ड विज्ञान की रचना में संलग्न हो जाते हैं तब हमें विज्ञान के निर्णय के लिए चिंतित नहीं होना चाहिए तब हमें सिर्फ इस बात का अवलोकन करना चाहिए ि कइस प्रकृति में तथा विज्ञान की भाशा में कहीं में तथा विज्ञान की भाशा में कहीं भी ऐसा कुछ नहीं है जो हमें ब्रम्हाण्ड को Reverentially देखने से रोके।

यदि हम ब्रम्हाण्ड के प्रति समादरणीय (Reverential) दृश्टिकोण विकसित करते हैं तथा ऐसी सोच, बोध एवं व्यवहार का निर्माण करते हैं जो हमें सान्दर्य में विकास करना सिखाए तो हम समादरणीय (Reverential) ब्रम्हाण्ड के निवासी बन सकेगें तब यह ब्रम्हाण्ड समादरणीय (Reverential) प्रतीत होगा क्योंकि हमने उसे ऐसा बना दिया होगा तथा ब्रम्हाण्ड से Reverentially अर्न्तक्रिया की क्षमता भी हम में आ जाएगी। यही पर्यावरण चेतना है। एक दिव्य मस्तिश्क के लिए ब्रम्हाण्ड भी दैविक स्वरूप का है तथा एक नासमझ मस्तिश्क के लिए ब्रम्हाण्ड भी नासमझ है। से हमारे प्रदूशित मस्तिश्क ही हैं जिसने पर्यावरण को दूशित किया है इसमें तकनीक की कोई भूमिका नहीं है। वह मस्तिश्क ही है जो विश्व व्यवस्था पर भाासन करता है। इस ब्रम्हाण्ड में हम जो भी निर्देश पाते है वह किसी न किसी रूप में हमारे मस्तिश्क में ही उत्पन्न होता है। ब्रम्हाण्ड में जो भी गुण विशेशताएॅ हम देखते है वे हमारे मस्तिश्क से ही उद्भूत् होती हैं। वास्तव में यह ब्रम्हाण्ड ता ही छोटा है, ना बडा, ना सुन्दर है ना ही भद्दा। यह सब कुछ हमारे मस्तिश्क व मन के ऊपर की निर्भरता है।

ऐसा मस्तिश्क हमें हमारे ऋशियों, पैगम्बरों यथा– महर्शि व्यास, भगवान महावीर, बुद्ध, जीसस, मोहम्मद साहब, गुरु नानक आदि में परिलक्षित होता है जिन्होने हमें समादरणीय (Reverential) विश्व का मार्ग दिखाया। इस तरह के मस्तिश्क अलग–अलग रूपों में प्रकट हुए और उपनिशद बाइविल, कुरान, आगम के रूप में लिपिबद्ध हुए किन्तु उन सबका मूल संदेश करुणा, प्रेम, न्याय, अहिंसा और समानता का ही यही विचार ब्रम्हाण्ड को दैवीय रूप प्रदान करते हैं।डॉ. स्कोलीमौस्की ने लिखा– ब्रम्हाण्ड के सभी निर्देशों यहॉ तक की दैवीय मस्तिश्क का गुण है, ब्रम्हाण्ड का नहीं। जब हम ब्रम्हाण्ड से धार्मिक दृश्टिकोण से सम्पर्क स्थापित करते हैं तव हम इस ब्रम्हाण्ड को भी हम धार्मिक रूप में ही पाते हैं। यदि हम मान लेते हैं कि यह ब्रम्हाण्ड एक विस्मयकारी मुद्दा है तब इसे समझने का केवल एक ही रास्ता है– भौतिक विज्ञान तब हमें ब्रम्हाण्ड में किसी भी प्रकार की आध्यात्मिकता दृश्टिगौचर नहीं होगी क्योंकि हमने हमारे मस्तिश्क को वैसा निर्देश दिया ही नहीं। ठीक दसके विपरीत यदि हम यह मान लें कि हमारा ब्रम्हाण्ड आध्यात्म से परिपूर्ण हैं और हम इसक आध्यात्मिक जीव, साथ ही हम इस धारणा पर कार्य करना पांरम्भ कर देतें हैं तो हमें पर्याप्तः

यह प्रमाण मिल जाता है कि यह ब्रम्हाण्ड जैविक व भौतिक से पेर पूर्णतः आध्यात्मिक है जैसा कि पूर्व में हमारे ऋशियों व पैगम्बरो ने अनुभव किया है।

पर्यावरणीय चेतना के चार रूप है–समादरणीय (Reverential) हितकारी, आध्यात्मिक और विकासवादी वर्णित रूपों में से तीन की चर्चा की जा चुकी है तथा यहॉ पर्यावरणीय चेतना के विकासवादी स्वरूप की चर्चा की जा रही है। हमारे ब्रम्हाण्ड का सौन्दर्य, विकास के सौन्दर्य से अर्न्तसंबंधित है। विकास की यह प्रक्रिया उन रचनात्मक भाक्तियों के बीच होती है जो अन्य जीवन की उत्पत्ति के लिए परस्पर सहयोग करती है। फ्रेंच दार्शनिक हेनरी बर्गसन ने इसे रचनात्मक विकास कहा है पर्यावरणीय चेतना के लिए रचनात्मक विकास की आवश्यकता तथा हमारे भविश्य के लिए विकास की सही व्याख्या की आवश्यकता के सन्दर्भ में डा. स्कोलीमोस्की ने तीन तर्फ दिए हैं– प्रथम यह कि विकास का संवेदनशील अध्ययन हमें यह जानकारी देता है कि यह ब्रम्हाण्ड सार रूपमें अपरिचित अपूर्ण है। इससे यह स्पश्ट होता है कि जब तक ब्रम्हाण्ड के सभी तत्वों का विकास नहीं होता तब तक हम भी अविकसित हैं।

5.3 ikfjfLFkfrdh /ke **(Ecological Dharma)**

दर्शन का विकास अनेक चरणों में हुआ है। एक समय में दर्शन उस स्तर पर पहुंच जाता है जो हमें स्वर्ग का मार्ग दिखाता है। उस समय दर्शन ईश्वर की खोज का धर्माविज्ञान बन जाता है। दर्शन ही भाब्द Philo-Sophia भाब्दों के संयोग से बना है जिसका तात्पर्य बुद्धि से प्रेम है। बीसवीं भाताब्दी में जहां दर्शन को विज्ञान, गणित और भौतिकी से संबंधित किया जाता है वहां दर्शन स्वयं ही तर्क की भाशा में स्वयं को आबद्ध कर लेता है जिन्होंने एक उद्देश्यपूर्ण जीवन की चर्चा की है। किन्तु पाश्चात्य दर्शन में इस प्रकार की जीवन परकता के संबंध में कोई चर्चा नहीं की गयी है।

भारतीय दर्शन में सदैव मनुश्य जीवन के उद्देश्य के रूप में मोक्ष की व्यापक चर्चा की गयी है। भारतीय दर्शन गुणात्मक विकास के सिद्धान्त पर आधारित है जबकि पाश्चात्य दर्शन मात्रात्मक विकास पर बल देता हे एक दर्शन की परम्परा जहां जीवन के मानक की पोशक हैं वहीं दूसरी जीवन भौली के मान की। भारतीय दर्शन परम्परा जो मूलतः जिस मोक्ष के लिए प्रेरित करती है वह धर्म के समकक्ष ही माना गया है। यद्यपि धर्म को विभिन्न अर्थों में परिभाशित किया गया है किन्तु सभी जगह अपने कर्त्तव्य पालन की अनिवार्यता को उसमें सम्मिलित किया गया है। धर्म का यह रूप हमें हमारे जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने का मार्ग दिखाता है तथा हमें अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक करता है। इस रूप में धर्म के ये रूप दर्शन के अंग है।

धर्म, दर्शन का ही एक रूप है। ऐसा सामान्यतः माना जाता है कि दर्शन से पृथक कुछ है, जो अधिक गहरा है वह स्वर्ग की आवाज है। किन्तु इस गहराई को, इस आवाज को बिना दार्शनिक विधाओं के समझा नहीं जा सकता है। दर्शन कभी ऊपरी नहीं होता तथा धर्म का सर्दव गहरा होना जरूरी नहीं होता। धर्म व दर्शन की गहराई व मूल को जानने के लिए दार्शनिक समझ की आवश्यकता होती है। इसलिए धर्म के सभी रूपों में दार्शनिकता की छाप होती है। किन्तु फिर भी धर्म को किसी एक रूप में नहीं समझा जाता। कभी धर्म को आकस्मिक निर्णय, कभी स्वर्ग की आवाज हमारे नियति की आवाज और कभी आंतरिक निर्णय के रूप में समझा जाता है। यदि ऐसा होता है तो हमारे लिए यह देखना आवश्यक है कि यदि धर्म, स्वर्ग की आवाज है तो स्वर्ग भी दार्शनिक है, यदि धर्म देवता की आवाज है तो ये देवता बहुत दार्शनिक है, यदि धर्म हमारी आंतरिक चेतना की आवाज है तो यह चेतना बहुत दार्शनिक है।

अतः धर्म को समझना कोई बुद्धिहीनता की प्रक्रिया नहीं है। इसके लिए केवल गहरी दार्शनिक समझ की आवश्यकता है न कि दार्शनिक ज्ञान की वृहदता की। जब तक हमें धर्म का अर्थ व स्वरूप नहीं समझ

आएगा तब तक कैसे हम इसके मार्ग का अनुसरण कर सकेंगे। धर्म, मानव मस्तिश्क की एक अद्भुत खोज है जो एक साधारण व्यक्ति को भी दर्शन से अंगीकार कराती है।

5-3-1 /ke vkj mldk cks/k

जैसा हम समझते हैं वैसा ही हम व्यवहार करते हैं। जिसकी अधिक गहरी व उच्च हमारी समझ होगी उतना ही उच्च हमारा धर्म होगा। जिसमें समझ नहीं होती उसका कोई भी धर्म नहीं होता। अतः यह स्पश्ट है कि हमारे विश्व में धर्म समझ से अद्भूत है जिसका अपना उद्देश्य व अर्थ है। यदि यदि कोई धर्म बिना अर्थ, उद्देश्य, समझ और बुद्धि के होता है तो वह अंधेरे में कुछ ढूंढने के समान है।

भारतीय परम्परा में भगवत्गीता को धर्म का बोध देने वाला उत्कृश्ट ग्रंथ माना जाता है। भगवतगीता के विभिन्न भलोकों से मानव जीवन के विविध पक्षों को उस धर्म का बोध होता है जो श्रीकृश्ण ने अर्जुन को समय–समय पर दिया। गांधी ने कहा था– कृश्ण ने अपना सम्पूर्ण जीवन जनता के लिए समर्पित कर दिया। वे सही रूप में जनता के सेवक थे। कुरूक्षेत्र के युद्ध में वे अग्रगामी बन सकते थे किन्तु उन्होंने अर्जुन का सारथी बनना पसन्द किया। उनका सारा जीवन ही कर्म की गीता था। जब–जब धर्म पर संकट गहराया तब–तब कृश्ण उसकी रक्षा के लिए आगे आए। कृश्ण ने धर्म को परिभाशित करते हुए कहा– वह सब कुछ जो व्यक्ति और समाज के लिए कल्याणकारी है, वह धर्म है।

यह भी उल्लेखनीय है कि ईश्वर स्वयं भी अपनी रचना के प्रति धर्म का पालन करता है। हम उस ऊर्जा (ईश्वर) के संदेशवाहक हैं जितना अधिक हम इस तथ्य को समझ लेंगे उतना ही अधिक हम ईश्वर के समान समझ, प्रेम, दृश्टि और उदार हो जाएं। किन्तु यह स्वीकार करने और जीने का हमें साहस चाहिए। यह साहस समझ का ही एक रूप है और हमें अपनी समझ को बढ़ाने की आवश्यकता है। तभी हम अपने उच्च धर्म का पालन कर सकते हैं। गहरी समझ और धर्म के पालन के बीच एक गहरा सम्बन्ध है किन्तु हमें हमारे प्रबुद्ध विद्वानों से उच्च धर्म के क्षेत्र को समझने की उम्मीद नहीं रखनी चाहिए। क्योंकि उनका ज्ञान तो बहुत गहरा है पर समझ छोटी है, कम है। किताबी ज्ञान हमें हमारे जीवन के उद्देश्य और अर्थ को समझने की अर्हता नहीं देता। किताबी ज्ञान या समझ हमें सर्वशक्तिमान की भाक्ति को समझने में सहायक नहीं होता। अतः यह स्पश्ट है कि कृश्ण के जीवन और शिक्षाओं का मूल कर्मयोग है जो कि व्यक्तिगत पूर्णता और सामाजिक निपुणता को प्राप्त करने की कला है। इस पृथ्वी के सदस्य होने के रूप में हम धर्म का यह अर्थ समझ सकते हैं।

भारतीय परम्परा के सम्बन्ध में गांधी की धर्म की समझ को भी जानना समीचीन होगा। गांधी ने रूढ़िवादी हिन्दु धर्म को चुनौती दी थी। धार्मिक शिक्षाओं ने गांधी को कभी भी कर्मकाण्ड या कट्टरता में नहीं बांधा था, अपितु धार्मिक शिक्षाओं ने गांधी को आध्यात्मिकता की वह ऊंचाई दी जिससे वह यथार्थ और झूठ/भ्रम में अंतर करने की योग्यता प्रदान की। इसलिए गांधी ने प्राचीन व पौराणिक ग्रंथों को चुनौती दी, अपने अनुभव के अनुसार उन्हें पुनः व्याख्यायित किया क्योंकि गांधी जो कुछ भी शिक्षा देते उसका पहले वह अपने जीवन में प्रयोग करते थे। गांधी ने भगवतगीता को अहिंसा और प्रेम के सिद्धान्त को पुनः प्रवर्तित करने वाला ग्रंथ कहा था।

निश्कर्शतः यह कहा जा सकता है कि समझ एक व्यक्तिगत गुण है। यह किताबों को पढ़ने या किताबी ज्ञान मस्तिश्क में डालने में नहीं आ सकती है। यद्यपि इससे समझ को देखा जा सकता है पर जीवन में उसका प्रयोग किए बिना वह अधूरी है। हमें जीवन को उद्देश्य और भाग्य को जानने के लिए हमें अपनी संवेदनशीलता को और अधिक विकसित करना होगा। हमें अपने नए दायित्व और धर्म की नयी वास्तविकता को देखने की आवश्यकता है।

जो लोग अधिक संवेदनशील है और इस दिशा में देख रहे हैं वे इस बात को अनुभव करने लगे हैं कि आज जो धर्म का सबसे महत्त्वपूर्ण आयाम है वो यह कि हमें हमारी पृथ्वी की सुरक्षा करनी है। आज के इस पारिस्थितिक युग में धर्म का वास्तविक अर्थ अहिंसा, अपरिग्रह और सत्य जैसे मूल्यों की केवल व्याख्या करना

ही नहीं अपितु जीवन में उनका प्रयोग करना है। पृथ्वी की रक्षा के लिए उनका प्रयोग करना है। आज धर्म एक व्यापक सामाजिक आंदोलन बन गया है जिससे हमें अपने पृथ्वी की रक्षा के लिए अपने दृश्टिकोण को बदल देना चाहिए।

5-4 /ke vkj i;koj.k

पारिस्थितिकी का विचार काफी समय से हमारे चारों ओर घूम रहा है। हम इसकी विभिन्न भााखाओं को भाुद्ध जल, भाुद्ध हवा एवं साफ मिट्टी के रूप में विभक्त करते हैं। किन्तु आज यह स्पश्ट हो गया है कि पारिस्थितिकी का तात्पर्य केवल इसकी भााखाओं की स्वच्छता या भौतिक पर्यावरण की स्वच्छता तक सीमित नहीं है, अपितु उससे भी अधिक गहरी और व्यापक है। पर्यावरण की भाुद्धता के लिए मनुश्य की आत्मा की भाुद्धता की जरूरत है। यह भौतिक पर्यावरण की अपेक्षा आध्यात्मिक संवेदनशीलता से सम्बन्धित है। यद्यपि प्रदूशित पर्यावरण की स्वच्छता पारिस्थितिकी का महत्त्वपूर्ण आयाम है तथापि यह समग्र का एक भाग है। हमारे इस ग्रह में प्रदूशण के लिए तकनीक जिम्मेदार नहीं है अपितु हमारे प्रदूशित मस्तिश्क, हमारी लापरवाही, और हमारे विभक्त मस्तिश्क है। दूशित मस्तिश्क दूशित पर्यावरण को जन्म देता है।

आज मानवता एक संकटपूर्ण स्थिति में है क्योंकि मनुश्य प्रदूशित भौतिक, मानसिक और आध्यात्मिक वातावरण में निवास कर रहा है। हम स्वयं को कई स्तरों पर सुधारने की आवश्यकता है। यह सुधार हममें किसी पारम्परिक दैवीय पूजा या अर्चना से नहीं आ सकता, न ही इससे हमारी समृद्धि व सुरक्षा हो सकती है जब तक कि हमारे अंदर की आत्मा भाुद्ध नहीं होगी। हमें इस बात के लिए जागरूक हो जाना चाहिए कि हमें अपने मस्तिश्क को विशुद्ध करने की जरूरत है और यह सुधार पुराने रिवाजों से नहीं अपितु चिरस्थाई व क्रांतिकारी उपायों से होगा। हमें अपनी आंतरिक चेतना के उस स्वरूप को पूर्णतः बदलना होगा जो यांत्रिक सोच पर आधारित है तथा जो प्रकृति व व्यक्ति के साथ यांत्रिक व्यवहार करती है।

हमारा आध्यात्मिक जीवन व्यक्तिगत और सांस्कृतिक– दोनों ही स्तरों पर कमजोर हुआ है। अपने मस्तिश्क को प्रदूशित करके हम अपनी बुद्धि व संवेदना को कम करते हैं जिसके परिणाम से हमारा जीवन अधिक कुंठित हो जाता है। अंततः एक व्यक्ति के रूप में हम स्वयं को धूमिल कर देते हैं। हम बहुधा इस बात को नहीं समझ पाते हैं कि प्रदूशित भौतिक पर्यावरण अपने साथ मानसिक और आध्यात्मिक पर्यावरण को भी प्रदूशित करता है। इन तीनों प्रकार के पर्यावरण की रक्षा तभी हो सकती है जब हम महावीर के अहिंसा परमो धर्म बुद्ध के सार्वभौमिक प्रेम अथवा मध्यम मार्ग तथा जीजस के पड़ौसी से प्रेम करो– इत्यादि के मार्ग का अनुसरण करें। आज के युग में सबसे महत्त्वपूर्ण रखना तथा हमारे मस्तिश्क को मानसिक प्रदूशण से मुक्त करना है। हमारा मस्तिश्क हमारे भारीर, मिट्टी, नदियों और वायु की तरह प्रदूशित है। इसलिए हमारी पृथ्वी की सुरक्षा की निरन्तरता तथा हमारी आत्मा की अखण्डता आज के संदर्भ में धर्म के महत्त्वपूर्ण आयाम बन गए हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार के बंधनों ने हमारी आत्मा को नियंत्रण से परे कर दिया है। वास्तव में इन पांच मनोविकारों ने आधुनिक मनुश्य को अपने नियंत्रण में कर लिया है जिसका प्रमाण हमें तेजी से हो रहे पृथ्वी के अंधाधुंध दोहन से मिलता है।

बाइबिल में जीजस ने कहा– भाग्यशाली व्यक्ति हृदय से पवित्र होते हैं, अतः वे ईश्वर के दर्शन करेंगे। यहां यह प्रश्न उपस्थित होता है कि हम यह पवित्रता कैसे प्राप्त कर सकते हैं? जब आत्मा मस्तिश्क के नियंत्रण से मुक्त हो तथा इस पर कोई आवरण न हो तब यह पवित्र होती है। जीव और अजीव के बीच की अंतर्क्रिया बहुत तीव्र होती है और दुर्भाग्य से आज इस अंतर्क्रिया से नकारात्मक ऊर्जा को जन्म दिया है। जब तक हमारी आत्मा हमारे मस्तिश्क से बंधी रहती है तब तक वह हमारे इन्द्रियों की दास बनी रहती है और अपराध करती है। आज के युग में इस पृथ्वी का अवनयन जिस भौतिक विकास के लिए हो रहा है वह मनुश्य का बहुत बड़ा अपराध है तथा इसके लिए हम भविश्य की पीढ़ियों के लिए सामूहिक रूप से उत्तरदायी होंगे। अतएव आज के धर्म में पर्यावरण के प्रति धर्म का आयाम भाामिल होना चाहिए। हमारी

भाशा, धर्म, संस्कृति और आर्थिक व्यवस्था आदि ऐसे पहलू हैं जो हमें विभक्त करते हैं किन्तु पर्यावरण ही मुद्दा है जो हमे एक करता है। अतः पृथ्वी की सुरक्षा करने का तात्पर्य हमारी भविश्य की पीढ़ियों की रक्षा करना है। जब हम गहराई में जाकर चिन्तन करते हैं तो यह स्पश्ट होता है कि इस विश्व के विभिन्न स्तरों व आयामों में परस्पर अंतनिर्भरता व अंतर्क्रिया के साथ एकता भी है। यह एकता केवल आंतरिक स्तर पर नहीं है अपितु बाह्य जगत में भी हमें इसके यथेश्ट प्रमाण मिल जाते हैं।

विज्ञान ने इस बात को प्रमाणित किया है कि पारिस्थितिकी के विभिन्न तत्त्वों के बीच परस्पर अंतर्निर्भरता और अंतर्क्रिया होती है। हमारी एकता केवल उन्हीं से नहीं है जिनका अस्तित्व इस पृथ्वी पर है, जो जीवित या मृत है, जो दृश्य अथवा अदृश्य है। अपितु हमारी एकता सूर्य, चन्द्रमा और अनेक ग्रहों, से भी है। इसी एकता के कारण प्रकृति के विभिन्न अंग समग्र कल्याण के लिए एक–दूसरे की सहायता करते हैं। इसलिए जीवन खंडित नहीं अपितु समग्र है।आज के समय में केवल स्वयं के आध्यात्मिक कल्याण की चिंता करना ही पर्याप्त नहीं अपितु इस चिंता को हमें सम्पूर्ण पृथ्वी तक व्यापक करना होगा। क्योंकि यही पृथ्वी हमारा निवास स्थान है, हमारा संघ है, हमारा मंदिर है जहां आध्यात्मिकता के भाव को पुश्ट किया जा सकता है। पर्यावरण को दूशित कर हम पृथ्वी को संकीर्ण स्वार्थों के लिए भोशण करते हैं जिससे इसकी पुर्नउत्पादन की क्षमता का ह्रास होता है तथा आध्यात्मिक बनने की सभी संभावनाएं भी क्षीण होती है। हमारे प्राचीन चिंतकों ने यह कल्पना नहीं की थी कि आने वाले समय में विज्ञान और तकनीक का इस कदर विकास हो जाएगा कि वे विश्व के संसाधनों का तीन सौ वर्शों की अवधि में इतना प्रयोग कर लेंगे जितना की मानवता के इतिहास में पिछले 4000 वर्शों में भी नहीं हुआ। किंतु यदि अब हम इस मुद्दे पर सक्रिय नहीं हुए तो हमारी आध्यात्मिक यात्रा सम्पन्नता की ओर भीघ्र आ जाएगी। अतः पर्यावरणीय धर्म की आवश्यकता केवल पृथ्वी की रक्षा के लिए ही नहीं अपितु उन स्थितियों की रक्षा के लिए भी आवश्यक है जो हमें मानव बनाी है तथा आध्यात्मिकता के मार्ग दिखाती है। अतः पारिस्थितिक धर्म की महत्ता कम नहीं है।

5-5- ikfjLFkfrdh vkj vk/;kfRedrk

आधुनिक युग में पारिस्थितिकी और आध्यात्मिकता एक ही है। आज पृथ्वी ही हामरी देवता है और यदि यह नहीं रही तो हम भी नश्ट हो जाएंगे। अतः वास्तविक पूजा, अर्चना और ध्यान वही है जो हमें जागरूकता के साथ ऐसे प्रयासों को करने की भाक्ति व सामर्थ्य दे जिससे हम जंगलों, मृदा और नदियों आदि के साथ सभी की रक्षा कर सके। हमारे प्राचीन धर्मग्रंथों एवं साहित्य में ईश्वर की पूजा के लिए पत्रम्, पुश्पम, फलम और तोयम का प्रयोग बताया गया है। वास्तविक रूप में पत्रम अर्थात् पत्ते का तात्पर्य मानवता की सेवा, पुश्पम् अर्थात् फूल का तात्पर्य भाुद्ध हृदय, फलम् अर्थात् फल का तात्पर्य अच्छे कर्म तथा तोयम् अर्थात् जल का तात्पर्य समर्पण से है। किन्तु आज पूजा का अर्थ केवल धन–सम्पदा से है। ईश्वर तो स्वयं धन–दौलत और ऐश्वर्य का प्रतीक है उसे इस पूजा की कोई आवश्यकता नहीं है। ईश्वर को तो वास्तव में अपने द्वारा सृजित प्रजातियों से अपनी रचना के प्रति ध्यान और समर्पण का भाव चाहिए। किन्तु आज उसी ईश्वर का प्रयोग/दमन आधुनिक मानव के लालच को पूरा करने में किया जा रहा है।

चूंकि हम ईश्वर की सबसे बुद्धिमान प्रजाति है जिसमें अनन्त ऊर्जा है किन्तु आवश्यकता उस ऊर्जा को पहचानकर उसका अनुभव करने की है। अतः हमारी आधुनिक समय की पूजा व प्रार्थना, जो प्रकृति से सार्वभौमिक हो वह हमारी पृथ्वी माता की रक्षा करने का ज्ञान/बोध करवाएगी। हमारी प्रार्थना इस रूप में हो जो हमें हमारे चारों ओर के वातावरण को हरा–भरा रखने में सहायता करे। किन्तु हमारी यह प्रवृत्ति है कि हम केवल उन्हीं कार्यों को करते हैं जो हमें भौतिक लाभ व इन्द्रिय सुख प्रदान करते हैं। अतः हमें हमारी प्रार्थनाओं को वह स्वरूप प्रदान करना होगा जो हमारे स्वहितों से परे हो तथा जो हमें आम जीवन में उन गतिविधियों से जोड़े, जो पृथ्वी की रक्षा में सहायक हो। यह प्रार्थना सभी प्राणियों के प्रति सार्वभौमिक करुणा से ओतप्रोत होगी जो हमें–

- उन बुराइयों से दूर करे जो अत्यधिक तकनीक के प्रयोग से उत्पन्न हुई हो।
- इस बात का बोध करवाए कि सभी प्राणियों के लिए कल्याणकारी क्या है?
- यह बोध करवाए कि हमारी आंतरिक भाांति के लिए क्या आवश्यक है तथा सत्य और आत्मबोध के लिए हमारी प्रवृत्ति क्या हो?
- इस नए आयाम को हम पारिस्थितिकी धर्म और पारिस्थितिकी आध्यात्मिकता में देख सकते हैं। पारिस्थितिकी अब हमारा धार्मिक उत्तरदायित्व भी है।

5-6 ikfjfLFkfrdh n'ku

आज की हिन्दू, जैन और बौद्ध की अधिकांश शिक्षाएं भी प्राचीन काल से चली आ रही है। इन धर्मों की अधिकांश शिक्षाएं हमारे पुराने धर्म सिद्धान्तों की ही पुनरावृत्ति करते हैं। उदाहरण के लिए अनासक्ति का सिद्धान्त प्राचीन काल से सार्वभौमिक रूप से माना जा रहा है किन्तु समय के साथ यह सिद्धान्त व्यावहारिक जीवन से अलग हो गया है। अतएव आज के पारिस्थितिक संकट और पर्यावरण धर्म के लिए इस महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त के पुनःपरीक्षण की आवश्यकता है। क्योंकि हम यह जानते हैं कि यदि हम वास्तव में पृथ्वी की रक्षा करना चाहते हैं। हम इससे बहुत अधिक अलग नहीं रह सकते हैं। पृथ्वी की रक्षा के लिए पृथ्वी से लगाव की आवश्यकता है और वह लगाव बिना स्वार्थ के हो। अतः पारिस्थितिकी धर्म का तात्पर्य हमारे प्राचीन धर्मों– हिन्दू, बौद्ध, जैन, इस्लाम व इसाई आदि की आध्यात्मिक परम्पराओं को नवीन आयाम देकर उनकी उपयोगितापूर्ण पुनरावृत्ति करनी है। अतः पारिस्थितिकी धर्म इस बात की संतुश्टि देता है कि दर्शन अभी जीवित है। यद्यपि आज दर्शन एक संकटकालीन समय से गुजर रहा है। जहां बुद्धि का स्थान सूचना ने ले लिया है जो भ्रमित कर रहा है।

पारिस्थितिक धर्म का एक अन्य आयाम नैतिक निर्देश है। आधुनिकता और उत्तर आधुनिक भून्यवाद और नैतिक भ्रम के कारण विघटित हो गए हैं। परम्परागत दर्शन हमें आधुनिक नैतिक ह्रास से बचाने में सक्षम नहीं है। अतः पारिस्थितिक धर्म सही नैतिक कार्यों तथा नैतिक पुनर्निर्माण के लिए नई अनिवार्यताओं की आवश्यकता है। पारिस्थितिकी दर्शन के धर्म का सबसे महत्त्वपूर्ण आयाम है हम यह समझ लें कि हमारे मन, आत्मा और भौतिक पर्यावरण की पारिस्थितिकी परस्पर अंतर्सम्बन्धित है। भौतिक पर्यावरण का प्रदूशण कालान्तर में मन और आत्मा को प्रदूशित करता है तथा यह जानकारी देता है कि भौतिक पर्यावरण का बढ़ता अवनयन प्रदूशित मन और खण्डित आत्माओं का परिणाम है।

Ecology भाब्द ग्रीक भाशा के Oikas भाब्द से बना है जिसका तात्पर्य एक ऐसे घर से है जिनमें विभिन्न प्रजातियों के जीव परस्पर सद्भाव से रहते हैं। यद्यपि हमारे चारों ओर के वातावरण में भिन्नता है तथापि इसके सदस्यों में परस्पर अंतर्निर्भरता है और उनकी स्वतंत्र पहचान भी है। प्रकृति के प्रति एक व्यवस्थित पहुंच जो जीवन के जाल को वर्णित और विश्लेशित करती है, वही वास्तव में पारिस्थितिकी है। पारिस्थितिकी तंत्र ''बुद्धि और ह्रास'' के नियम से संचालित होता है। ये दोनों नियम परस्पर साथ–साथ संचालित होते हैं और व्यवस्था को साम्यावस्था की स्थिति में लाते हैं। लेकिन आज की समस्या यह है कि आधुनिक मनुश्य से अपने जीवन स्तर के लिए अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की सीमा को पार कर दिया जिससे पर्यावरण का अवनयन होने लगा। परिणामतः इच्छा (अर्थशास्त्र) और आवश्यकता (पर्यावरण) में संघर्श प्रारंभ हो गया। जहां पारिस्थितिकी का तात्पर्य मनुश्य और पर्यावरण के बीच समन्वय है वहीं अर्थशास्त्र का तात्पर्य पर्यावरण के साथ असामंजस्य है। अतः पर्यावरण के सामंजस्य स्थापित करने तथा मनुश्य में पर्यावरण की रक्षा के प्रति चेतना जागृत करने के लिए प्रथमतः हमें हमारी आर्थिक नीतियों को पर्यावरण सापेक्ष बनाना होगा तथा द्वितीय हमें हमारे पर्यावरण की समस्या को आध्यात्मिकता के आयाम से देखना होगा। अर्थशास्त्र का सिद्धान्त है कि हम जो लेते हैं वो हमें पुनः लौटाना चाहिए और जो हम लौटाते हैं वह हमारे पास वापिस आ जाता है। मानवता आज इस बिन्दु पर आ गयी है जहां सिर्फ ''लेना'' ही रह गया है ''देना'' गौण हो

गया है। हम पृथ्वी से अच्छाई ले रहे हैं लेकिन वापिस जहर लौटा रहे हैं। विवेकानन्द और गांधी ने इस सत्य को पहचाना था। गांधी का मानना था कि जब तक लोगों के व्यवहार में परिवर्तन नहीं आएगा तब तक समाज में परिवर्तन नहीं आएगा। अतः लोगों के व्यवहार में परिवर्तन का तात्पर्य है उनके चिंतन व सोच में परिवर्तन लाना। अतः गांधी ने लोगों के जीवन दर्शन को बदलने पर बल दिया। सत्य, अहिंसा, भारीर श्रम, स्वदेशी, ट्रस्टीशिप आदि गांधी के चिंतन में वे साधन हैं जिससे वांछित भाांति व समृद्धि को तथा जीवन सतत धर्म को प्राप्त किया जा सकता है।

हमारी आध्यात्मिक परम्पराओं में प्रकृति की महत्ता का वर्णन किया गया है। यद्यपि हम उन भाब्दों की गहराई को आज भुला चुके हैं। आज हमारी चेतना और कार्य प्रकृति से स्वहित की पूर्ति की दिशा में ही संचालित हो रहे हैं, बिना परिणामों की चिंता किए। अतः आज एक आध्यात्मिक क्रांति की आवश्यकता है जो हमारे अंदर निहित पर्यावरणीय चेतना के बीजों को जागृत कर सके। इस पारिस्थितिक युग में हमारा धर्म इस पृथ्वी की रक्षा के लिए होना चाहिए।

प्राचीन ऋशियों, गुरुओं और दार्शनिकों से हमने यह सीखा है कि बिना परिणाम के कार्य अंधा है। हमें इन संदेशों से सीख लेने की आवश्यकता है। हमें इस सम्बन्ध में पूर्णतः जागरूक हो जाना चाहिए कि आज के समय में हमारे कार्य अनिर्देशित और अजागृत हैं और निरन्तर विध्वंस की ओर हमें ले जा रहे हैं। आज सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह जैसे मूल्यों की बात करना ही पर्याप्त नहीं अपितु उन्हें जीवन में अपनाना आवश्यक है। ये मूल्य हमारी रोजमर्रा की जीवनचर्या के प्रयोगात्मक अंग बनने चाहिए। यह भी कहा जा सकता है कि सादा जीवन जिओ जिससे दूसरे भी जी सकें अर्थात् ऐसी जीवन भौली अपनाएं जो कम उपभोक्तावादी, कम लालच व कर्म तनावपूर्ण हो। मितव्ययिता का व्यवहार करें। स्थानीय स्तर पर उत्पादित सादा भोजन खाएं। ऊर्जा का हरसंभव संरक्षण करें। सही चेतना का विकास करें जो समग्र हो तथा करुणा, सहयोग व भाांति पर आधारित हो, पारिस्थितिक सापेक्ष हो तथा ब्रम्हाण्ड के प्रति समादरणीय का भाव हो जो हमें उस आध्यात्मिक मार्ग पर ले जाए जिससे हम वास्तविक आनंद की प्राप्ति कर सके।

6- ikfjLFkdh dei ¼**Ecological Karma**½

यदि यह सत्य है कि ब्रम्हाण्ड पवित्र है तो इसका प्रत्येक मार्ग जिससे हम गुजरते हैं, वह भी पवित्र है। इन मार्गों को हमें अच्छे कर्म करके तथा बिना किसी को नुकसान पहुंचाए पार करने की आवश्यकता है। यदि हम इन मार्गों में किसी को भी नुकसान पहुंचाते हैं, चाहे वह हमसे निम्न स्तर का व्यक्ति हो, कोई जीव हो, कोई पशु हो तो हम स्वयं को भी नुकसान पहुंचाते है। क्योंकि जो दूसरे के अस्तित्व को नकारता है, वह अपनी आत्मा के अस्तित्व को नकारता है। हम इस संबंध में पूर्ण जागरूक नहीं है कि ब्रम्हाण्ड के इन विभिन्न मार्गों से गुजरते हुए हम जो व्यवहार करते हैं वे हमारे कर्मों का ही परिणाम हैं। पारिस्थितिकी कर्म को परिभाशित करते हुए हम कर्मों के परम्परागत स्वरूप को नकारते या बिगाड़ते नहीं है अपितु हम इसकी गहराई को और अधिक विस्तार देते हैं जिससे हम आज के युग की जटिलाओं को समझ सकें। हम यह जानना चाहतें हैं कि हमारे लिए और हमारी भविश्य की पीढ़ियों के लिए क्या सही और उचित है? हमें सतत् कर्मों के द्वारा ही निर्देशित होना चाहिए। हम और अधिक भ्रम व अनिश्चितताओं में नहीं जीना चाहते हैं क्योंकि ये बुरे कर्मों को उत्पादित करती है।हमें बहुत अधिक स्वार्थी एवं स्वकेन्द्रित भी नहीं होना चाहिए। एक नेक रास्ता संकीर्ण नहीं होता, अपितु नेक रास्ता तो व्यापक होता है जिसमें अनेक सहयात्री सम्मिलित हो जाते हैं।

6-1 ikfjLFkfrdh dei dk vuHko

प्रसिद्ध अंग्रेजी कवि इलियट ने लिखा है– प्रकृति के प्रति गलत दृश्टिकोण, कुछ अर्थो में ईश्वर के प्रति गलत दृश्टिकोण होता है और इसका परिणाम अनिवार्य रूप से विनाशकारी होता है। पारिस्थितिकी के

परिप्रेक्ष्य में इलियट का यह कथन सही प्रतीत होता है। सभी चीजें परस्पर अन्तर्संबंधित हैं। सभी जीवन रूपी जाले के विभिन्न भाग हैं। प्रकृति के प्रति गलत दृश्टिकोण का तात्पर्य इस जीवन को हानि पहुंचाना है। जब हम पृथ्वी की ऐसी सुसंगत तस्वीर का निर्माण करते हैं जिसमें इसके सभी भाग इस जीवन रूपी जाल के लिए महत्वपूर्ण हों तभी हम इलियट के इस कथन को पूर्ण समझ सकते हैं। भारतीय परम्परा में यह निर्दिश्ट है– प्रत्येक व्यक्ति जन्म, मृत्यु तथा जीवन के दौरान किसी न किसी रूप में पंच महाभूतों से गुजरता ही है। जब हम इन पंच महाभूतों को प्रदूशित करते हैं तो हम स्वयं को प्रदूशित करते हैं। हमारी ऐसी जीवनशैली जो प्रकृति के सामंजस्य के पवित्र सिद्धान्त में बाधा उत्पन्न करती है, वह स्थायी व सतत नहीं हो सकती। आज ऐसी वैकल्पिक जीवन भौली की आवश्यकता है जो हमें तनावरहित, लालचरहित और उपभोग रहित जीवन उपलब्ध कराए। पृथ्वी के साथ इस अर्न्तसंबंधता को समझने का एक मात्र मार्ग आध्यात्मिक विकास और आध्यात्मिक आयाम है। इस प्रकार से पारिस्थितिकी कर्म ;म्बव.ज्ञंतउंद्ध के इस नए नैतिक सिद्धान्त को परिभाशित किया गया है। यह सिद्धान्त हमें बताता है कि चूंकि हमारे मानव परिवार के सभी सदस्यों के जीवन को आंनदित व सुरक्षित बनाना हमारा कर्तव्य है इसलिए यह हमारी नैतिक जिम्मेदारी है कि हम इस पृथ्वी और इसके सभी पारिस्थितिक जीवों की रक्षा करें। पृथ्वी या उसके किसी भी भाग के साथ हिंसा करना उतना ही बड़ा अपराध है जितना कि किसी व्यक्ति के साथ हिंसा करना। अतः पारिस्थितिक कर्म हमें यह याद दिलाता है कि हम इस विश्व व्यवस्था के सभी जीवित व दृश्य के साथ अपनी अन्तर्संबंधता के प्रति जागरूक रहें। प्रकृति हमें अनेक रूपों में सहायता देती है, उसके प्रति आदर व सम्मान करना हमारा नैतिक कर्तव्य है। पृथ्वी के सभी भागों के साथ हमारी अन्तर्संबद्धता के प्रति जागरूकता ही पारम्परिक कर्म की अवधारणा में नवीनता है।

6-2 lkefgd de

पारिस्थितिक कर्म की अवधारणा पारस्परिक कर्म की अवधारणा को एक अन्य रूप में भी विस्तार देती है। समाज और मानव जाति के लिए हमें केवल अपने व्यक्तिगत कर्मों के प्रति ही जागरूक नहीं होना अपितु सामूहिक कर्मों के प्रति भी जागरूक होना है। चूंकि हम सभी प्रकृति प्रदत्त उपहारों का किसी न किसी रूप में प्रयोग करते हैं, यह हमारा दायित्व है कि प्रकृति के सौन्दर्य के पुनर्निर्माण में हम भाग लें। पारिस्थितिकी कर्म इस बात पर बल देते हैं कि इस पृथ्वी की सबसे बुद्धिमान प्रजाति होने के कारण इस पृथ्वी और इसके निवासियों की रक्षा का दायित्व हम पर है। बाइबिल के कथन– ''हम जैसा बीज बोयेगें वैसा ही फल मिलेगा''– को पारिस्थितिकी कर्म में वृहद स्वरूप प्रदान किया गया है। इस सिद्धान्त का सही रूप तभी है जब हम प्रकृति एवं अन्य जीवों के प्रति हमारे व्यवहारों के परिणामों को भी इसमें सम्मिलित करते हैं। बुरे कर्म वे गलत और हानिकारक व्यवहार हैं जो हम दूसरों के साथ करते हैं और अंततः जिनका प्रभाव हम पर भी नकारात्मक होता है।

उपरोक्त वर्णित कथन का सार यह है कि हमारा प्रकृति के साथ व्यवहार इस प्रकार का होना चाहिए जो जैव विविधता की रक्षा कर सके, तथा हमारे साथ जीने वाले जीवों की रक्षा कर सके। ऐसा व्यावहार हमारे संरक्षण के लिए भी आवश्यक है। इसलिए ईश्वर की रचनाओं का जो प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से अत्यधिक भोशण होता है हम उसके लिए जिम्मेदार होते हैं। यदि हम आने वाली पीढ़ियों को अधिक स्वस्थ व जीवंत बनाना चाहते हैं तो हमें इस ओर अधिक ध्यान देना होगा। अतः पारिस्थितिक धर्म का तात्पर्य ब्रम्हाण्ड के प्रति हमारे नैतिक उत्तरदायित्व के प्रति हमें जागरूक करना है।पारिस्थितिकी कर्म कर्म के अर्थ को दो रूपों में विस्तृत करता है।पारिस्थितिक कर्म यह बताता है– प्रत्येक व्यक्ति और ईश्वर के बीच कई अवस्थाएं होती हैं, जो व्यक्ति के कर्मों तथा सामूहिक कर्मों का परिणाम होती हैं। हमारा यह दायित्व है कि हम इन अवस्थाओं पर आने वाले कर्मों के दबाव को कम करें। इसके लिए हमें अन्य जीवों व भावी पीढ़ीयों के लिए पृथ्वी की रक्षा करना आवश्यक है। इन अवस्थाओं को ध्यान में रखते हुए तथा सकारात्मक कर्मों को

संग्रहित करते हुए हमें ईश्वर को नहीं भूलना है, उसके प्रति अपने दायित्व को नहीं भूलना है साथ ही सकारात्मक कर्मों को ग्रहण करने की प्रक्रिया में अपनी प्रकृति को भी नहीं भूलना है।

प्रत्येक व्यक्तिगत दायित्व के पीछे सामूहिक दायित्व भी विद्यमान रहता है। इसका तात्पर्य यह है– अपने समाज तथा मानव जाति के रूप में हम अपने सामूहिक कर्मों से संयुक्त रूप से उत्तरदायी हैं। प्रकृति के विध्वंस के उत्तरदायित्व को हम सामूहिक कर्मों के द्वारा अपने ऊपर लेते हैं।

मानवीय चेतना को संस्कारवादी प्रकृति का होना आवश्यक नहीं है। विशेश रूप से इसे ऐसे किसी नैतिक सिद्धान्त को स्थापित करने की आवश्यकता नहीं है। जैसे कि पहले भी कहा जा चुका है– नैतिक नियम धार्मिक भाशाओं में बहुतायत से पाए जाते हैं। नैतिक नियम विशेशतः पश्चिम में ईश्वर और स्वर्ग से संबधित रहे हैं तथा इन नियमों ने भाताब्दियों तक नैतिक आयामों पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया है। कान्ट ने इस संवंध में एक परिवर्तित दृश्टिकोण प्रस्तुत करते हुए कहा– चमकीला स्वर्ग तुम्हारे ऊपर है तथा नैतिक नियम तुम्हारे अंदर हैं। प्राकृतिक विश्व के साथ प्रारंभिक मोह से लेकर कांट के इस सिद्धान्त तक बहुत कुछ घटित हो गया है जिसे मानवीय चेतना ने अपने अनुसार समझा है। संस्कृतियां अब समय के साथ बहुत परिमार्जित हो गयी हैं। स्व–अनुभव की प्रक्रिया धीरे–धीरे स्व–संदेह की ओर बढ़ रही है। वास्तविक सीधापन आज लुप्त हो गया है। मनुश्य ने प्रकृति से आत्मचेतना और विभेदीकरण का विशिश्ट ज्ञान प्राप्त किया है। एक तरफ मनुश्य ने स्वचेतना का जो विशिश्ट ज्ञान प्राप्त किया है वह मानवीय चेतना में वृद्धि का प्रमाण है, वहीं दूसरी ओर यह भी सत्य है कि मनुश्य ने अपनी गरिमा को खोया है।

6.3 ikfjfLFkfrdh dei **(Eco-karma)** dh vuns[kh

पारिस्थितिकी कर्म **(**Eco-karma**)** की अनदेखी का पहला कारण यह है कि प्राग् ऐतिहासिक काल में किसी प्रकार के प्रयासों की आवश्यकता नहीं थी। मनुश्य प्रकृति के जाल में इस तरह से आबद्ध था जिससे वह प्राकृतिक रूप से संरक्षित था। पारिस्थितिक कर्म की अनदेखी का दूसरा कारण आधुनिक है। जब व्यवस्थित रूप से विभिन्न धर्मों का उदय हुआ तब लोगों का पूर्ण ध्यान मनुश्य को उसके देवताओं से संबंध स्थापित करना था। तब नैतिक नियम धार्मिक वचनों के रूप में परिभाशित किए गए। उस समय पारिस्थितिक कर्मों को नैतिक सिद्धान्त के रूप में भूला दिया गया। वे प्रकृति को ईश्वर के बराबर नहीं मानना चाहते थे।

आदि मानव आत्मविस्मृति की अवस्था में रहता था। वह प्रकृति, ब्रम्हाण्ड और देवीय भाक्तियों की संरचना में इस प्रकार बंधा हुआ था कि उसके लिए इस बात की जागरूकता होना अत्यंत कठिन था कि मानवीय चेतना कहां समाप्त होती है और कहां प्रकृति का आरंभ होता है। क्या प्राकृतिक है और क्या ब्रम्हाण्डीय है आदि। उस समय मानवीय चेतना का इतना विकास नहीं हुआ था कि मनुश्य को विभिन्न चीजों को विभक्त करने की क्षमता प्रदान कर सके। इस रूप में आदि मानव आत्मविस्मृति की अवस्था में था। उसके लिए सब एक था। ब्रम्हाण्ड के सभी जीवों के साथ एक ही प्रकार का संवाद था। चेतना के विकास की प्रक्रिया का प्रारंभ पुर्नजागरण के युग के बाद हुआ, जब मनुश्य को स्वतंत्रता की आवश्यकता अनुभव हुई। कालान्तर में वैज्ञानिक खोजों ने हमें स्वयं से तथा प्रकृति से अलग कर दिया।

आज हम तथाकथित सभ्य मानव की अपरिपक्वता को उस रूप में देख सकते हैं जब वह एक के बाद एक, ऐसे भाोशणकारी और विध्वंसक कार्य करता जा रहा है जो उसे भी स्पश्टतः दृश्टिगोचर नहीं हो रहे हैं। आज मनुश्य केवल स्वयं तक ही सीमित रह गया है। इस चिंतन के कारण हम बुरे कर्मों का उदय कर रहे हैं। हमें इस स्थिति को सुधारने के प्रयत्न करने चाहिए कि किस सीमा तक हम पृथ्वी को नुकसान पहुंचा रहे हैं साथ ही यह भी अनुभव करना चाहिए कि इस पृथ्वी की रक्षा करना हमारा नया धर्म है। अपने पिछले बुरे कर्मों से बाहर निकलना हमारे उत्तरदायित्व का एक भाग है।

आज का पारिस्थितिक युग ऐसे प्रयासों के क्रियान्वन पर बल देता है जो प्रकृति व अन्य जीवों के साथ एकता स्थापित करे। इस एकता का तात्पर्य पारिस्थितिकी के प्रति चेतना जागृत करना है। Eco-karma का तात्पर्य सभी गतिविधियों को विराम देना नहीं अपितु हमारी गतिविधियों को इस रूप में संपादित करना है जिससे वे प्रकृति के प्रति अधिक संवेदनापूर्ण व्यवहार कर सकें। सबसे पहले हमें पृथ्वी का उपचार करना होगा क्योंकि हमने इस पृथ्वी को अपने अतीत् के बुरे कर्मों के द्वारा हानि पहुंचायी है। दूसरा उपाय हमें यह करना होगा कि हम इस तरह से पृथ्वी की सार संभाल कर सकें जिससे यह भविश्य की पीढ़ियों के लिए सतत् रूप से उपलब्ध हो। हमें पुरानी व मौलिक मान्यताओं से गिरने के बाद हमें जागरूकता से एक नयी मोहकता का निर्माण करना होगा जिसमें प्रकृति व उसकी अन्य रचनाओं के साथ सद्भाव का भाव होगा और जो नए नैतिक आधारों पर अवलंबित होगा। सभी जीवों के प्रति एकात्मकता का भाव ही Eco- karma है। हमें या तो उसी मार्ग पर निरन्तर चलते रहना होगा जो प्रकृति के प्रति गलत दृश्टिकोण रखता है तथा जिसका अंततः परिणाम विध्वंस है। अथवा हमें उस मार्ग का चयन करना होगा जो Eco- karma पर आधारित हो तथा जो पृथ्वी की सुरक्षा और संरक्षण में सहायक हो।

7- vH;kl i'u

fucU/kkRed i'u

1. पर्यावरणीय नीतिशास्त्र पर एक विस्तृत लेख लिखिए।

y?kqÙkjkRed i'u

1. पारिस्थितिकी चेतना की संकल्पना को समझाइए।
2. पर्यावरणीय नीतिशास्त्र में पारिस्थितिकी कर्म की भूमिका का मूल्यांकन कीजिए।

vfr y?kqÙkjkRed i'u

1. प्राविधिक व्यक्तिवादी प्रश्रय देते हैं–
   (a) संसाधनों के सीमित उपभोग को (b) संसाधनों के त्वरित उपभोग को
   (c) संसाधनों के कुशलतम उपभोग को (d) उपरोक्त सभी
2. Life Boat Ethics के प्रतिपादक कौन थे–
   (a) गैरेट हार्डिन (b) डेविस
   (c) डेविड बॉम (d) फ्रीमेन
3. भारतीय परम्परा में मनुश्य का अंतिम लक्ष्य है–
   (a) धर्म (b) मोक्ष
   (c) संन्यास (d) मृत्यु
4. Ecology भाब्द किस भाशा के भाब्द से बना है–
   (a) जर्मन (b) लेटिन
   (c) ग्रीक (d) उपरोक्त में से कोई नहीं।
5. निम्न में से कौन–सा समूह अर्थशास्त्र और पर्यावरण के सम्बन्ध को स्पश्ट करता है–
   (a) इच्छा और आवश्यकता (b) इच्छा और अनिवार्यता

(c) इच्छा और आकांक्षा (d) आकांक्षा और अनिवार्यता।

6. निम्न में से समादरणीय जीवन भौली का अंग है–

(a) मितव्ययिता (b) ऊर्जा संरक्षण

(c) कम उपभोक्तावादी (d) उपरोक्त सभी।

7. ..... जीवन भौली एक अपराधिक कार्य है।

8. ..... का विकास अनेक चरणों में हुआ है।

9. चमकीला स्वर्ग तुम्हारे ..... है तथा नैतिक नियम तुम्हारे ..... है।

10. आदिमानव ..... की अवस्था में रहता था।

bdkbZ & 5
lrr fodkl vkj i;koj.k izcU/ku

mís';

1. सतत विकास की अवधारणा को जानना।
2. पर्यावरण प्रबन्धन के विविध पक्षों का अध्ययन करना।
3. उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण की अवधारणा का परिचय प्राप्त करना।

lajpuk

1. सतत विकास की अवधारणा
    - 1.1 संतुलित विकास
    - 1.2 समन्वित विकास
    - 1.3 सतत् या संधृत विकास
    - 1.4 सतत् विकास
        - 1.4.1 सतत विकास के सिद्धान्त
2. प्राकृतिक संसाधनों का शोषण एवं उनका पर्यावरण तथा अर्थव्यवस्था पर प्रभाव
3. पर्यावरण प्रबन्धन
    - 3.1 पर्यावरण प्रबन्धन के विविध पक्ष
    - 3.2 पर्यावरण प्रबन्धन की प्रक्रिया
        - 3.2.1 वातावरण निर्माण
        - 3.2.2 जन चेतना
    - 3.3 पर्यावरणीय शिक्षा एवं प्रशिक्षण
        - 3.3.1 संसाधन प्रबन्धन
        - 3.3.2 तकनीकी संवर्द्धन
    - 3.4 पर्यावरण अवबोधन
    - 3.5. प्रक्रिया का क्रियान्वयन
    - 3.6. प्रक्रिया का मूल्यांकन
    - 3.7 पर्यावरण प्रबन्धन की अध्ययन विधि एवं उपागम
        - 3.7.1. तकनीकी सुधार एवं संवर्द्धन उपागम
            - 3.7.1.1 उत्पादन तकनीक में सुधार
            - 3.7.1.2 उपभोग तकनीक में सुधार

3.7.1.3 विनिमय तकनीक में सुधार

3.7.1.4 संरक्षण तकनीक में सुधार

3.7.1.5 पारिस्थितिकी तकनीक में सुधार

3.7.1.6 सुरक्षा तकनीक में सुधार

3.7.2 संसाधन संरक्षण उपागम

3.7.2.1 वन संरक्षण

3.7.2.2 जल संरक्षण

3.7.2.3 मृदा संरक्षण

3.7.2.4 खनिज संरक्षण

3.7.2.5 ऊर्जा संरक्षण

3.7.2.6 चरागाह संरक्षण

3.7.2.7 आनुवांशिकी संरक्षण

3.7.3 प्रादेशिक पर्यावरण प्रबन्धन

3.7.3.1.स्थानीय पर्यावरण प्रबन्धन

3.7.3.2. क्षेत्रीय पर्यावरण प्रबन्धन

3.7.3.3 अन्तर्राष्ट्रीय पर्यावरण प्रबन्धन

3.7.4 पर्यावरणीय प्रबन्धन में परिवर्तन

3.7.5. पर्यावरण प्रबन्धन एवं पारिस्थितिकी संविकास

3.7.5.1 संतुलित विकास

3.7.5.2 समन्वित विकास

3.7.5.3 सतत् विकास

3.8 भारत में पर्यावरण प्रबन्धन

4. पारिस्थैतिकी संतुलन

5. उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण

5.1 उदारीकरण

5.1.1 उदारीकरण नीति के उद्देश्य

5.1.2 उदारीकरण नीति के मुख्य उपकरण

5.1.2.1. नई औद्योगिक नीति

5.1.2.2. नई व्यापार नीति

5.1.2.3. नई राजकोषीय नीति

5.1.2.4. नई मौद्रिक नीति

5.1.2.5. नई निवेश नीति

5.1.3 भारत में उदारीकरण नीति

5.1.3.1 नरम उदारीकण नीति (1985 से 1991)

5.1.3.2 गहन उदारीकरण नीति (1991 के बाद की अवधि)

5.2 निजीकरण

5.2.1 निजीकरण के तर्क

5.2.2 निजीकरण के उपाय

5.2.2.1. स्वामित्व सम्बन्धी उपाय

5.2.2.2. संगठनात्मक उपाय

5.2.2.3. कार्य संचालन सम्बन्धी उपाय

5.2.3 निजीकरण की आवश्यकता

5.2.4 निजीकरण के उद्देश्य

5.2.5 निजीकरण के लाभ

5.2.6 भारतीय अर्थव्यवस्था में निजीकरण के प्रयास

5.2.7 निजीकरण की कठिनाइयां

5.3 वैश्वीकरण

5.3.1 वैश्वीकरण की विशेशताएं

5.3.2 विश्व व्यापीकरण को प्रेरित करने वाले घटक

5.3.2.1 तकनीकी परिवर्तन

5.3.2.2 प्रतिस्पर्धा

5.3.2.3 उदारवादी नीतियां

5.3.2.4 अमेरिका का महाशक्ति के रूप में उदय

5.3.2.5 विकासशील अर्थव्यवस्थाओं के अनुभव

5.3.2.6 अन्य कारक

5.3.3 वैश्वीकरण के प्रभाव

5.3.3.1. अनुकूल प्रभाव

5.3.3.2 प्रतिकूल प्रभाव

5.3.4 वैश्वीकरण से सम्बद्ध कठिनाइयां

5.3.4.1 विदेशों में बढ़ता हुआ संरक्षणवाद

5.3.4.2 क्षेत्रीय व्यापार गुटों की स्थापना

5.3.4.3 तकनीकी उन्नति को बढ़ावा देने की आवश्यकता

5.3.4.4 सीमित वित्तीय साधन

5.3.4.5 अनुचित क्षेत्र में प्रवेश

5.3.4.6 अन्य समस्याएं

6. अभ्यास प्रश्न

पर्यावरण अवनयन के कारण असंतुलित हो रहे पर्यावरण में अनेक समस्यायें उत्पन्न हो रही हैं, जिनके निदानार्थ संविकास की संकल्पना विकसित हुई है। बिगड़ती पारिस्थितिकी ने इस तथ्य पर चिन्तन करने को बाध्य कर दिया है। बढ़ती विकास की गति ने पर्यावरणीय संतुलन को नजरअंदाज किया है, जिसके फलस्वरूप अनेक भौतिक एवं सामाजिक विकृतियां उत्पन्न हुई हैं, जिनके चलते जीवन की गुणवत्ता की निरन्तरता पर प्रश्न चिन्ह लग गया है। अतः असंतुलित पारिस्थितिकी तंत्र को ह्रासित होने से बचाने के लिए संविकास की अवधारणा को मूल आधार बनाया गया है। यद्यपि पर्यावरण प्रबंधन की अवधारणा में भी पारिस्थितिकीय संरक्षण को सम्मिलित किया था, लेकिन इसमें मानव विकास को महत्त्व नहीं दिया गया। विकास पर नियंत्रण लगाकर भी पर्यावरण संरक्षण नहीं किया जा सकता क्योंकि पर्यावरण का विनाश न केवल तीव्र आर्थिक विकास से हुआ है वरन् अत्यधिक निर्धनता भी इसका मुख्य कारण रही है। स्पष्ट है कि विकास एवं पर्यावरण संरक्षण परस्पर विरोधी न होकर अन्योन्याश्रित है अर्थात् बिना पर्यावरण संरक्षण के विकास नहीं हो सकता तथा बिना विकास के पर्यावरण संरक्षण भी असंभव है। एक ओर विकसित राष्ट्रों में तीव्र पर्यावरण ह्रास की कीमत पर विकास किया गया है, तो दूसरी ओर अल्पविकसित तथा विकासशील राष्ट्रों में गरीबी के कारण पर्यावरण ह्रास हुआ है लेकिन इनमें मूल अंतर यह है कि विकसित राष्ट्र पर्यावरण ह्रास को नियंत्रित रखने में सक्षम हैं, जबकि अल्प विकसित देश इस दृष्टि से सक्षम नहीं हैं।

1- lrr fodkl dh vo/kkj.kk

संविकास की संकल्पना का मूल बिना विनाश किये विकास है, जिसमें संतुलित और व्यवस्थित नियोजन पर आधारित आर्थिक–सामाजिक विकास निहित है। इस संकल्पना के अनुसार स्थानीय पर्यावरण में उपलब्ध संसाधनों का मानवीय हित में ऐसा उपयोग किया जाये कि पर्यावरण की गुणवत्ता निरन्तर बनी रहे तथा विकास में बाधा न आये। संविकास की अवधारणा के अनुसार जीवमण्डल की क्षमता के आधार पर संसाधनों का उस सीमा तक दोहन किया जाये कि प्रकृति की सहनशीलता से बाहर न हो, क्योंकि सहनीय सीमा से अधिक संसाधनों का दोहन करने पर असंतुलन उत्पन्न हो जाता है। स्पष्ट है कि संविकास आमजन में एक ऐसी चेतना का विकास करता है, जो भौतिक विकास के लिए अपने प्राकृतिक परिवेश के मैत्रीपूर्ण उपयोग की भावना बनाये रखती है।

संविकास की अवधारणा का विकास संरक्षण की संकल्पना पर आधारित है तथा इसके उपरान्त ही विकसित हुई है। 1969 में प्रकृति एवं प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण के लिए अंतर्राष्ट्रीय संघ द्वारा स्पष्ट किया गया था कि मानव सहित प्राकृतिक संसाधनों का प्रबन्धन ही संरक्षण है। 1972 में इस संकल्पना को संयुक्त राष्ट्र की मानव पर्यावरण पर संगोष्ठी में मौरिस स्ट्रांग ने संविकास के रूप में प्रस्तुत किया गया। इसे स्वविश्वास के रूप में माना गया है, जिसमें मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति निर्धनतम से आरम्भ करनी चाहिए, जिससे सामुदायिक सहयोग बढ़े।

संविकास की अवधारणा के निम्नलिखित तीन पक्ष प्रमुख हैं–

- संतुलित विकास

- समन्वित विकास
- सतत् या संधृत विकास

1-1- lrfyr fodkl

संविकास का प्रमुख पक्ष संतुलित विकास है, जिसमें पर्यावरण को बिना क्षति पहुंचाये समाज एवं समुदाय के सभी वर्गों को न्यूनतम सुविधायें उपलब्ध कराया जाना सम्मिलित है। विकास का लाभ सभी वर्गों को समान रूप से मिलना चाहिए। विश्व में वर्तमान समय में पर्यावरणीय ह्रास का प्रमुख कारण विकास का असंतुलित वितरण है जिसके अंतर्गत विश्व के विभिन्न देशों में विकास के स्तर एवं परिणामस्वरूप जीवन के भौतिक स्तर में बड़ी असमानता व्याप्त है, जिसके कारण विकसित और विकासशील देशों के मध्य वैचारिक अंतर में वृद्धि हुई है तथा पर्यावरण ह्रास भी बढ़ा है। विकसित राष्ट्र विकासशील देशों का शोषण कर रहे हैं तथा विकासशील देशों की तुलना में विभिन्न भौतिक वस्तुओं का कई गुना अधिक मात्रा में उपभोग कर रहे हैं। वहीं अल्पविकसित राष्ट्रों के लोग जीवन के लिए आवश्यक न्यूनतम वस्तुओं से वंचित है। उदाहरणार्थ एक दिन में स्वीट्जरलैण्ड का एक नागरिक को एक दिन में इतनी ऊर्जा का उपयोग करता है, जितने में सोमालिया के 40 व्यक्तियों का निर्वाहन हो सकता है। पर्यावरण के जैव संसाधनों के दोहन से निर्धनता का प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है, जिन्हें निर्धनता की समस्या तथा संरक्षण की भावना के मध्य चयन करना पड़ता है। इस निर्धनता से ग्रस्त लोगों को जीवन निर्वाहन के लिए संसाधनों का दोहन करना पड़ता है जिसके चलते संसाधनों के दोहन को सीमित करना अर्थात् पर्यावरण संरक्षण को अपनाना मौत से समझौता करना है। स्पष्ट है कि विश्व में असमानता ही सबसे बड़ी पारिस्थितिकीय समस्या हैः मुस्तफा तोल्बा ने कहा है कि, ''निर्धनता विश्व की अनेक समस्याों की जड़ है, जो वातावरण के विनाश की जननी भी है।'' जीवित रहने के लिए संघर्ष करते हुए निर्धन लोग अनुर्वर सीमांत भूमि का कृषि अथवा चरागाह के लिए अनुचित उपयोग करते हैं। फलस्वरूप वनोन्मूलन होता है। मृदा अपरदन उत्पादकता ह्रास तथा मरुस्थलीकरण में वृद्धि होती है। संकट के इस सम्पूर्ण चक्र को संतुलित विकास द्वारा प्रतिबंधित किया जा सकता है।

पर्यावरण एवं विकास के विश्व आयोग द्वारा 1987 में प्रकाशित Our Common Future के प्रमुख ग्रो हरलेम ब्रुटलेण्ड ने कहा है कि, निर्धन देशों से सम्पन्न देशों में संसाधनों का शुद्ध हस्तान्तरण हो रहा है, अर्थात् जितनी मुद्रा विकसित देश प्रतिवर्ष ऋण या अनुदान में तीसरी दुनिया के निर्धन देशों को कर्ज अदायगी के लिए अधिक उत्पादन करना पड़ता है। पर्यावरणीय सहनशीलता की सीमा से बाहर उत्पादन करने पर समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। इस प्रकार न्यून विकास, दूसरे देशों पर निर्भरता पर्यावरण के ह्रास के कारण और परिणाम भी हैं। इस समस्या का समाधान संतुलित विकास है, जो मानव समाज के प्रत्येक निर्धन एवं अमीर वर्ग को उपयुक्त लाभ प्रदान करे। स्पष्ट है कि संविकास की अवधारणा उस आर्थिक विकास एवं पारिस्थितिकी संरक्षण को महत्त्व प्रदान करता है, जिससे विश्व के विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों के मध्य असमानता कम है।

1-2 lefUor fodkl

समन्वित अथवा समग्र विकास में पारिस्थितिकीय तंत्र की समग्रता को आधार मानकर विकास के आयाम निर्धारित किये जाते हैं।

वर्तमान समय में आर्थिक–सामाजिक सांस्कृतिक क्रियाकलापों को परस्पर एक–दूसरे से भिन्न न मानकर समग्र रूप में देखा जाने लगा है। इसी तरह पर्यावरण संकट, विकास का संकट, ऊर्जा संकट, सामाजिक विषमता तथा सांस्कृतिक विविधता की समस्यायें एक–दूसरे से पृथक् न होकर परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। पूर्व में आर्थिक विकास के लिए पर्यावरण पर दबाव दिया जाता था, लेकिन वर्तमान में मृदा अपरदन, प्रदूषण आदि समस्यायें आर्थिक विकास की असफलता के फलस्वरूप दृष्टिगत होने लगी हैं। अतः

पर्यावरण के प्रति समग्र दृष्टिकोण अपनाना संविकास का अभिन्न अंग है। प्रकृति में स्थानीय स्तर पर किये गये पर्यावरणीय ह्रास का प्रभाव विश्वव्यापी होने लगा है। ब्राजील के अमेजन घाटी में वनोन्मूलन किया गया जिसकी तीव्रता का प्रभाव विश्व की जलवायु पर परिलक्षित हुआ। लेकिन अनेक बार सूदूर स्थित विकसित देशों के कारण भी विकासशील देशों में पर्यावरण ह्रास को बढ़ावा मिलता है, उदाहरण के लिए जापान इमारती लकड़ी का 75 प्रतिशत, खनिजों तथा पेट्रोल की 99 प्रतिशत उपलब्धता के लिए विकासशील देशों पर पूर्णतया निर्भर है। इस प्रकार पारिस्थिकी एवं आर्थिक व्यवस्था स्थानीय, प्रादेशिक एवं राष्ट्रीय तथा विश्वव्यापी श्रृंखलाताओं से अंतर्सबंधित हैं, जिनके सम्बन्धों की कड़ी तलाशना अति कठिन कार्य है। स्पष्ट है कि संविकास की अवधारणा एवं पारिस्थितिकी में किसी को मुख्य एवं किसी को गौण न मानकर परस्पर अन्योन्याश्रित मानकर समन्वित विकास पर ध्यानाकर्षण करती है।

1-3 lrr ;k lrr fodkl

सतत् या संधृत विकास से अभिप्राय ऐसे विकास से है, जो मानव समाज की नियतकालिक आवश्यकताओं की पूर्ति मात्र को अपना लक्ष्य न माने वरन् भावी पीढ़ियों के लिए भी विकास का आधार बना रहे, अर्थात् बिना भावी पीढ़ी के हितों को आघात पहुंचाये वर्तमान समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाना सतत् या संधृत विकास कहलाता है। इसमें मानवीय आवश्यकताओं तथा जीवन की गुणवत्ता के लिए संसाधनों का ऐसा दोहन सम्मिलित है, जो पर्यावरण की सहनशीलता की सीमा से बाहर न हो तथा दबाव न बने, जिस दबाव के नीचे भावी पीढ़ियां दब जायें तथा विकास अवरूद्ध हो जाये। संधृत विकास ऐसे संरक्षण पर बल देता है, जो मानव द्वारा प्रकृति के दोहन से वर्तमान पीढ़ी को अधिकतम स्थायी लाभ प्रदान करते हुए भावी पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति की संभावना को क्षीण न करे।

1-4 lrr fodkl

संविकास पर्यावरण संरक्षण से अनेक अर्थों में भिन्नता रखता है। पर्यावरण संरक्षण में मुख्यतः पारिस्थितिकी तंत्र के घटकों में स्थिरता एवं क्रियाशीलता को सतत् बनाये रखता है, लेकिन संविकास मानवीय कल्याण को महत्त्व देता है। पर्यावरण संरक्षण विभिन्न संसाधनों का पृथक् रूप में बचाव करने पर बल देता है जबकि संरक्षण में पारिस्थितिकी तंत्र के उत्पादन एवं दोहन की दर को कम करने पर बल देता है, लेकिन संविकास की अवधारणा पारिस्थितिकी तंत्र की उत्पादकता बढ़ाने पर जोर देता है, इसमें जनसंख्या की मौलिक आवश्यकता ओं की पूर्ति को प्रमुख लक्ष्य माना जाता है। संविकास की अवधारणा में पारिस्थितिकी तंत्र की स्थिरता एवं क्रियाशीलता को बनाये रखने तथा पर्यावरण अनुकूल आर्थिक विकास की नीतियां बनाने पर बल दिया जाता है, जिनमें जैव संसाधनों का संरक्षण, जीव विविधता को बनाये रखना, पर्यावरण परक नियोजन, पारिस्थितिकी तंत्र की विद्यमान स्थिति का आकलन तथा विकास कार्यों से पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों का आकलन आदि प्रमुख कार्य हैं। इन सभी लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए स्थानीय स्तर पर कार्य करते हुए विश्वव्यापी सोच रखनी होगी क्योंकि स्थानीय स्तर पर पर्यावरणीय अतिदोहन के संचित प्रभाव कालांतर में विश्व व्यापी हो जाते हैं।

पृथ्वी तथा इसके निवासियों का भविष्य हमारी क्षमताओं से सम्बद्ध पर्यावरणीय अनुरक्षण तथा परिरक्षण पर निर्भर करता है। इसी संदर्भ में पर्यावरण के दीर्घकालिक अभिवृद्धि के लिए संधृत विकास की संकल्पना का विकास हुआ है। 1990 के दशक में यह माना जाने लगा कि पर्यावरणीय संसाधनों के अतिदोहन या अविवेकपूर्ण तरीकों से उपयोग करने पर पर्यावरणीय ह्रास तथा अस्थिरता उत्पन्न हो रही है। यह सर्वाधिक विकासशील देशों में देखा गया है।

पोषणीयता या संधृतता सभी प्राकृतिक पर्यारणीय तंत्रों का एक अंतःनिर्मित लक्षण है, जो मानवीय हस्तक्षेप को न्यूनतम स्तर पर स्वीकार करता है। यह किसी तंत्र की क्षमता तथा उसके सतत् प्रवाह को

अनुरक्षित रखने के लिए सम्बद्ध करता है, जिसके फलस्वरूप वह तंत्र अपना स्वस्थ अस्तित्व रख पाता है। पर्यावरणीय संसाधनों के मानवीय उपयोग तथा पर्यावरणीय तंत्रों में हस्तक्षेप के कारण यह अंतःनिर्मित क्षमता विकृत हो जाती है, जो इसे असंधृत बना देती है। इसके विपरीत अर्थशास्त्रियों का तर्क है कि संसाधनों के दोहन तथा अवनयन से शोध एवं विकास को बढ़ावा मिलता है तथा संसाधनों के नये विकल्पों के बारे में खोज की ओर अग्रसर होते हैं, लेकिन हर संभावना की भी एक सीमा होती है। संरक्षणवादी एवं पारिस्थितिकीविद् एक लंबे समय से प्राकृतिक पर्यावरणीय तंत्रों में विद्यमान पोषणीयता से अवगत थे, लेकिन संधृत विकास की संकल्पना का विकास दो दशक पूर्व ही हुआ। संधृत विकास शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग विश्व संरक्षण रणीनीति में 1980 में किया गया, लेकिन यह विस्तार से 1987 में पर्यावरण एवं विकास पर विश्व आयोग द्वारा प्रचारित किया गया। WCED के प्रतिवेदन 'Our Common Future' जिसे ब्रटलेण्ड प्रतिवेदन के नाम से भी जानते हैं, में सर्वप्रथम इसके व्यवस्थित रूप में परिभाषित किया गया। इसके अनुसार, ''भावी पीढ़ी की अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने की क्षमता में ह्रास किये बिना वर्तमान पीढ़ी की आवश्यकताओं को पूरा करना ही संधृत विकास है।''

एकल परिभाषा संधृतता या पोषणीयता के लिए विभिन्न विषयों से विचारों को लेकर समग्र किया गया, जिनमें अर्थशास्त्र से 'धीमा विकास या विकास नहीं', समाजशास्त्र से प्रविधि की समालोचना तथा पर्यावरणीय अध्ययनों से संविकास, संसाधन पर्यावरण कड़ी आदि प्रमुख हैं। इनके आधार पर संधृत विकास की परिभाषा का विभिन्न दृष्टिकोणों से विस्तार हुआ। वर्तमान में संधृत विकास की अनेक समानार्थी परिभाषी शब्दों का प्रयोग किया जा रहा है, जिनमें पोषणीयता, पोषणीय वृद्धि, पोषणीय आर्थिक विकास प्रमुख हैं। आस्ट्रेलिया में इसके लिए पारिस्थितिकीय पोषणीय विकास प्रयुक्त किया गया है। भारत में पोषणीय विकास, जीवनधारणीय विकास, टिकाऊ विकास, दीर्घकालीन विकास, सदाबहार विकास आदि को संधृत विकास के समानार्थी रूप में प्रयोग करते हैं।

1987 में यूक्रेन के चरनोबिल परमाणु विपदा के बाद WCED ने लंदन में एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसे 'ब्रुटडटलेंड आयोग' के नाम से जाना जाता है। इसके प्रमुख ग्रो हरलेम ब्रुड़लेण्ड ने शीघ्र ही इसकी शब्दावली में परिवर्तन किया तथा संधृत शब्द को इस साहित्य में अपनाया गया, जो विकास की सीमा को प्रतिपादित करता है। ब्रुडटलेण्ड आयोग ने विकास की सीमा को स्पष्ट करते हुए बताया कि इस सीमा का अर्थ नगण्य विकास नहीं है, वरन् वर्तमान तकनीकी की स्थिति तथा सामाजिक संगठन द्वारा पर्यावरणीय संसाधनों के उपयोग तथा मानवीय गतिविधियों के प्रभावों को सहन करने की जीवमण्डल की क्षमता में स्थित सीमा पर बल देता है। लम्बे समय से यह मान्यता रही है कि पृथ्वी तथा इसके निवासियों का भविष्य प्रकृति के अनुरक्षण एवं संचय की हमारी क्षमताओं पर आधारित रहा है। प्रकृति प्रदत्त जीवन निर्वाहन व्यवस्था को बचाने में हमारी क्षमताओं में कमी आते ही पर्यावरण असंतुलित हो जाता है। इसी संदर्भ में संधृत विकास से सम्बन्धित निम्न प्रसंग महत्त्वपूर्ण हैं–

- सभी नव्यकरणीय संसाधनों का पूर्ण उपयोग संधृत है।
- पृथ्वी पर जीवन की विविधता संरक्षित है।
- प्राकृतिक पर्यावरणीय तंत्रों का ह्रास कम हो गया है।

1-4-1 lrr fodkl dh fl)kUr

सतत विकास की धारणा है कि उपयुक्त प्रविधि एवं सामाजिक व्यवस्था द्वारा पारिस्थितिकी तंत्र से पर्याप्त मात्रा में संसाधनों की प्राप्ति हो सकती है, जो मानव समाज की वर्तमान एवं भावी जरूरतों की पूर्ति कर सकते हैं, स्पष्ट यह ऐसा विकास नहीं हो पर्यावरण में विद्यमान संसाधनों के उपयोग पर नियंत्रण रखे जैसा कि पर्यावरण संरक्षण की मान्यता है। लेकिन लेकिन यह पर्यावरण संरक्षण से हटकर संसाधनों के दोहन पर अंकुश नहीं लगाकर उनकी अभिवृद्धि पर बल देता है। जिसके परिणामस्वरूप मानव एवं पर्यावरण के

मध्य एक ऐसी परिवर्तनशील व्यवस्था का उद्‌भव होता है, जो संसाधनों के विदोहन, प्रौद्योगिकी विकास तथा संस्थागत परिवर्तनों के द्वारा मानव समाज की वर्तमान एवं भावी आवश्यकताओं के मध्य सामंजस्य स्थापित करने को महत्त्व देता है। इस प्रकार संधृत विकास निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित है–

- सामुदायिक जीवन की देखभाल एवं सम्मान करना।
- मानव जीवन की गुणवत्ता में सुधार।
- पृथ्वी की सहन क्षमता एवं विविधता का संरक्षण करना।
- अनव्यकरणीय संसाधनों की गुणवत्ता ह्रास को कम करना।
- पृथ्वी की निर्वाहन क्षमता को बनाये रखना।
- व्यक्तिगत दृष्टिकोण तथा नियमों में परिवर्तन।
- सक्षम समुदायों द्वारा अपने पर्यावरण की देखभाल करना।
- समग्र विकास तथा संरक्षण के लिए एक राष्ट्रीय आधार तैयार करना।
- विश्वव्यापी गठबन्धन का निर्माण करना।

इस प्रकार सतत विकास पर्यावरण के ऐसे सकारात्मक संरक्षण पर बल देता है, जिसमें पर्यावरण के जैविक तथा अजैविक घटकों के रक्षण, अनुरक्षण, पुनर्स्थापन, दीर्घकालिक दोहन एवं अभिवृद्धि को समग्र रूप में महत्त्व प्रदान किया गया है। इस प्रकार सतत विकास मं निम्नांकित मुद्दे समाहित हैं–

- lk/kuksa d mi;ksx d ifr:ik dh vUrih<h; my>u& इसमें इस तथ्य पर बल दिया जाता है कि पर्यावरणीय धरोहर को संरक्षित करने के लिए प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के बारे में कितनी प्रभावकारी निर्णयन प्रक्रिया अपनाई जाये ताकि भावी पीढ़ियों को लाभ मिल सके।
- fu"i{krk i.k lEcU/k& इसमें संसाधनों पर किसकी पहुंच अधिक है? प्रतियोगी दावेदारों में उपलब्ध संसाधनों का आवंटन कितनी ईमानदारी या पूर्णता के साथ है? आदि तथ्यों पर बल दिया जाता है।
- le; lLrj& लघु अवधि के आर्थिक लाभ या दीर्घ अवधि की पर्यावरणीय स्थिरता की दिशा में संसाधनों का आवंटन कितना निर्णय उन्मुखी है।

सतत विकास पर्यावरण ह्रास का न्यूनतम हानि पहुंचाने वाली प्रौद्योगिकी को विकास, जनसंख्या नियंत्रण, संसाधन संरक्षण, भावी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए वर्तमान संसाधन उपयोग की रणनीति बनाने आदि पर निर्भर है। यद्यपि यह पारिस्थितिकी तंत्र के उपयोग की कोई निरपेक्ष सीमा स्वीकार नहीं करता वरन् इसमें उपयुक्त प्रौद्योगिकी विकास द्वारा संसाधनों की अभिवृद्धि कर आवश्यकताओं की पूर्ति पर बल देता है।

2- ikÑfrd lalk/kuksa dk 'kks"k.k ,oa mudk i;koj.k rFkk vFk©;oLFkk ij izHkko

प्राकृतिक संसाधनों के विदोहन से अथवा शोषण से पर्यावरण और अर्थतंत्र पर पड़ने वाले प्रभावों को स्पष्ट करने के लिए प्राकृतिक संसाधनों के अर्थ को स्पष्ट करना आवश्यक है। जैसाकि जिमरसन ने कहा है– ''संसाधन सुरक्षा एवं समृद्धि दोनों के आधार हैं, वे शक्ति एवं सम्पत्ति की बुनियाद हैं।'' इस कथन से संसाधनों की मानव के लिए महत्ता और उसकी जैव भौतिक पर्यावरण पर निर्भरता का आभास मिलता है। यह भी कहा जा सकता है– जैव–भौतिक पर्यावरण की कोई भी वस्तु जो मानव की किसी भी आवश्यकता को पूरा करने में समर्थ हो, मानव उसकी पूर्ति, सहारा और सहायता पर निर्भर रह सकता हो तथा मानव में इन लाभों को प्राप्त करने की क्षमता हो, संसाधन कही जा सकती है। सारांशतः संसाधन एक ऐसी प्राकृतिक और मानवीय सम्पदा है जिसका उपयोग हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति में करते हैं। दूसरे शब्दों में मानवीय जीवन की प्रगत, विकास एवं अस्तित्व संसाधनों पर निर्भर करता है।

संसाधन प्रकृति के उन तत्त्वों को कहते हैं जिन्हें मनुष्य अपनी आवश्यकता के लिये उपयोग में लाता है। स्पष्ट है कि संसाधन परिवेश के महत्त्वपूर्ण घटक हैं जो भौतिक पर्यावरण और मानव समाज के मध्य अंतर्प्रक्रिया के आधार हैं। प्राकृतिक संसाधनों को दो प्रमुख भागों में बांटा जाता है– अजैव संसाधन और जैव संसाधन। मानव संसाधनों का केन्द्रीय बिन्दु है क्योंकि यह एक साथ संसाधन, संसाधन उपभोक्ता और संसाधन विनाशक है। अपनी शिक्षा, ज्ञान और तकनीकी से मानव संसाधनों की खोज कर उपयोग करता है और जाने अनजाने संसाधनों को क्षति पहुंचाता है। प्रकृति के साथ सामान्य प्रक्रिया कर मानव संसाधनों का उपयोग करता है लेकिन जब वह प्रकृति की अनदेखी करता है तो केवल संसाधनों का दोहर करता है। यह बेरूखी प्रवृत्ति संसाधनों को नष्ट करती है और तब मानव का प्रकृति के साथ सम्बन्ध बिगड़ जाता है जिससे पर्यावरणीय समस्यायें प्रकट होती हैं। प्राकृतिक व्यवस्था के अनुसार सभी जैव अजैव संघटक अपनी आनुपातिक सीमाओं में कार्य करते हैं। इनके मध्य संतुलन बनाये रखने के लिये प्रकृति ने पारिस्थैतिकी पिरामिड बना रखा है अर्थात् उत्पादक–उपभोक्ता की संख्या पारिस्थैतिकी के अनुसार घटती–बढ़ती है। संख्या पिरामिड में पेड़ों की संख्या सबसे अधिक, उन पर पलने वाले जीवों की संख्या कम और उन जीवों पर पलने वाले मांसाहारी जीवों की संख्या सबसे कम होनी चाहिए। लेकिन वन संसाधन के अत्यधिक दोहन के कारण संख्या पिरामिड उलट गया है। अर्थात् जीवों की तुलना में पेड़ कम हो गये हैं। ऐसा ही अविवेकपूर्ण दोहन अन्य प्राकृतिक संसाधनों का भी हो रहा है। मृदा के अविवेकपूर्ण उपयोग से वह बांझ होती जा रही है। ऊर्जा संसाधन पर बढ़ता दबाव जहां एक ओर ऊर्जा संकट को बढ़ा रहा है वहीं ऊर्जा उपयोग से प्रदूषण बढ़ रहा है। संसाधन के दोहन की रफ्तार इतनी तेज हो गई है कि लगता है मानव समाज अपनी अगली पीढ़ी के लिये कुछ भी नहीं बचा पायेगा।

संसाधन को उपयोगिता के आधार पर चार वर्गों में विभक्त किया जाता है– अप्रयोजनीय संसाधन, अप्रयुक्त संसाधन, संभाव्य संसाधन एवं गुप्त संसाधन। उपलब्धता के आधार पर संसाधनों को चार भागों में बांटा गया है– यथा सर्व सुलभ संसाधन, सामान्य सुलभ संसाधन, दुर्लभ सुलभ संसाधन और अद्वितीय संसाधन। सौर ऊर्जा प्रकाश और हवा आदि सर्वसुलभ संसाधन के रूप हैं। खनिज ऊर्जा स्रोत, वनस्पति पशु आदि सामान्य सुलभ संसाधन हैं। कुछ विशिष्ट खनिज दुर्लभ और अतिविशिष्ट खनिज अद्वितीय संसाधन कहे जाते हैं। इन संसाधनों की गुणवत्ता ही इनकी महत्ता को प्रकट करती है क्योंकि कुछ संसाधन बार–बार प्रयोग कियें जा सकते हैं जब कि कुछ का केवल एक बार प्रयोग किया जा सकता है इस दृष्टिकोण से संसाधनों को चार वर्गों में विभक्त किया गया है–

- टिकाऊ संसाधन
- गैर टिकाऊ संसाधन
- संवर्धनीय संसाधन
- असंवर्धनीय संसाधन।

टिकाऊ संसाधनों में मृदा, जल, वायु जैसे संसाधन आते जो युग–युग तक बने रहते हैं। खनिज, ऊर्जा स्रोत आदि गैर टिकाऊ संसाधन हैं जिनका भण्डार निश्चित है। वनस्पति और पशु ऐसे संसाधन हैं जिनका संवर्धन किया जा सकता है लेकिन बहता जल, सूर्य प्रकाश आदि का संवर्धन असंभव है। संसाधनों का उपयोग आदि उनकी गुणवत्ता के आधार पर न किया जाय तो प्रकृति–मानव सम्बन्ध में असंतुलन आ जाता है और कठिनाई का कारण बन जाता है। इसे पारिस्थैतिकी असंतुलन भी कहा जाता है। स्वस्थ जैव विकास के लिये संतुलित पारिस्थैतिकी आवश्यक है लेकिन संसाधनों के गलत ढंग से उपयोग के कारण बिगड़ता पर्यावरण पारिस्थैतिकी को असंतुलित बना देता है। उदाहरण के लिये यदि वृक्षों का कटान किया जाय लेकिन रोपण द्वारा संवर्धन न किया जाय तो वानस्पतिक आवरण घट जायेगा जिसके कारण अनेक जीवों का विनाश हो जायेगा जो उन पर आधारित रहते हैं। चूंकि वृक्ष प्राथमिक उत्पादक है इसलिये

पारिस्थैतिकी तंत्र की गत्यात्मकता के ये आधार बिन्दु हैं। वृक्षों के अभाव में वायुमण्डल की क्रिया अस्थिर हो जायेगी जिसके कारण मानव के क्रियाकलाप भी बाधित होंगे। वर्षा के अभाव में कृषि नष्ट होगी, पेय जल की समस्या कठिन होगी और बहुत सारे जल जीव विनष्ट हो जायेंगे जो मानव जीवन के लिये आवश्यक है। इसी प्रकार टिकाऊ संसाधनों का प्रयोग यदि विधि सम्मत ढंग से न किया जाय तो उनकी गुणवत्ता प्रभावित होगी। गैर टिकाऊ संसाधनों का प्रयोग सबसे अधिक समस्या प्रधान है। चूंकि ऐसे संसाधनों का भण्डार सीमित होता है, अतः इनका प्रयोग संरक्षण आधारित होना चाहिए। साथ ही इनके घटते भण्डार के कारण वैकल्पिक व्यवस्था भी आवश्यक है। संसाधनों का दोहन और उपयोग इस शताब्दी में जितना हुआ है उतना पिछली कई शताब्दियों में नहीं हुआ था। यदि इसी गति से इनका दोहन होता रहेगा तो अगली शताब्दी के लिये निश्चित ही संकट पैदा हो जायेगा। इस तथ्य के संदर्भ में विश्व के अनेक औद्योगिक देश अपने संसाधनों का संरक्षण प्रारंभ कर चुके हैं। विकसित देश अपने संसाधनों का संरक्षण कर अन्य विकासशील देशों के संसाधनों का बड़ी मात्रा में आयात की नीति अपना रहे हैं। प. जर्मनी, ब्रिटेन, फ्रांस, जापान और संयुक्त राज्य अमेरिका इस दिशा में अग्रणी देश हैं।

संसाधन उपयोग और पारिस्थितिकी में घनिष्ट सम्बन्ध है। उदाहरण के लिये वन सम्पदा का दोहन सभी मानव समाज–विकसित और विकासशील में होता है। जो समाज वृक्षों का काटन संतुलित ढंग से करता है वहां नये वृक्षों के उगाने के कारण संतुलन बना रहता है क्योंकि वन संवर्धनीय संसाधन हैं। लेकिन जहां संरक्षण विहीन वनों का कटान किय जाता है वहां पर्यावरणीय समस्यायें उठ खड़ी होती हैं। भारत में वृक्षों के प्रति जब तक दयाभाव रहा तब तक उनके काटन के कारण हजारों वर्षों तक कोई समस्या नहीं उपस्थित हुई जबकि आधुनिकता की आंधी में, वृहद् पैमाने पर काटन होने से अनेक पर्यावरणीय समस्यायें पैदा हो गई हैं जैसे भूमिक्षरण, बाढ़, भूमि स्खलन, चारा की कमी से पशु पालन का ह्रास, जलावन की कमी, गृह निर्माण सामग्री की कमी आदि। इन समस्याओं से पीड़ित होकर भारत का 'चिपको–आंदोलन' विश्वव्यापी वनसंरक्षण आंदोलन बन गया है।

औद्योगिकीकरण, नगरीकरण एवं आधुनिकीकरण की प्रवृत्ति से प्राकृतिक संसाधनों का अंधाधुंध दोहन होने लगा है। मनुष्य अपनी स्वार्थ की पूर्ति एवं विलासिता के जीवन–यापन के लिए प्रकृति के संसाधनों का निर्ममता से दोहर कर रहा है जिसका प्रभाव पर्यावरण के साथ–साथ वैश्विक अर्थव्यवस्था पर भी पड़ रहा है। व्यक्ति अपना जीवन स्तर उठाने के लिए धन का उचित उपयोग करता है। वह आय वृद्धि के साधन ढूंढता है और आर्थिक उत्पादन सम्बन्धी उद्योगों का संचालन करता है। वह उद्योग, कोयला, प्रेट्रोल, जीवाश्म, ईंधन, वनों आदि से प्राप्त पदार्थों एवं अन्य प्राकृतिक संसाधनों पर निर्भर रहता है। जनसंख्या वृद्धि के कारण आवश्यकताओं में वृद्धि हुयी। आवश्यकता की पूर्ति के लिए उत्पादन वृद्धि आवश्यक है और आधुनिक अर्थतंत्र उत्पादन वृद्धि के लिए वनों व प्राकृतिक संसाधनों का अनुचित दोहन करने से पीछे नहीं हटता। यदि प्राकृतिक संसाधन इसी प्रकार तेजी से ह्रास की ओर जाते रहें तो एक दिन समाप्त हो जायेंगे तथा समस्त अर्थतंत्र चरमरा जाएगा। अतः पर्यावरण के अंग ये संसाधन अर्थशास्त्र से प्रयत्यक्ष सम्बन्ध रखते हैं। पर्यावरण संतुलन के लिए पर्यावरण और उत्पादन में संतुलन होना आवश्यक है। प्रत्येक देश का तंत्र अपना होता है किंतु सभी देशों का आर्थिक तंत्र विश्व बाजारों के कच्चे माल, भोजन एवं उत्पादित सामग्री से जुड़ा हुआ है। इसलिए एक देश की अर्थव्यवस्था का प्रभाव दूसरे देशों में उसी फसल के खाद्य पदार्थों की कीमतें बढ़ जाती हैं।

वर्तमान में जहां तीव्रतर एवं अधिक जनसंख्या वृद्धि दर बेरोजगारी, गरीबी एवं खाद्यान्न अभाव का दुश्चक्र बनता जा रहा है, वहीं दूसरी ओर आर्थिक, सामाजिक विकास, गरीबी और खाद्यान्न अन्नपूर्ति के उन्मूलन के लिए जो भी नीतियां और उपागम कार्यान्वित हो रहे हैं, उनका दुष्प्रभाव पर्यावरण पर पड़ने से पर्यावरण नष्ट हो रहा है। जनसंख्या वृद्धि अधिक होने से विद्यमान संसाधनों पर दबाव पड़ता जाता है।

भोज्य सामग्री, ईंधन, परिवहन, उद्योग, व्यापार, शिक्षण–प्रशिक्षण, विभिन्न सेवाओं एवं वितरण प्रणालियों और अन्य सुविधाओं आदि पर प्रति इकाई भार बढ़ता जाता है। वस्तुतः विकास कार्यों के चलते पर्यावरण पर पहले की अपेक्षा अधिक प्रभाव पड़ रहा है। सभ्य और विवेकशील मानव समाज के सामने यही चुनौती है। मनुष्य आज कुछ गिने–चुने लोगों के हाथों में अर्थ सत्ता केन्द्रित है। जिसके अपने अपने स्वार्थ हैं। इन स्वार्थों की पूर्ति के लिए प्रत्येक राष्ट्र अंधाधुंध गति से प्रकृति के संसाधनों का शोषण कर रहा है। आज विश्व की 85 प्रतिशत आय का 23 प्रतिशत बहुत कम लोगों में इस्तेमाल होता है– ये वे लोग हैं जो धनी उपभोक्ता हैं, इसके विपरीत करीब 100 करोड़ लोग धनी नहीं हैं जो अत्यन्त निर्धन वर्ग से हैं वह तो केवल 26 रुपये प्रतिदिन पर गुजारा करता है। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि पर्यावरण के ध्वंस की भयावह स्थिति में यह हो रहा है कि मनुष्य की आधारभूत आवश्यकताओं को नजर अंदाज करके साधारण जरूरतों की तरफ ध्यान दिया जा रहा है, यह इसलिए हो रहा है क्योंकि उच्च वर्ग संसाधनों का प्रयोग स्वार्थ पूर्ति के लिए कर रहा है। मजदूर वर्ग बहुमंजिल इमारतें तो बनाता है परन्तु स्वयं अपने परिवार के साथ झुग्गी झोपड़ियों में जीवन व्यतीत करता है। उसकी दशाओं के एक अध्ययन के अनुसार–

- तीन बच्चों में से एक भूख का शिकार है।
- करीब 12 करोड़ लोग ऐसे हैं जिन्हें पीने का पानी नहीं मिलता।
- करीब 30 लाख बच्चे हर साल कुपोषणजनित बीमारियों से मरते हैं, जिनकों कि बचाया जा सकता है।
- 10 लाख औरतें हर वर्ष प्रजनन से सम्बन्धित बीमारियों के द्वारा काल के मुंह में चली जाती हैं।
- कम से कम 10 करोड़ युवक एवं युवतियां ऐसे हैं जो निरक्षर हैं और पढ़–लिख नहीं सकते।
- करीब 100 मिलियन प्राइमरी स्कूल जाने वाले बच्चे ऐसे हैं जो स्कूल ही नहीं जाते हैं।

उद्योगों का तीव्र आर्थिक विकास सामाजिक, आर्थिक समस्याओं के समाधान में भी सहायक नहीं हो सका है। निर्धन देश हो या धनी देश। बेरोजगारी और गरीबी का अनुपात औद्योगिक विकास के अनुपात में घटने की जगह बराबर बढ़ता चला गया। जिस कारण पूंजी और आर्थिक विकास कुछ हाथों में सिकुड़कर सिमट गया है। आधुनिक विकास ने भोगवादी संस्कृति को पनपाया है। उसे ही बलशाली बनाया है। इसी भोगवादी संस्कृति ने प्रकृति को अपना शत्रु मान लिया है। मनुष्य प्रकृति का स्वामी बन गया है और प्रौद्योगिकी का जो जाल उसने फैलाया है उसमें प्रकृति का शोषण प्रमुख लक्ष्य है। यह पश्चिम की दृष्टि है और इसके विपरीत भारतीय संस्कृति के शोषण की न होकर अपितु संरक्षण, समतोल श्रद्धा की रही है। प्रायः यह भी कहा जाता है कि यांत्रिक कौशल और प्रौद्योगिकी के वर्तमान विकास को नकारा मान लेने से क्या हम फिर से पाषाण–काल की ओर नहीं धकेल दिए जायेंगे। किन्तु यह चिंतन वस्तुओं के विकास के संदर्भ में तो उचित हो सकता है किंतु मनुष्यों के विकास के संदर्भ में नहीं। वस्तुओं के अधिकाधिक उपयोग और उपभोग का दृष्टिकोण भोगवाद पर आधारित है जिसकी आकांक्षा कभी समाप्त नहीं होती है। भारतीय चिंतन में यह कहा गया है कि प्रकृति सबका पेट भर सकती है, पर किसी एक का भी लालच पूरा नहीं कर सकती।

आर्थिक विकास या औद्योगिक समृद्धि का तात्पर्य यदि वस्तुओं का अम्बार खड़ा कर देने में ही निहित है तो यह मानवीय ऊर्जा और पर्यावरण की संस्कृति से कोई मेल नहीं खाता है। इसके विपरीत यदि लोगों को पहले से अधिक काम मिलने की अनुकूल परिस्थितियां विकसित होती हैं तो उसमें समग्र विकास की संभावनाएं तलाशी जा सकती है। जब अधिकतम लोगों को काम मिलते रहने की परिस्थितियां बन जाती है तो वहां विकास उत्पादन आधारित न होकर श्रम आधारित हो जाता है। यंत्र की जगह मानवश्रम और प्राकृतिक संपदा पर अवलम्बन बढ़ जाने से यथोचित संतुलन भी बना रह सकता है। वर्तमान औद्योगिक संस्कृति ने भौतिक वस्तुओं को मनुष्य जीवन में प्रमुख स्थान दिया है। अधिकाधिक उत्पादन के कारण मनुष्य

की सृजनात्मक क्षमता कम होती जा रही है। अधिक उत्पादन का तर्क तो हो ही नहीं सकता, क्योंकि प्राकृतिक संसाधनों के शोषण से और जिन संहारक शक्तियों के माध्यम से यह हासिल किया जा रहा है उससे अंततः बुराइयां और विषमताएं ही पैदा होती हैं। संसाधनों के शोषण से उपजी इस औद्योगिक संकृति ने गरीब को और अधिक गरीब बनाया है।

औद्योगिक विकास के वर्तमान ढांचे को बनाए रखने के लिए कीमत हमें चुकानी पड़ रही है उस पर यदि ठीक तरह से विचार करें तो इस नतीजे पर पहुंचेंगे कि वर्तमान औद्योगिक विकास का परिणाम क्या है? आज औद्योगिक रूप से उन्नत देशों में प्रमुख है– अमेरिका। प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से भी अमेरिका विश्व का महत्त्वपूर्ण देश है। अपने जीवन स्तर और विश्व में अपनी सर्वोच्चता बनाए रखने के लिए दुनिया के 40 प्रतिशत संसाधनों का इस्तेमाल अकेला अमेरिका करता है और केवल 6 प्रतिशत आबादी के लिए। दुनिया के औद्योगिक ढांचे को बनाए रखने के लिए कच्चे माल के रूप में जो प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध है। वे कितने समय तक पर्याप्त होंगे इसका आकलन अनेक सर्वेक्षणों के द्वारा किया गया है। इन सर्वेक्षणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि सभी प्राकृतिक संसाधन सीमित हैं और एक दिन वे चुकने वाले हैं। लेकिन यह सृष्टि कब तक मौजूद रहेगी– इस पर एक भी अध्ययन रिपोर्ट में कोई टिप्पणी नहीं मिलती है। विकास का यह स्वरूप एक तरफ अपने ही भारी बोझ से चरमरा रहा है और दूसरी तरफ उनसे उत्पन्न होने वाले प्रदूषण के खतरों से बचने का कोई उपाय नहीं सूझ रहा है। कोई भी विकास यदि प्रदूषणयुक्त है तो उसके दुष्चक्र से मुक्त होने के लिए की जाने वाली व्यवस्था आसान नहीं हो सकती। उदाहरण के तौरपर हम परमाणु ऊर्जा को ही लें। औद्योगिक विकास में ऊर्जा का योगदान सर्वाधिक और प्रमुख है। कोयला और तेल के निरन्तर समाप्त हो रहे भण्डारों के कारण वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत के तौरपर परमाणु ऊर्जा हमारी प्रौद्योगिकी का एक नायाब तोहफा माना गया, लेकिन बहुत शीघ्र ही इसकी हवा ने हमारे पर्यावरण को अपनी चपेट में ले लिया और अब यह समझ में आने लगा कि जिसे प्रौद्योगिकी की सर्वाधिक चमत्कारी और अमूल्य उपलब्धि माना गया वह कितनी विनाशकारी सिद्ध हो रही है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि संसाधनों के अत्यधिक दोहन से जहां पर्यावरण को क्षति पहुंची है उससे अर्थव्यवस्था का क्षेत्र भी अछूता नहीं रहा है। संसाधनों के अंधाधुंध प्रयोग के कारण अमीर और अधिक अमीर होते जा रहे हैं तथा गरीब और अधिक गरीब हो रहे हैं। विकसित और विकासशील देशों के बीच की असमानता आय, जीवन–स्तर, आधारभूत सुविधाओं एवं अन्य सभी आधारों पर प्रायः बढ़ती ही जा रही है। विकास की इस असमानता से जहां एक ओर वर्तमान विकास से प्रत्येक व्यक्ति लाभान्वित नहीं हो पाया है वहीं, दूसरी ओर भविष्य के विकास का प्रश्न भी शंका की दृष्टि से देखा जाने लगा है। किसी भी देश की आर्थिक प्रगति की रफ्तार को बढ़ाने के उद्देश्य से किया जाने वाला औद्योगिक विस्तार आर्थिक विकास को दृष्टिकोण से तो उचित हो सकता है किंतु उससे उत्पन्न होने वाले अन्य सामाजिक प्रभाव निश्चय ही अवांछनीय हैं। औद्योगिकीरण से उत्पन्न प्रभाव शीघ्र परिलक्षित नहीं होते हैं परन्तु उनके संचयी प्रभाव इतने विकट एवं भयावह होते हैं कि उनसे प्राकृतिक पर्यावरण का मौलिक स्वरूप एवं अर्थव्यवस्था का स्वरूप ही बदल जायेगा। अतएव आज ऐसे सतत् विकास की आवश्यकता है जो पर्यावरण और अर्थव्यवस्था दोनों के विकास एवं संरक्षण में सहायक हो अन्यथा वर्तमान विकास की अवधारणा मनुष्य के विनाश का ही मार्ग प्रशस्त करेगी।

3- i;koj.k iznw"k.k

विगत दो दशकों में पर्यावरणीय समस्याओं ने सर्वाधिक लोगों का ध्यान आकृष्ट किया है। पर्यावरण अवनयन, प्रदूषण, भूमण्डलीय ताप वृद्धि, ओजोन क्षरण, अम्ल वर्षा, अकाल, बाढ, सूखा, ईंधन की कमी, जलाऊ लकड़ी एवं चारे की कमी, निरन्तर बढ़ते हुए रसायनों के प्रयोग एवं रेडियोधर्मिता से उत्पन्न, जल,

थल, वायु व ध्वनि प्रदूषण के संकट के प्रति विश्व स्तर पर लोगों में चिंता बढ़ी है। दुनिया का कोई देश और नागरिक इन चिंताओं से वंचित नहीं रहा है।

विकास की प्रक्रिया अपने आप में पर्यावरण ह्रास का सबसे बड़ा कारण है। निर्धनता भी सबसे घातक प्रदूषण है जिसके उन्मूलन के उपाय पर्यावरण संवर्द्धन से कहीं अधिक कठिन है। निर्धनता के निराकरण के लिए पर्यावरण का निरन्तर शोषण किया जाता है। गरीबी को दूर करके विकास का मार्ग प्रशस्त करने का प्रत्येक प्रयास पर्यावरण के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ है। पर्यावरण पर अनेकानेक कारणों से दबाव पड़ता है। निर्धनता के अतिरिक्त अज्ञानता, अभिलाषा, उच्च आकांक्षा, परम्परा, मौसम, भौगोलिक स्थिति, प्रौद्योगिकी एवं तकनीकी अतिक्रमण निरन्तर पर्यावरण पर दबाव बढ़ा रहे हैं। विकास और प्रगति की राह पर मानव के बढ़ते चरण पर्यावरण पर भार डालते हैं, यदि कहें कि पृथ्वी की आत्मा को रौंध डालते हैं तो अतिश्योक्ति नहीं होगी।

आज मानवता सचमुच प्रकृति से अपने किये की क्षमा मांग रही है। इसमें भी उसका अपना स्वार्थ निहित है। पर्यावरण संवर्द्धन, संरक्षण, नियोजन या प्रबंधन की बात हम स्वेच्छा से नहीं कर रहे हैं। मानव की नियत को पहचान कर नियति ने उसे उसके परिवेश की चिंता करने को बाध्य कर दिया है।

पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलन की पृथ्वी शिखर संगोष्ठी में भारत के पूर्व प्रधानमंत्री, पी.वी. नरसिम्हाराव ने 12 जून, 1992 को अपने भाषण में कहा था– हम एक ही ग्रह के निवासी हैं किन्तु हमारी दुनिया अलग–अलग है। एक ओर प्रचुरता की दुनिया है, जो सम्पन्नता और प्रदूषण पैदा करती है। दूसरी ओर अभावों की दुनिया है, जहां विपन्नता के कारण जीवन–स्तर नीचे गिरता है। न तो यहां स्थायी शांति आश्वस्त हो सकती है और न स्थायी विकास। हमें इस बात के प्रयास करने होंगे कि हम प्रकृति से कितना लें जो हमारे गुजारे के लिए आवश्यक हो, और कितना छोड़ें कि पृथ्वी के भविष्य के लिए अनिवार्य हो।

स्टॉकहोम सम्मेलन (1972) में इंदिरा गांधी ने कहा था कि जब तक हमारे एक ही ग्रह में कई दुनिया अपने–अपने हिस्से बंटाती रहेंगी, तब तक इस पर जीवन का स्थायी अस्तित्व बनाये रखने के लिए हम अधिक कुछ नहीं कर सकते। आज यह स्पष्ट हो गया है कि हम विकास के वायदे के बिना पर्यावरण संरक्षण नहीं कर सकते और पर्यावरण संरक्षण के बिना स्थायी विकास भी नहीं कर सकते। अतः दोनों में संतुलन स्थापित करना नितान्त आवश्यकहै।

महात्मा गांधी अपनी स्वाभाविक सादगी से जीवन की आवश्यकताओं को समेटने का संदेश देते थे। वे कहते थे प्रत्येक मनुष्य की आवश्यकता के लिए हमारी दुनिया में पर्याप्त संसाधन हैं, परन्तु मनुष्य के लालच के लिए नहीं है। यह मानव के लालच का ही परिणाम है कि प्रतिवर्ष दो हजार करोड़ टन CO_2 औद्योगिक प्रदूषण के कारण वायु में घुल रही है। विश्व की दो सौ करोड़ शहरी जनसंख्या प्रदूषित वायु ग्रहण करके श्वास की तकलीफ से त्रस्त है। हरितगृह गैसों की वृद्धि से भूमण्डलीय तापमान में प्रतिवर्ष 0.02^oC की दर से वृद्धि हो रही है। आगामी 100 वर्षों में पृथ्वी का तापमान 3^o से 7^o सेंटीग्रेड तक बढ़ने वाला है, जिसके कारण समुद्री जल के अतिक्रमण से अनेक आबाद क्षेत्र डूबने वाले हैं। ओजोन परत में होने वाले छिद्र वायुमण्डल का सम्पूर्ण रसायन शास्त्र बदलने वाले हैं। पर्यावरण प्रबंधन मानव का प्रकृति के साथ यथोचित समायोजन से सम्बन्धित है, जिसमें पारिस्थितिक स्थिरता को अव्यवस्थित किये बिना प्राकृतिक संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग किया जा सकता है। पर्यावरण प्रबन्धन के निम्न आधारभूत पक्ष होते हैं–

- मानव समाज का बहुमुखी विकास करने की प्रक्रिया में विविध विकल्पों पर विचार तथा जीवन की गुणवत्ता बनाये रखने के लिए अनुकूलतम कार्य–विधि का चयन।
- मानव–पर्यावरण सम्बन्धों में संतुलन बनाये रखना।

- उत्पादन और पर्यावरण में धनात्मक सहसम्बन्ध स्थापित करने वाली नीति का निर्धारण।
- अनुचित और असफल नीतियों में सुधार।
- लाभदायक आय में वृद्धि का मार्ग प्रशस्त करने हेतु संसाधन और तकनीकी में संतुलन।
- लक्ष्य निर्धारित नीति का चयन।
- पर्यावरण एवं संविकास के विशिष्ट पक्षों से सम्बन्धित समस्याओं, सुविधाओं तथा व्यवस्थाओं का मूल्यांकन जो पर्यावरण प्रबन्धन का आधार बन सकें।

पर्यावरण प्रबन्धन को प्रभावकारी और व्यावहारिक बनाने के लिए विकास की योजनाओं के क्रियान्वयन हेतु नियोजित ढंग से प्राथमिकताओं के आधार पर चरणबद्ध कार्य योजना का निर्माण किया जाता है। आर्थिक विकास और सामाजिक प्रगति एक सतत् प्रक्रिया होती है। देश और काल के अनुसार इस प्रक्रिया की गति में परिवर्तन आता है। संस्थाएँ, व्यवस्थाएँ और लोग बदलते हैं। तकनीकी स्तर में बदलाव आता है। परिवेश की परिवर्तनशीलता को दृष्टिगत रखकर पर्यावरण प्रबन्धन हेतु अल्पकालिक और दीर्घकालिक नियोजन हेतु आवश्यकता नुसार नीतियां निर्धारित करनी पड़ती है। पर्यावरण की गणवत्ता को प्रबन्धन में सर्वोपरि स्थान दिया जाता है।

टी.एन. खुश के अनुसार, 'पर्यावरण प्रबन्ध का केन्द्रीय विषय प्राकृतिक एवं पारिस्थितिक पर्यावरण पर मानव कार्यकलाप का दबाव कम करना है जो कि संसाधनों के सदुपयोग से संभव है।

The central theme of environmental management is reduction or minimization of the impact of human activities on the physical and ecological environment. It is an endeavor to avoid the overuse, misuse and abuse of the resources in the environment.

उक्त परिभाषा में पर्यावरण संसाधनों का इस कुशलता के साथ सदुपयोग करने पर बल दिया गया है जिससे पारिस्थितिक तंत्र को कोई आंच न आये। इसका मूल दर्शन पर्यावरणीय गुणवत्ता को सर्वोपरि स्थान प्रदान करना है। इस प्रकार पर्यावरण प्रबन्धन में एक ओर संसाधनों के उपयोग से सामाजिक–आर्थिक विकास पर बल दिया जाता है तथा दूसरी ओर पर्यावरण की गुणवत्ता के परीक्षण की बात की जाती है। विकास यदि वस्तुनिष्ठ है तो गुणवत्ता व्यक्तिनिष्ठ है। पर्यावरण प्रबन्धन में इन दोनों का तादात्म्य रखना पड़ता है। उक्त परिभाषा का भाव यही है कि–

- प्राकृतिक संसाधनों का अविवेकपूर्ण दोहन बंद हो,
- पर्यावरण और संसाधनों का आर्थिक महत्त्व बढ़ाया जावे,
- पर्यावरण तंत्र को संरक्षण प्रदान किया जावे और
- भावी संतति हेतु संसाधन एवं पर्यावरण का परिरक्षण किया जावे।

टी.ओ. रियोरडन के अनुसार, 'इच्छित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु विभिन्न प्राप्त विकल्पों में से सर्वोत्तम विकल्प का विवेकपूर्ण चयन करना पर्यावरण प्रबन्धन का मूल आधार होना चाहिए। प्रबन्धन में अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक उद्देश्यों की प्रप्ति हेतु रणनीतियां अपनाई जाती हैं किन्तु दीर्घकालिक उद्देश्यों की पूर्ति को अधिक महत्त्व प्रदान किया जाता है।

एस.पोस्टल (1992) ने पर्यावरण प्रबन्धन की अपरिहार्यता को रेखांकित करते हुए कहा है कि बीसवीं शताब्दी का अंतिम दशक सुख–दुःख के साथ पृथ्वी और उसके निवासियों के लिए छलपूर्ण दशक रहा। ओजोन क्षरण, कॉर्बन डाइऑक्साइड की मात्रा में वृद्धि, तापमान में वृद्धि, विश्व जनसंख्या में वृद्धि ने इस दशक में समस्यापूर्ण पर्यावरणीय परिदृश्य प्रस्तुत किया है। डेनिस मीडोज (1971) की मान्यता है कि पर्यावरण प्रबन्धन की संकल्पना पर्यावरण प्रतिरूप से सम्बद्ध है जो पदार्थों की आपूर्ति में वृद्धि के साथ उत्पन्न सीमितताओं एवं चुनौतिपूर्ण समस्याओं का निष्पादन करने हेतु नीतियों को समाहित करता है। मानव

द्वारा आर्थिक विकास एवं सामाजिक प्रगति के प्रयासों ने मानव एवं पर्यावरण के मध्य मधुर सम्बन्धों को विषाक्त कर दिया है तथा अनेकानेक पर्यावरणीय समस्याओं को उत्पन्न कर दिया है।

3-1 i;koj.k izcU/ku dh fofo/k i{k

पर्यावरण प्रबन्धन की अवधारणा एक ऐसी कार्ययोजना के निर्माण पर आधारित है जिसमें ह्रासमान पर्यावरण के कारणों की पहचान, उसका नियमन और विगत अनुभवों के प्रकाश में भविष्य की संभावनाओं के परिप्रेक्ष्य में अल्प एवं दीर्घकालिक उपायों का निर्माण किया जा सके, ताकि पर्यावरण की गुणवत्ता और विकास साथ–साथ चल सके। अतः गुणवत्ता और विकास पर्यावरण प्रबन्धन संकल्पना के दो आधार स्तम्भ हैं। गुणवत्ता व्यक्तिनिश्ठ होने के कारण सर्वमान्य स्तर पर प्राप्त करना पर्यावरण प्रबन्धन की सबसे बड़ी समस्या होती है। विकास वस्तुनिश्ठ होने के कारण पर्यावरण संवर्द्धन की सबसे बड़ी समस्या है। विकास की अंतिम परिसीमा का निर्धारण पारिस्थितिकी के परिप्रेक्ष्य में करना अनिवार्य हो जाय तो उसका प्रबन्धन करना बड़ा कठिन हो जाता है। पर्यावरण प्रबन्धन की गुणवत्ता एवं विकास पर आधारित कार्ययोजना स्थानीय, क्षेत्रीय, राश्ट्रीय या अंतर्राश्ट्रीय स्तर पर क्रियान्वित करने के लिए अल्पकालिक या दीर्घकालिक या दोनों कालों की रणनीति को सम्पूर्ण जनभागीदारी के साथ व्यवहार में लाना ही उसकी सफलता की कुंजी है। पर्यावरण प्रबन्धन के विविध पक्षों को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है–

पर्यावरण प्रबन्ध के आधार स्तम्भ–

- पर्यावरणीय गुणवत्ता
- सामाजिक–आर्थिक विकास

पर्यावरण प्रबन्धन की कार्ययोजना–

- स्थानीय स्तर पर
- क्षेत्रीय स्तर पर
- राष्ट्रीय स्तर पर
- विश्व स्तर पर

पर्यावरण प्रबन्धन की रणनीति

- अल्पकालिक रणनीति
- दीर्घकालिक रणनीति

पर्यावरण ह्रास की काली छाया से बाहर निकलने का प्रयास पर्यावरण प्रबन्धन है। आर्थिक विकास की लिप्सा में प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध एवं अविवेकशील भाोषण से पर्यावरण ह्रास भ्रुरू हुआ। पर्यावरण ह्रास की परिणति प्रदूशण के रूप में प्रकट हुई। इस प्रदूशण से योजनाबद्ध लड़ने की रणनीति पर्यावरण प्रबन्धन द्वारा निर्मित की जाती है। पर्यावरण प्रबन्धन की परिणति पर्यावरण संवर्द्धन के रूप में प्रकट होने की आशा की जाती है।

पर्यावरण संवर्द्धन की भ्राुभकामना सैद्धान्तिक रूप से फलदायी साबित नहीं होगी। अपितु संवर्द्धन प्रक्रिया में सम्पूर्ण जनभागीदारी से फलीभूत होगी। जनभागीदारी के लिए जनचेतना, जन–चेतना के लिए वातावरण निर्माण और वातावरण निर्माण के लिए शिक्षा और प्रशिक्षण की आवश्यकता होगी। शिक्षा और प्रशिक्षण का सम्पूर्ण प्रबन्धन करना होगा जो कपर्यावरण प्रबन्धन के अभिन्न अंग के रूप में कार्य करेगा। पर्यावरणीय प्रबन्धन प्रक्रिया का वर्गीकरण निम्न प्रकार किया गया है–

3-2 i;koj.k izcU/ku dh izfØ;k

3-2-1 okrkoj.k fuekZ.k

पर्यावरण प्रबन्धन की प्रक्रिया की सफलता उसके वातावरण निर्माण की सफलता पर निर्भर होती है। समाज की सबसे छोटी इकाई घर में यदि सभी का सहयोग प्राप्त न हो तो गृहिणी के लिए अपने घर का आंगन भी साफ रखना दुष्कर हो जाता है। इसलिए पर्यावरण को स्वच्छ और जीवधारियों के आवस्यानुकूल बनाने के लिए सर्वप्रथम ऐसे वातावरण या माहौल का निर्माण किया जाय जिसमें सभी लोग स्वेच्छा से शामिल होकर दायित्वपूर्वक पर्यावरण संवर्द्धन प्रक्रिया की मुख्यधारा के साथ चल पड़ें। इस कार्य को अंजाम देने के लिए प्रिंटमीडिया, श्रव्य–मीडिया, दृश्यमीडिया–यथा टीवी, सिनेमा, नाटक मण्डली, गायन मण्डली आदि का सहयोग लेकर पर्यावरण सुधार एवं संवर्द्धन के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण करना पर्यावरण प्रबन्धन प्रक्रिया की प्रथम आवश्यकता होती है।

3-2-2 tu psruk

जब एक बार पर्यावरण सुधार और संवर्द्धन का वातावरण बन जाता है, तो लोग स्वतः उनके कार्यकलापों द्वारा परिवेश को होने वाली क्षति के प्रति सचेत होने लगते हैं। वातावरण से जनचेतना जागृत हो जाती है। जन–जागृति से पर्यावरण प्रबन्धकों का कार्य सरल हो जाता है। सुधार प्रक्रिया की गति में तीव्रता आ जाती है। पर्यावरण कार्यक्रम एक जन आंदोलन का रूप ले सकता है, और एक रचनात्मक जन आंदोलन सदैव सफल होता है तथा उसकी परिणति का फल मीठा होता है। अतः पर्यावरण प्रबन्धन में जन–जागृति का महत्त्वपूर्ण स्थान होना चाहिए।

3-3 i;koj.kh; f'k{kk ,oa izf'k{k.k

3-3-1 lalk/ku izcU/ku

पर्यावरणीय शिक्षा और प्रशिक्षण का प्रथम पक्ष प्राप्त संसाधनों का प्रबन्धन करना होता है। संसाधनों का उचित प्रबन्धन करने के लिए उपलब्ध संसाधनों का आकलन करके तद्नुसार उनके परिरक्षण तथ संरक्षण के उपाय किये जाते हैं। दुर्लभ संसाधनों का परिरक्षण तथा सीमित संसाधनों का संरक्षण पर्यावरण उन्नयन की प्रक्रिया का मार्ग प्रशस्त करता है। पर्यावरण प्रदूषण में निरन्तर हो रही वृद्धि के कारण आज हवा, पानी, मिट्टी, वनस्पति, खनिज सम्पदा, वन्य प्राणी और आनुवांशिकी को संरक्षित करना नितान्त आवश्यक हो गया है। संसाधन प्रबन्धन की शिक्षा का प्रसार करके तथा प्रशिक्षित दलों को तैयार करके संसाधन संवर्द्धन और संरक्षण के लिए तैनात किया जाना समय की आवश्यकता बन चुका है।

3-3-2 rduhdh lao)Zu

पर्यावरण शिक्षा एवं प्रशिक्षण के द्वारा संसाधन दोहन और उनके उपयोग की परम्परागत तकनीकी में सुधार तथा नई तकनीक का विकास किया जा सकता है। कृषि, उद्योग, खनन, विनिर्माण, परिवहन एवं यातायात, संचार, भवन निर्माण, ऊर्जा का उपभोग एवं उत्पादन, वैकल्पिक स्रोतों का विकास आदि के लिए तकनीकी संवर्द्धन आवश्यक है। तकनीकी शिक्षा एवं प्रशिक्षण के लिए विभिन्न पक्षों पर विचार किया जाना चाहिए, यथा– उत्पादन, उपभोग, विनिमय, संरक्षण और सुरक्षा तकनीक में सुधार एवं संवर्द्धन।

3-4 i;koj.k vock/ku

पर्यावरण का अवबोध पर्यावरण की पहचान से आता है। पर्यावरण की पहचान मनुष्य का जन्मजात गुण है। पर्यावरण बोध उस जागरूकता एवं भविष्य द्रष्टा गुण का नाम है जो मनुष्य में प्रकृति प्रेम, प्रकृति सद्भाव और सम्मंजन की प्रवृत्ति को जाग्रत करता है। पर्यावरण बोध से पर्यावरण परिरक्षा और संरक्षण का विचार पैदा होता है। शिक्षा मनुष्य को जागरूक बनाकर समय और शक्ति का सदुपयोग करना सिखाती है।

संस्कार मनुष्य के आचरण को नियंत्रित करते हैं। जापान में सीमित कृषि भूमि के उपयोग के कारण वहां के जनमानस में जन्मजात प्रकृति प्रेम पाया जाता है। वहां के बच्चे वृक्षों की टहनियां और फूल नहीं तोड़ते अपितु उनके संरक्षण के प्रति अधिक सचेत रहते हैं। पर्यावरण के प्रति जनचेतना के इसी लगाव का नाम पर्यावरण बोध है।

पर्यावरण बोध आवश्यक इसलिए है कि इससे निर्णय प्रक्रिया में सहायता मिलती है। पर्यावरण बोध से प्रेरित समाज स्वयंमेव इसे जन जागृति का आधार बना देता है। इसके अभाव में मानव का ज्ञान और आचरण प्रकृति से सामंजस्य स्थापित करने में चूक जाते हैं। यह चूक ऊपर से नीचे तक होती है। पर्यावरण बोध के अभाव में शुद्ध लाभकारी नीतियां नहीं बन पाती है। नीतियों के क्रियान्वयन में दोषपूर्ण आचरण समाहित हो जाता है। साधारण कार्यकर्त्ता की गलतियां और आम आदमी की अनदेखी जैसे जीने की आदत बन जाती है। पर्यावरण बोध दूषित आदत को सुधारने के लिए आवश्यक है। पर्यावरण बोध के अभाव में लागू की गई सरकारी नीतियों का विरोध होता है। योजनाएं अधूरी रह जाती है अथवा विलम्ब से पूरी होती है, या फिर पूरी होने के बाद भी अपेक्षित लाभ देने के बजाय हानिकारक साबित होती है। इनके उदाहरण दिये जा सकते हैं। जैसे राजस्थान नहर योजना बनी, देर सबेर लागू हुई, आंशिक लाभ भी प्राप्त हुआ, किन्तु इससे होने वाली दीर्घकालिक हानि का आकलन करने पर नीति–निर्माताओं के हाथ–पैर फूलने लगते हैं। सेम की असाध्य समस्या विकराल रूप धारण कर रही है। पर्यावरण बोध मरुस्थल की ठण्डी रातों का महत्त्व बतलाता है। आवश्यकता से अधिक छेड़छाड़ करने से रोकने का पाठ सिखाता है। यह प्रबन्धन प्रक्रिया की आवश्यक कड़ी है।

3-5- izfØ;k dk fØ;kUo;u

पर्यावरण प्रबन्धन की प्रक्रिया में जनचेतना, संसाधन प्रबंधन एवं तकनीकी संवर्द्धन तथा पर्यावरण अवबोधन के तीन चरण पूर्ण होने पर प्रथम प्रायोगिक तौर पर और उसके बाद योजना का वास्तविक क्रियान्वयन किया जाना चाहिए। योजना को मूर्त रूप देना तभी हितकारी होगा जबकि वह प्रायोगिक जांच में सफल पाई गई है। प्रक्रिया के क्रियान्वयन में पूर्व संचालित योजनाओं की असफलता को दोहराने की गुंजाइश नहीं होनी चाहिए। प्रक्रिया चूंकि संवर्द्धित तकनीक और संसाधनों के समुचित प्रबन्धन पर आधारित होती है तथा उसमें यथोचित जनभागीदारी होती है, इसलिए इसे सुचारु रूप से निर्बाध गत से संचालित होना चाहिए। अनेक औद्योगिक प्रतिष्ठान और छोटी इकाइयां प्रक्रिया के बीच में ही बीमार हो जाती है, उन्हें फिर से स्वस्थ करने में अपव्यय होता है अथवा उन्हें मृत घोषित करना पड़ता है। दोनों दशाओं में घाटे का सौदा होता है।

3-6- izfØ;k dk eY;kdu

कार्ययोजना के पर्यावरणीय प्रभावों का मूल्यांकन समय–समय पर करते रहना आवश्यक होता है। सही मूल्यांकन ही सही दिग्दर्शन कर सकता है। 1980 से पूर्व क्लोफ्लोरो कार्बन के दुष्प्रभाव से विश्व अपरिचित था। अण्टार्कटिका के दल ने ओजोन परत में छेद का रहस्योद्घाटन करके इसका पुनर्मूल्यांकन का प्रश्न उठाया। जांच हुई और छेद की पुष्टि की गई। इस प्रकार के लोक कल्याणकारी मूल्यांकन के बाद ऐसी घातक गैस का उत्पादन और प्रयोग कम या बंद होना चाहिए। इसका कोई सुरक्षित विकल्प खोजना चाहिए।

पर्यावरण प्रबन्धन में वर्तमान सामाजिक आर्थिक विकास की सभी प्रक्रियाओं के मूल्यांकन के साथ–साथ नई कार्य योजनाओं के भावी मूल्यांकन हेतु भी रणनीति निर्धारित करनी चाहिये, जिससे कि प्रबन्धन का ठोस आधार सुनिश्चित हो सके। संसाधन सर्वेक्षण, संसाधन उपयोग की दर, भावी मांग की

संभावना पर्यावरण ह्रास, वर्तमान समस्याएं एवं उनका प्रभाव आदि पहलू मूल्यांकन में समाहित किये जा सकते हैं।

3-7 i;koj.k izcU/ku dh v/;;u fof/k ,oa mikxe

पर्यावरण के असंतुलन ने पर्यावरण प्रबन्धन की संकल्पना को जन्म दिया है। पर्यावरण प्रबन्धन के अध्ययन की कतिपय आवश्यक उपागमों का संक्षिप्त विवरण यहां प्रस्तुत किया गया है–

1. तकनीकी सुधार एवं संवर्द्धन उपागम

- उत्पादन तकनीक में सुधार
- उपभोग तकनीक में सुधार
- विनिमय तकनीक में सुधार
- संरक्षण तकनीक में सुधार
- पारिस्थितिकी तकनीक में सुधार
- सुरक्षा तकनीक में सुधार

2. संसाधन संरक्षण उपागम

- वन संरक्षण
- जल संरक्षण
- मृदा संरक्षण
- खनिज संरक्षण
- ऊर्जा संरक्षण
- चरागाह संरक्षण
- आनुवांशिकी संरक्षण

3. प्रादेशिक उपागम

- स्थानीय पर्यावरण प्रबन्धन
- प्रादेशिक पर्यावरण प्रबन्धन
- विश्व पर्यावरण प्रबन्धन

4. सामयिक उपागम

- पर्यावरण प्रबन्धन का पूर्वानुभव
- पर्यावरण अवनयन का वर्तमान स्तर
- पर्यावरण संवर्द्धन की भावी योजना

5. संविकास उपागम

- संतुलित विकास
- समन्वित विकास
- सतत् विकास

3-7-1- rduhdh lq/kkj ,oa lo)Zu mikxe

3-7-1-1 mRiknu rduhd esa lq/kkj

'बढ़ते मुंह, घटते खलिहान' की कहावत जनसंख्या वृद्धि से जुड़ी हुई है। कृषि तकनीक में सुधार, रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग, फसलों की बीमारियों की कीटनाशकों से रोकथाम और सिंचाई प्रणाली का विकास करके 'हरित क्रांति' के द्वारा खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त करना, उत्पादन तकनीक में सुधार का एक उदाहरण है, किन्तु इस तकनीक ने त्वरित गति से उत्पादन में वृद्धि उपज की मात्रा बढ़ाने के साथ–साथ जिन दूरगामी दुष्प्रभावों को जन्म दिया है, वह सर्वविदित है। इसलिए इस उत्पादन तकनीक में सुधार और संवर्द्धन की आवश्यकता प्रतीत होने लगी है। यही हाल औद्योगिक, खनन एवं अन्य उत्पादन क्षेत्रों का हो रहा है।

3-7-1-2 miHkksx rduhd e: l/kkj

संसाधनों के अविवेकपूर्ण शोषण की वर्तमान तकनीक के संदर्भ में भौतिकवादी अतिशोषण की पद्धति में सुधार किये जाने की आवश्यकता है। उपभोक्तावादी संस्कृति से आवश्यकताएं निरन्तर बढ़ रही हैं और संसाधन घटते जा रहे हैं। आज ऐसी तकनीक की आवश्यकता है जो थोड़े से संसाधनों से अधिकतम आवश्यकता ओं की पूर्ति करने में सक्षम हो। वस्तुओं की गुणवत्ता के लिए उपभोक्ता मंच इसी दिशा में किया गया एक प्रयास है, किन्तु वस्तुओं के अभाव को दूर करने वाली भी कोई उपभोग तकनीक होनी चाहिए।

3-7-1-3 fofue; rduhd e: l/kkj

विश्व में आर्थिक विषमता को दूर करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय व्यापार, बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा निवेश, आर्थिक समझौते और संगठन वर्तमान विनिमय पद्धति के बेहतरीन उदाहरण हैं। राष्ट्रीय और प्रादेशिक स्तर पर भी व्यापार–विनिमय ने अच्छी उन्नति की है। व्यापार–विनिमय के साथ यातायात एवं परिवहन के साधनों में अप्रत्याशित वृद्धि हुई है। फलस्वरूप वातावरण में करोड़ो टन कार्बन–डाई ऑक्साइड घुलने से शहरों का तापमान बढ़ने लगा है। शहर ऊष्मा की भट्टियां बनते जा रहे हैं। तीव्र गति से बढ़ते हुए स्वचालित वाहनों ने हवा में जहर घोलकर उसे श्वास लेने योग्य नहीं छोड़ा है। दिल्ली में हजारों पुराने वाहनों को नष्ट कर देने मात्र से क्या वायु प्रदूषण की समस्या का हल हो जायेगा? वैज्ञानिकों और शेधकर्त्ताओं के समक्ष विनिमय तकनीक में सुधार की एक बड़ी समस्या चुनौती बनकर खड़ी हुई है।

3-7-1-4 lj{k.k rduhd e: l/kkj

संवर्द्धनीय संसाधनों पर आधारित तकनीक में सुधार करके असंवर्द्धनीय सीमित संसाधनों को संरक्षण प्रदान किया जा सकता है। उदाहरण के लिए जीवाश्म संसाधनों के स्थान पर विद्युत उत्पादन की तकनीक में सुधार करके इन समाप्त होने वाले बहुमूल्य संसाधनों को संरक्षण दिया जा सकता है। एक टन लोहा बनाने के लिए जितनी ऊर्जा और कच्चा माल प्रयुक्त होता है वह तकनीकी संवर्द्धन से कम किया जा सकता है। इसी प्रकार सौर ऊर्जा को बढ़ावा देकर परम्परागत ऊर्जा संसाधनों के संरक्षण को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

3-7-1-5 ikfjfLFkfrdh rduhd e: l/kkj

मानवीय उपभोगवाद ने अनेक पारिस्थितिक संकट पैदा किये हैं। विकसित देशों में डीडीटी को प्रतिबंधित कर दिया गया है लेकिन विकासशील देशों में इसका उत्पादन हो रहा है। विषुवतरेखीय उष्ण कटिबंध के निवासियों के लिए कृत्रिम धागों के वस्त्र हानिकारक हैं, लेकिन उनका उपयोग जारी है। सीएफसी, ओजोन का सुरक्षा कवच तोड़ रही है किंतु उसका प्रयोग बंद नहीं हुआ है। एक ओर नई पारिस्थितिक तकनीक विकसित करना आवश्यक है, वहीं विकसित देशों से उन्नत तकनीक का विनिमय अन्य देशों में किया जाना भी जरूरी है।

3-7-1-6 lqj{kk rduhd e lq/kkj

तकनीकी विकास के दौरान पर्यावरण सुरक्षा का पक्ष सदैव उपेक्षित किया जाता रहा है। पर्यावरण सुरक्षा के साथ 'आग लगे खोदे कुआं, कैसे आग बुझाय' वाली कथा चरितार्थ हो रही है। जब संकट गहराता है तक सुरक्षा का उपाय खोजा जाता है। वह चाहे भोपाल की गैस त्रासदी हो या फिर चेरनोबिल का रेडियोधर्मिता संकट, सुरक्षा तकनीक दोनों जगह असफल साबित हुई। 'सुरक्षा हटी, दुर्घटना घटी' का नारा लिख देना ही पर्याप्त नहीं होगा, अपितु बढ़ते यातायात के अनुसार सड़कों को चौड़ा एवं सुगम बनाने की सुरक्षा तकनीक भी विकसित करनी होगी। वाशिंगटन की भीड़–भरी गलियों में वाहन केवल एक तरफ जा सकता है, आने के लिए दूसरी गली से आना पड़ता है। इसी प्रकार यातायात नियंत्रित करने के लिए गति के अनुसार चौड़ी सड़कें विभाजित की गई हैं। सुरक्षा की इस तकनीक का विकासशील देशों में भी प्रयोग होना चाहिए जहां आये दिन सड़कों पर असंख्य दुर्घटनाएं घटित होती है। जो विश्व स्तरीय संकट है, उनकी सुरक्षा के भी समय रहते उपाय ढूंढ लेना ही आज की बुद्धिमानी होगी।

3-7-2 lalk/ku lqj{k.k mikxe

दीर्घकाल तक अधिकाधिक लोगों की अधिक से अधिक भलाई के लिए संसाधनों का संरक्षण आवश्यक है। वर्तमान पीढ़ी का भावी पीढ़ी के लिए किया गया त्याग ही संसाधन संरक्षण है। संरक्षण के द्वारा संसाधनों की बचत की जाती है, संसाधनों की बर्बादी रोकने का प्रयास किया जाता तथा संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग किया जाता है।

3-7-2-1 ou lqj{k.k

वनों के विनाश से भूमि अपरदन, भूस्खलन, बाढ़, वनों से प्राप्त कच्चे माल की कमी, सूखा, जलवायु तथा पारिस्थितिक संकट उत्पन्न होता है। अतः वन संरक्षण पृथ्वी पर जीवन सुरक्षित रखने के लिए आवश्यक है। इस हेतु निम्न उपाय किये जा सकते हैं–

- वनों की नियंत्रित एवं वैज्ञानिक कटाई
- वनों का आग से बचाव
- वनों की हानिकारक कीटों से सुरक्षा
- पुनर्वनारोपण

3-7-2-2 ty lqj{k.k

विश्व में प्रति व्यक्ति प्रतिदिन जल का उपभोग ग्रामीण क्षेत्रों में 50 लीटर तथा शहरों में 150 लीटर तक रहता है। विकसित देशों में जहां लोग टब में स्नान करते हैं, मशीनों से कपड़े धोते हैं, घरों में भी स्वीमिंग पूल रखना पसंद करते हैं, औसत खपत कहीं अधिक है। मास्को में प्रतिदिन प्रतिव्यक्ति 600 लीटर जल का प्रयोग होता है। उद्योगों में शुद्ध जल की बड़ी मात्रा उपयोग होती है। एक टिन निकिल हेतु 4000 घन मीटर, एक टन इस्पात के प्रगलन में 200 घन मीटर, एक टन कागज में 100 घन मीट, एक टन संश्लिष्ट धागा बनाने में 2500 से 5000 मी3 जल की आवश्यकता होती है। अनुमान है कि 8.5 प्रतिशत जल का उपयोग नगरों में होता है। सिंचाई में एक वर्ष में एक हैक्टैयर में 12000 मी3 से 14000 मी3 जल का प्रयोग होता है। जल जीवन का आधार है। इसकी गुणवत्ता और उपलब्धता के लिए इसका संरक्षण करना अत्यावश्यक है। जल संरक्षण की निम्न तकनीकें उल्लेखनीय है–

- जल का भण्डारण एवं वाष्पीकरण को रोकना
- जल का समुचित पुनर्वितरण
- भूमिगत जल का विवेकपूर्ण उपयोग

- भूतापीय जल का प्रयोग।

3-7-2-3 eˈnk lj{k.k

मृदा आधारभूत संसाधन है जो मानव की प्राथमिक आवश्यकताएं पूर्ण करती है। मृदा अपरदन, क्षरण, लवण, निक्षालन एवं प्रवाह से नष्ट होती है। इसके संरक्षण हेतु निम्न उपाय किये जाते हैं–

- वनस्पति का आवरण एवं संरक्षी वनारोण
- समोच्चरेखीय जुताई
- ढालों का वेदिकाकरण
- आवरण फसलों की बुवाई
- झूमिंग कृषि पर प्रतिबंध
- नियंत्रित पशुचारण
- अवनालिकाओं में वनस्पति लगाना
- बाढ़ नियंत्रण
- फसलों का हेर–फेर
- खादों का प्रयोग
- जल व जैव पदार्थों की अनुकूलतम सहचर्य
- मृदा की प्रदूषण से रक्षा।

3-7-2-4 [kfut lj{k.k

खनिज भण्डारों का अंधाधुंध दोहन करने से उनके संचित भण्डार समाप्ति की ओर अग्रसर हो चले हैं। औद्योगिक क्रांति सीधे खनन क्रांति से जुड़ी है। खनिज अनवीकरणीय संसाधन हैं। अतः इनका संरक्षण निम्न उपायों से किया जाना चाहिए–

- नये खनिज भण्डारों की खोज
- संरक्षित खनन प्रक्रिया अपनाकर
- खनिजों का बहु–उद्देशीय उपयोग
- उत्खनित खनिजों से अधिकाधिक धातु प्राप्ति
- सुरक्षिण भण्डार गृहों का निर्माण
- खनिजों के विकल्पों का अन्वेषण
- धातु का बारम्बार प्रयोग
- शक्ति संसाधनों का कच्चे माल के रूप में प्रयोग
- खनन से प्रदूषण की रोकथाम।

3-7-2-5 Åtk lj{k.k

शक्ति संसाधनों के उपयोग में कोयला 72 प्रतिशत, खनिज तेल 15 प्रतिशत तथा जल विद्युत 13 प्रतिशत प्रयोग होती है। कोयला सीमित शक्ति संसाधन है। अतः इसके विकल्पों की तलाश एव कोयले के भण्डारों को संरक्षण प्रदान करना आवश्यक है–

1. कोयले का समुचित उपयोग किया जाय
2. कोयला साफ करने के कारखाने स्थापित हों
3. उचित मशीनों एवं श्रमिकों का प्रयोग
4. कोयला खानों में पुनर्भरण

5. गोबर बैसें, पवन ऊर्जा, सौर ऊर्जा का विकास
6. गहरे स्थानों की खुदाई
7. कोयले का वातिकरण विधि से श्वसन
8. न्यून मोटाई एवं निम्न गुणवत्ता का भी खनन हो
9. कोयले से सस्ती विद्युत पैदा करना।

3-7-2-6 pjkxkg lajf{k.k

यह एक विडम्बनापूर्ण तथ्य है कि जहां चरागाह एवं धरातल पर वनस्पति की कमी होती है, जहां कृषि के लिए अनुकूल परिस्थितियां नहीं पाई जाती हैं, वहीं मानव अधिक पशुपालन करता है। उसे पशुओं के चारे के लिए प्रवास भी करना पड़ता है। अतिचारण से नमी की कमी वाली मृदा का क्षीण वनस्पति आवरण शीघ्र ही नष्ट होने लगता है। वनस्पति विहीन नरम धरातल पशुओं के खूरों से पोला होकर ताप व हवा से अपरदित होकर रेगिस्तान में बदलने लगता है। एक ओर धरातल को मरुस्थलीकरण से बचाने के लिए चरागाह संरक्षण आवश्यक है तो दूसरी ओर पशुओं को समुचित मात्रा में चारा उपलब्ध कराने के लिए भी इसका संरक्षण आवश्यक है।

3-7-2-7 vkuqokf'kdh lajf{k.k

नगरीकरण, औद्योगिकीकरण, अतिचारण, वन विनाश, खनन, यातायात मार्गों का निर्माण, कृषि विस्तार, लकड़ी की तस्करी, जन्तुओं का वध एवं शिकार, जन्तुओं का निर्यात आदि कारणों से अनेक पादप और जन्तु प्रजातियां नष्ट हो चुकी हैं तथा अनेक विनाश के कगार पर पहुंच चुकी हैं। ऐसा अनुमान है कि विश्व में पौधों की लगभग 25000 जातियों में से लगभग 15000 भारत में पाई जाती हैं।

विशेशज्ञों का अनुमान है कि विश्व में 50 लाख से 8 करोड़ प्रकार के जन्तु पाये जाते हैं जिनमें से 14 लाख जन्तु जातियों को ही अभी पहिचाना गया है। जन्तुओं की इन जातियों में से लगभग 25 प्रतिशत संकटग्रस्त हैं। राष्ट्रीय प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय के अनुसार भारत में 137 जीव–जन्तु जातियां विलोपशील अथवा संकटग्रस्त हैं जिनमें 81 स्तनधारी, 28 पक्षी एवं 18 सरीसृप जातियां हैं तथा अन्य स्थलचर जातियां हैं। राइनोसोर, साइबेरियन टाइगर, मैक्सिकन बीयर, रेडवोल्फ, पर्वतीय गुरिल्ला, अरबी ओरिक्स, एशियन लॉयन के विलुप्त होने की संभावना है। भारत में दुर्लभ प्रजातियों को संरक्षण प्रदान करने के लिए देश के 14 राज्यों में 18 प्रोजेक्ट टाइगर, सौराष्ट्र में 1412 वर्ग किमी. क्षेत्र में गिर लॉयन प्रोजेक्ट तथा क्रोकोडाइल ब्रीडिंग एण्ड मैनेजमेण्ट प्रोजेक्ट आनुवांशिकी संरक्षण की दिशा में किये गये प्रयास हैं। पारिस्थितिकी संतुलन के लिए आनुवांशिकी संरक्षण के अधिक प्रयासों की आवश्यकता है।

3-7-3 izknf'kd ;kojk i cU/ku

पर्यावरण की व्यापकता एवं विस्तार को दृष्टिगत रखकर उसके सरल प्रबन्धन हेतु स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों पर विभाजित करके अधिक व्यवस्थित अध्ययन किया जा सकता है।

3-7-3-1-LFkkuh; i ;kojk i cU/ku

स्थानीय महत्त्व की पर्यावरणीय समस्याओं का प्रबन्धन स्थानीय स्तर पर स्थानीय लोगों द्वारा किया जाना चाहिए। नगरीय समस्याओं का निराकरण करने में नगरवासियों की तथा कृषिजनित समस्याओं के समाधान करने में ग्रामवासियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होने पर ही पर्यावरण प्रबन्धन की सफलता निर्भर करेगी। इसी प्रकार स्थानीय आकस्मिक विपदा का प्रथम उपाय स्थानीय स्तर पर ही करना पड़ता है।

3-7-3-2- {k=h; i;koj.k izcU/ku

चम्बल घाटी में मृदा क्षरण की समस्या, ब्रह्मपुत्र घाटी में बाढ़ की समस्या, राजस्थान के पश्चिमी भाग में सूखे की समस्या, इंदिरा गांधी नहर परिक्षेत्र में सेम की समस्या, तटवर्ती क्षेत्रों में समुद्री तूफान की समस्या तथा पर्वतीय भागों में भूस्खलन की समस्या, क्षेत्रीय समस्या के कुछ उदाहरण हैं। इन समस्याओं के त्वरित एवं समुचित हल के लिए क्षेत्रीय प्रबन्धन अधिक श्रेयस्कर होता है। सम्पूर्ण विश्व के संदर्भ में राष्ट्रीय समस्या को भी क्षेत्रीय अथवा प्रादेशिक प्रबन्धन की श्रेणी में गिना जा सकता है।

3-7-3-3 vUrjk"Vªh; i;koj.k izcU/ku

भूमण्डलीय तापमान में वृद्धि की समस्या, ओजोन परत में छेद की समस्या, वायुमण्डल में हरितगृह गैसों के बढ़ने की समस्या, अन्तर्राष्ट्रीय आतंकवाद और राजनैतिक अस्थिरता की समस्या, आर्थिक विषमता की समस्या, आणविक, रासायनिक व जैविक हथियारों की समस्या, राष्ट्रों के बीच युद्ध एवं तनाव की समस्या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ही सुलझाई जा सकती है।

3-7-4 i;koj.kh; izcU/ku esa ifjorZu

स्थानीय, क्षेत्रीय अथवा विश्व स्तर पर किये गये पर्यावरण प्रबन्धन का कार्य तब तक अधूरा रहता है जब तक उसमें कालिक परिवर्तन का पक्ष समाहित नहीं होता। कालक्रमानुसार पर्यावरण मे दो प्रकार के परिवर्तन होते हैं–

- अल्पकालिक परिवर्तन– दैनिक, मौसमी या वार्षिक परिवर्तन अल्पकालिक कहे जाते हैं। इनका प्रबन्धन भी अल्पकालिक परिप्रेक्ष्य में करना पड़ता है। ऋतु परिवर्तन, दैनिक या मौसमी श्रमिकों का प्रवास, पशुओं का अल्पकालिक प्रवास, फसलों का उत्पादन, वार्षिक आयात निर्यात आदि अल्पकालिक घटनाएं हैं जिनका अल्पकालिक पर्यावरणीय प्रबन्धन करना पड़ता है।
- दीर्घकालिक परिवर्तन– भौमिकीय चिरकालिक परिवर्तन यथा–महाद्वीपीय विस्थापन, पर्वतों का निर्माण, पादप एवं जन्तु जगत का विकास तथा मानवीय दीर्घकालिक परिवर्तन जैसे; अफ्रीका व यूरोप से अमेरिका एवं आस्ट्रेलिया की ओर प्रवास, हरितक्रांति, औद्योगिक क्रांति, मानव का अंतरिक्ष में प्रवेश आदि घटनाएं दीर्घावधि वाली पर्यावरणीय घटनाएं हैं जिनका प्रभाव और प्रबन्धन भी दीर्घकालिक परिप्रेक्ष्य में करना पड़ता है।

अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक पर्यावरणीय प्रबन्धन में काल पक्ष के भूत, वर्तमान और भविष्य तीनों आयामों का अध्ययन शामिल करना पड़ता है–

- iokuqHko& पूर्व अर्जित ऐतिहासिक ज्ञान और अनुभव के प्रकाश में वर्तमान एवं निवर्तमान समस्याओं के निराकरण की रणनीति तैयार करना पर्यावरण प्रबन्धन के कालिक विश्लेषण का प्रथम चरण होता है।
- i;koj.k vou;u dk orZeku Lrj& पर्यावरणीय ह्रास के वर्तमान स्तर का विश्लेशण करना तथा उसके अल्पकालिक एवं दीर्घकालिक प्रभावों का आकलन करना कालिक विश्लेशण का तीसरा चरण है।
- i;koj.k lao)Zu dh Hkkoh ;kstuk& दीर्घकालिक समस्याओं के निष्पादन हेतु भावी योजनाओं का निर्माण करना पर्यावरणीय प्रबन्धन के कालिक विश्लेशण का तृतीय आयाम होता है।

3-7-5- i;koj.k izcU/ku ,oa ikfjLFkfrdh lfodkl

पारिस्थितिकी विकास की संकल्पना वर्तमान पर्यावरण अवक्रमण की देन है। औद्योगिकीकरण, नगरीकरण, प्रदूषण–प्रकोप, दुराचार–भ्रष्टाचार, आतंकवाद–तस्करी, सामाजिक–आर्थिक–राजनीतिक अस्थिरता

और विषमता से पारिस्थितिकी असंतुलित एवं संकटग्रस्त हो गई है। इस डांवाडोल असंतुलित पारिस्थितिक तंत्र को संभालने संवारने के लिए पारिस्थितिकी संविकास की परिकल्पना अथवा उपागम का प्रतिपादन किया गया है। पारिस्थितिक संविकास संकल्पना में जैव निवास्य की गुणवत्ता बनाये रखने का भाव निहित है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निम्न आदर्शों को प्रस्तावित किया गया है–

- संविकास क्षैतिज अधिकार क्षेत्र पर अवलम्बित हो,
- इस अधिकार क्षेत्र में सम्पूर्ण जनभागीदारी सुनिश्चित हो,
- जनभागीदारी पारस्परिक सहयोग व विश्वास से अनुप्रेरित हो,
- संविकास की कार्ययोजना बहुजन हिताय बहुजन सुखाय हो,
- मानव–पर्यावरण सम्बन्ध मैत्रीभाव पर आधारित हो,
- संविकास का उद्देश्य भौतिक सुख की अपेक्षा आत्मसुख से प्रेरित हो।

पारिस्थितिक संविकास के उपरोक्त आदर्शों के आधार पर सामाजिक, आर्थिक विकास के निम्नलिखित तीन पक्ष प्रतिपादित किये गये हैं–

3-7-5-1 lrrfyr fodkl

मानव समाज के सभी वर्गों के लोगों की न्यूनतम सुख–सुविधा का प्रबन्ध प्राकृतिक पर्यावरण को बिना हानि पहुंचाये करना, संतुलित विकास की संकल्पना का आधार है। वर्तमान में विकसित एवं विकासशील राष्ट्रों के मध्य उत्पन्न अंतर से पर्यावरण क्षतिग्रस्त हुआ है। संतुलित विाकस इस क्षति को रोकने की दिशा में पर्यावरण संवर्द्धन हेतु उठाया गया कदम है।

3-7-5-2 lefUor fodkl

पारिस्थितिक तंत्र की सम्पूर्णता एवं समग्रता पर आधारित विकास की परिकल्पना ही पर्यावरण संवर्द्धन के आधार स्तम्भ–

- शांति
- सद्भाव
- समता
- सहयोग

समन्वित विकास का मार्ग प्रशस्त करती है जिसमें वसुधैव कुटुम्बकम् विचार को मूर्त रूप देने का प्रयास निहित हो। अन्तर्राष्ट्रीय संगठन, विकास योजनाएं, संधियां, अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सहयोग और सहायता तथा अन्य विश्व स्तरीय संस्थाएं समन्वित विकास के माध्यम ही तो हैं।

3-7-5-3 lrr fodkl

संतुलित और समन्वित विकास की अवधारणा से भी ऊपर उठकर भावी पीढ़ी के कल्याण की परिकल्पना सतत् विकास में की गई है। अब तक किये गये आर्थिक–सामाजिक विकास का अनुभव यही बतलाता है कि क्षणिक सुख और सुविधा को प्राप्त करने के लिए भविष्य को अंधकारमय बना देना भौतिकवादी जीन का दर्शन बन चुका है। इसी भौतिकवादी दर्शन से आज हम एक शताब्दी में किये गये विकास के दुष्परिणामों से उत्पन्न अनेक पारिस्थितिक एवं पर्यावरणीय समस्याओं से घिर गये हैं। सतत् विकास की संकल्पना में ऐसे दुष्परिणामों को स्थान प्राप्त नहीं होगा।

3-8 Hkkjr esa i;koj.k izcU/ku

भारतवर्ष प्राचीन काल से ही प्रकृति परायण भूमि रही है। यहां का सामाजिक जीवन, परम्पराएं, सभ्यता और संस्कृति सदैव प्रकृति द्वारा अनुप्रेरित रही हैं। आधुनिक परिवर्तन का प्रभाव भारतीय भौतिक भूदृश्य पर तो पड़ा है किन्तु मौलिक जीवन दर्शन अभी तक प्रकृति की जीवंतता से उत्प्रेरित है। 1972 में हुए संयुक्त राष्ट्र संघीय स्टाकहोम सम्मेलन के बाद गठित तिवारी समिति के परामर्श पर 1980 में पृथक से पर्यावरण विभाग का गठन किया गया तथा पर्यावरण प्रबन्धन हेतु सर्वेक्षण, समितियां और कार्य योजनाएं तैयार की गईं।

पर्यावरण विभाग

- राष्ट्रीय पर्यावरण नियोजन समिति
- सर्वेक्षण विभाग–
  - भारतीय वानस्पतिक सर्वेक्षण
  - भारतीय प्राणी सर्वेक्षण
  - जल प्रदूषण सर्वेक्षण
- प्राकृतिक ऐतिहासिक संग्रहालय
- राष्ट्रीय पारिस्थितिक विकास बोर्ड

1985 में पर्यावरणीय समस्याओं के निराकरण एवं समुचित प्रबन्धन हेतु 'पर्यावरण और वन मंत्रालय' का गठन किया गया। इसके छः क्षेत्रीय कार्यालय, 5 उत्कृष्टता केन्द्र तथा राष्ट्रीय वनीकरण एवं पारिस्थितिक विकास बोर्ड के सात क्षेत्रीय केन्द्रों की स्थापना की गई। इन केन्द्रों के माध्यम से सर्वेक्षण, पर्यावरणीय सूचनाओं का आदान–प्रदान, रणनीति निर्माण, कार्ययोजना, संरक्षण व मूल्यांकन की प्रक्रियाएं प्रारंभ की गईं।

4- ikfjLFkfrdh larqyu

पर्यावरण का संतुलन जैव जगत की संतुलित कार्यप्रणाली का प्रतीक है तो उसका असंतुलन विविध प्रकार के आवासीय संकट का कारण। इक्कीसवीं सदी की दहलीज पर खड़ा मानव समुदाय एकतरफा विकास के नाम पर छलांग लगाने की योजना बना रहा है वही उसे पर्यावरणीय असंतुलन की घटनाओं का डर खाये जा रहा है। जहां अंतरिक्ष अभियान से अनेक उपलब्धियों की संभावना बढ़ती जा रही है वही ओजोन परत में बनते छिद्र, वायुमण्डल में इकट्ठा होता कार्बनडाई आक्साइड गैस, जल, वायु और मृदा प्रदूषण का संकट बढ़ता जा रहा है। पर्यावरण का बिगड़ता ताल–मेल मानव सहित अन्य जीवों के अस्तित्व के लिये प्रश्न चिन्ह उपस्थित कर सकता है। पर्यावरण के तत्वों के साथ बढ़ता मानवीय हस्तक्षेप ऐसी विकृतियां उत्पन्न कर रहा है जिसका आभास काफी देर से हो पा रहा है। प्रकृति के अनेक तत्वों को हम निरर्थक समझ कर विनष्ट कर रहे हैं जबकि पर्यावरण को संतुलित रखने में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। जिसे हम आज शत्रु समझ रहे हैं वह हमारा मित्र भी हो सकता है। अनेक सूक्ष्म जीवी बैक्टीरिया इसके प्रमाण हैं। नदियों में पाये जाने वाले जीवों को भोजन आदि की पूर्ति के लिये तेजी से समाप्त किया गया। जब जल प्रदूषण का संकट बढ़ गया तो ऐसे जीवों की उपयोगिता समझ में आई। आज कछुआ, घड़ियाल, मछली और ऐसे ही जीवों का संवर्धन अभियान चलाया जा रहा है क्योंकि ये जल में निहित प्रदूषक पदार्थ को खाकर जल को स्वच्छ रखते हैं। इसी प्रकार यदि जंगल काट दिया जाय तो उस पर निर्भर रहने वाले जीवों का अस्तित्व मिट जायेगा और वह प्रकृति की व्यवस्था के विपरीत अन्य जीवों का आवास बन जायेगा। जिन्हें जंगल की आवश्यकता नहीं होती। इससे पर्यावरण असंतुलन बढ़ जायेगा। इससे पारिस्थैतिकी प्रक्रिया विपरीत दिशा में अग्रसर होंगी जो जीवनदायी शक्तियों को खत्म कर देगी और विकृत जीवन प्रणाली इसका स्थान ले लेगी। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब वन विनाश कर कृषि भूमि बनायी गयी लेकिन जलवायु परिवर्तन से वह क्षेत्र मरूस्थल में बदल गया और वहां बड़े जानवरों और मनुष्यों के स्थान पर कुछ घासें और अति लघु जीव ही अपना आवास बना सकें। इस प्रकार पर्यावरण संकट और

पारिस्थैतिकी संकट एक दूसरे से गुंथित स्थितियां हैं। जब जीवन की गुणवत्ता ह्रासमान होती है तभी इसका अहसास होता है। यह एक विडम्बना है कि अपने को सर्वश्रेष्ठ जीव कहने वाला मानव समाज पर्यावरण के तत्वों के साथ सबसे अधिक निष्ठुर व्यवहार करने लगा है।

पर्यावरण के प्रति बढ़ती अवमानना समस्त जीवधारियों के लिए संकट का आमंत्रण है। पर्यावरण बोध काअभाव विकासशील देशों की तुलना में विकसित देशों में अधिक है। जहां प्रदूषण की घटनाएं संकट बिंदु तक पहुंच गई हैं। अमेरिका जैसे विकसित देश में प्रतिदिन मोटर गाड़ियों से 22.5 करोड टन विषैला धुआं वायुमण्डल में डाला जाता है जो विनाशकारी प्रभाव बनाता जा रहा है। इसी प्रकार फ्रांस में शक्ति केन्द्रों से प्रतिवर्ष 2 लाख टन सल्फर आक्साइड वायुमण्डल में पहुंच रहा है जो अम्ल वर्षा का कारण है। 1950 से 1959 के मध्य जापान की मिनीमाता खाड़ी में गिरनेवाले दूषित जल में निहित पारा के कारण मछलियां प्रभावित हुई जिसको खाने से मछुआरे अपंग हो गये। इसी प्रकार भोपाल में गैस रिसाव से हजारों जानें गईं और लाखों लोग विभिन्न बीमारियों के शिकार हुए। इसी प्रकार चरनोबिल आणविक भट्ठी रूस का 1986 में रेडियोधर्मी रिसाव भयंकर आपदा का संदेश था। इससे यूरोप में हडकम्प मच गया और लोग अपने घरों से भागने के लिए बाध्य हुए। इस विपदा को टालने में सोवियत रूस को विभिन्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था।

1981 में एक अध्ययन से उद्घाटित हुआ कि विकासशील देशों में कीटनाशक दवाओं के प्रयोग से 10 हजार लोग प्रतिवर्ष कालकलवित होते हैं तथा 4 लाख से अधिक लोग इनके कुप्रभावों से बीमार होते हैं। एक अन्रू अध्ययन के अनुसार हरितक्रांति को सफल बनाने में गरीब देशों के लगभग तीन लाख सत्तर हजार लोग कीटनाशक दवाओं के कुप्रभाव से असाध्य रोगों की चपेट में आ गये हैं। ऐसे लोगों में एक तिहाई लोग भारतीय हैं। इन दवाओं से कैंसर, आंख और सांस की बीमारियां तेजी से फैल रही हैं। डीडीटी कीटनाशक अनेक देशों में अवैध घोषित किया जा चुका है लेकिन अब भी इसका प्रयोग भारत में हो रहा है।

मानव अपने आपको पारिस्थितिक तंत्र का स्वघोषित स्वामी होने का भ्रम पाल हुए है, जबकि वास्तविकता यह है कि वह पारिस्थितिकी का एक घटक मात्र है। वह अपनी हठधर्मी से इसका स्वामी, बना हुआ है। जैसे चाहता है वैसे भौतिक पदार्थों तथा जीव–जन्तुओं का अपने स्वार्थ के लिए उपयोग करता है। इस हठधर्मीपूर्ण उपभोग के कारण वह स्वयं के लिए तो आराम के साधनों का संग्रह कर रह है परन्तु पारिस्थितिकी के अन्य घटक मानव के इस अविवेकपूर्ण कृत्य से प्रभावित हो रहे हैं। वह स्वयं भी इन दुष्प्रभावों से वंचित नहीं है। यदि भोग की वृत्ति इसी तरह से चलती रही तो एक दिन ऐसा आएगा कि पृथ्वी पर जीव संकट उपस्थित हो जाएगा और मानव जाति भी उस संकट से बच नहीं पाएगी। यह मानने में किसी भी शक की गुंजाइश नहीं है कि मानव सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ रचना है। सर्वश्रेष्ठ रचना होने के कारण उसका प्रकृति के प्रति कुछ दायित्व बनता है। उस दायित्व के निर्वहन के लिए उसे अपने आपको पृथ्वी का स्वामी न घोषित करके उसका ट्रस्टी मानना शुरू करना होगा। ट्रस्टी अपने ट्रस्ट का सर्वजीव हिताय उपयोग करे केवल यही उससे अपेक्षा नहीं की जाती है बल्कि ट्रस्टी का यह भी दायित्व होता है कि वह ट्रस्ट को आगे की पीढ़ी को सौंपने के लिए यह प्रबंध करे कि ट्रस्ट अधिक अच्छी स्थिति में भावी पीढ़ी को प्राप्त हो। गांधी के ट्रस्टीशिप सिद्धान्त की यही भावना है।

कुछ लोगों का यह सोचना नितान्त भ्रमपूर्ण है कि विकास–कार्य पारिस्थितिकी को क्षति पहुंचाये बिना पूरे नहीं किए जा सकते। प्रौद्योगिकी के प्रयोग से आर्थिक विकास कार्य तथा पारिस्थितिकी उन्नयन एक साथ किए जा सकते हैं। हमें ऊर्जा के कभी न समाप्त होने वाले स्थायी साधनों की ओर देखना होगा। तथा इस प्रकार की प्रौद्योगिकी का विकास करना होगा जिससे सूर्यताप का उपयोग ऊर्जा सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जा सके। असल में कुछ व्यक्ति ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोत की जब बात करते हैं तब

यह भूल जाते हैं कि ऊर्जा का एकमात्र साधन सूर्य है जिससे सभी ऊर्जा ग्रहण करते हैं। जब तक सूर्य से ऊर्जा प्राप्त करने की नई प्रौद्योगिकी का विकास हो तब तक बायोगैस, पवन आदि की सहायता से ऊर्जा प्राप्त की जाए। नए उद्योगों को प्रारंभ करने से पूर्व पारिस्थितिकी सम्बन्धी हानियों की क्षतिपूर्ति का प्रबंध किया जाए तथा वनों के संरक्षण के लिए ही नहीं बल्कि वनों के उन्नयन के लिए सामाजिक वानिकी, कृषि वानिकी, ग्रामीण वानिकी तथा नगरीय वानिकी के कार्य विशाल स्तर पर चलाए जाए ताकि पारिस्थितिकीय संतुलन बना रहे। वन्य जीव तथा वन्य वनस्पतियों के संरक्षण के लिए योजनाएं बनाना ही पर्याप्त नहीं है; उन्हें कठोरता से लागू किया जाए ताकि आहार शृंखला में कोई व्यवधान न पड़े। आहार शृंखला एक इस प्रकार की सांखल है जिसके बीच की एक कड़ी टूट जाने पर आगे की शृंखला–व्यवस्था अस्तव्यस्त हो जाएगी।

मानव को शाकाहारी होना उसके तथा पारिस्थितिकी के हित में है तो शाकाहारी रहने के लिए विविधवत आयोजित एक प्रेरणात्मक धर्मयुद्ध की आवश्यकता है इससे जीव संरक्षण के साथ–साथ मानवीय वृत्तियों में भी सुधार होगा। हमें खनिज–निधियों के संरक्षण के बारे में भी विशेष रूप से ध्यान देना होगा। खनिजों का उपयोग करते रहना ही मानव का अधिकार नहीं है बल्कि उसके साथ जुड़ा है पुनर्चक्रीकरण के माध्यम से उन्हें स्थायी बनाने का कर्त्तव्य। मानव को अपने कर्त्तव्य की ओर विशेष रूप से ध्यान देना है।

सघन खेती जहां वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नितान्त आवश्यक है वहीं वह मृदा, जल और पर्यावरण के अन्य घटकों को विषाक्त करने का भी कार्य करती है। कीटनाशी, खरपतवार नाशी, उर्वरक तथा अन्य कृषि रसायनों का उपयोग तभी किया जाए जबकि उनको कोई स्थानापन्न न हो। इसके लिए व्यापक जनशिक्षण की आवश्यकता है। इस प्रकार की विधियां हैं जिससे खरपतवारनाशन, रोगनाशन तथा कीट नियंत्रण किया जा सकता है। इन विधियों को व्यापक बनाने के लिए प्रौढ़ शिक्षा के विभिन्न माध्यम रेडियो, टेलिविजन आदि बहुत सहायक हो सकते हैं। आम आदमी का नगरों में निवास का मोह बढ़ता जा रहा है। नगरीकरण का पारिस्थितिक असंतुलन पैदा करने में महत्त्वपूर्ण योगदान है। नगरीकरण का मुख्य कारण वहां पर उपसिथति जीविका के साधनों, रोजगार के साधनों का होना है तथा वहां पर जीवनोपयोगी सुख–सुविधाओं का प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होना है। नगरीकरण को प्रतिबंधित करने के लिए हमें उद्योगों का विकेन्द्रीकरण करना होगा तथा जीवनोपयोगी साधन–सुविधाओं को गांवों में उपलब्ध कराना होगा। फिर भला नगरीकरण की होड़ क्यों होगी। नगरीकरण को प्रतिबंधित करने के लिए हमें शिक्षण संस्थाओं, अनुसंधान प्रयोगशालाओं को ग्रामीण क्षेत्र में स्थानान्तरित करना होगा। ताकि व्यक्ति का नगरों के प्रति मोह कम हो सके तथा प्रकृति की सुरम्य गोद में रहने के आनन्द की अनुभूति की जा सके। साथ ही शहरों के आवासों की ऐसी व्यवस्था करनी होगी ताकि व्यक्ति प्राकृतिक वातावरण के आनन्द की अनुभूति कर सके।

5- mnkjhdj.k] futhdj.k ,oa oS'ohdj.k

आधुनिक समय में उदारीकरण, निजीकरण एवं वैश्वीकरण की अवधारणाएं अर्थव्यवस्था के साथ–साथ पर्यावरण को भी समान रूप से प्रभावित करती है। अतएव सतत विकास की दृष्टि से इनका अध्ययन समीचीन होगा।

5-1 mnkjhdj.k

उदारीकरण से अभिप्राय उद्योग तथा व्यापार को अनावश्यक प्रतिबंधों से मुक्त करके अधिक प्रतियोगी बनाना है। आर्थिक उदारीकरण का अर्थ है सभी व्यक्तियों को अपनी आवश्यकतानुसार निजी आर्थिक निर्णय लेने की स्वतंत्रता होनी चाहिए। इस प्रकार की आर्थिक स्वतंत्रता निम्न प्रकार से प्रदान की जा सकती है–

- वस्तुओं एवे सेवाओं के आवागमन पर लगी रुकावटों और नियंत्रणों को हटाना।
- वस्तुओं की कीमतो का निर्धारण उत्पादकों द्वारा किया जाना।

- उत्पादों के वितरण पर किसी तरह की रोग न लगायी जाये अर्थात् उत्पादक ही इस बारे में निर्णय लें कि वे कहां और कब अपने उत्पादों को बिक्री के लिए प्रस्तुत करेंगे।
- निजी उपक्रम एवं पूंजी को बढ़ती मात्रा में निवेश के अवसर प्रदान करना।
- निजी उपक्रम एवं पूंजी पर लगी रुकावटों और नियंत्रणों को हटाना।

सैद्धान्तिक रूप से 'उदारीकरण' एवं 'बाजार–उन्मुख अर्थव्यवस्था' दो भिन्न व्यवस्थाएं हैं किन्तु उदारीकरण से बाजार–उन्मुख अर्थव्यवस्था के विकास में बल मिलता है। बाजार–उन्मुख अर्थव्यवस्था में सरकार द्वारा उत्पादकों पर किसी तरह की रुकावटें एवं नियंत्रण नहीं लगाये जाते।संक्षेप में, उदारीकरण की व्यवस्था के अंतर्गत आर्थिक प्रणाली में सरकार की भूमिका क्रमशः कम होती जाती है, जबकि मांग–पूर्ति की बाजार शक्तियों की भूमिका अनुपात में बढ़ती जाती है।

निजी उपक्रम एवं निवेश निम्न सभी समस्याओं से सम्बन्धित निर्णय लेने के लिए पूरी तरह से स्वतंत्र होते हैं– क्या उत्पादन किया जाये? कैसे उत्पादन किया जाये? किसके लिए उत्पादन किया जाये?उत्पादक वर्ग मांग–पूर्ति की बाजार शक्तियों का अनुपालन करते हैं और इन्हीं संकेतों के अनुरूप विभिन्न निर्णय लेते हैं।

5-1-1 mnkjhdj.k uhfr dk mís';

- घरेलू उत्पादन प्रणाली में सुधार तथा उत्पादन क्षमता में विकास करना।
- रोजगार के अवसरों में वृद्धि करना।
- वस्तुओं तथा सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार करना।
- अंतर्राष्ट्रीय स्तर की प्रतियोगिता में शामिल होना।

5-1-2 mnkjhdj.k uhfr dk e[; midj.k

सन् 1991 से नई आर्थिक नीति के अंतर्गत जिन मुख्य उपकरणों व नीतियों को अपनाया गया है वे अग्रलिखित हैं–

5-1-2-1- ubZ vkS|ksfxd uhfr

नई औद्योगिक नीति (1991) के अंतर्गत बहुआयामी औद्योगिक नीति सुधारों द्वारा भारतीय उद्योग में संरक्षणवाद को समाप्त करके प्रतिस्पर्द्धात्मक वातावरण का सूत्रपात किया गया। नई औद्योगिक नीति की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं–

- सार्वजनिक क्षेत्र द्वारा विनियोग के लिए सुरक्षित क्षेत्रों को 17 से कम करके अब केवल 4 कर दिया गया है।
- केवल 6 उद्योगों को छोड़कर शेष सभी प्रकार की औद्योगिक इकाइयों को लाइसेंस लेने से मुक्त कर दिया गया है।
- एम.आर.टी.पी. की अवधारणा को समाप्त कर दिया गया है।
- लघु उद्योगों की विनियोग सीमा को बढ़ाकर 1 करोड़ रुपये कर दिया गया है।
- विदेशी पूंजी विनियोग की सीमा 40 प्रतिशत से बढ़ाकर 57 प्रतिशत कर दी गयी है।
- उच्च प्राथमिकता के 34 उद्योगों में 51 प्रतिशत तक पूंजी विनियोग की अनुमति बिना रोक–टोक के दी जायेगी।
- उच्चतम प्राथमिकता वाले उद्योगों को तकनीकी समझौते करने के लिए कोई अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं है।

5-1-2-2- ubZ 0;kikj uhfr

नई आर्थिक नीति में अर्थव्यवस्था के खुलेपन के लिए अग्रलिखित कदम उठाये गये–

- भारतीय अर्थव्यवस्था को अंतर्राष्ट्रीय रूप से प्रतियोगी बनाने के लिए सीमा शुल्क तथा टैरिफों को धीरे–धीरे कम किया जा रहा है।
- अर्थव्यवस्था के खुलेपन का विस्तार करने के लिए विदेशी निवेश तथा आधुनिक तकनीक को प्रोत्साहित किया गया है।
- भुगतान संतुलन के घाटे को पूरा करने के लिए कई कदम उठाये गये हैं। निर्यातों को प्रोत्साहित किया गया है। संसार के विदेशी व्यापार में भारत के भाग को बढ़ाने के लिए विशेष प्रयत्न किये जायेंगे।
- विनिमय दर का समायोजन करने के लिए सरकार ने जुलाई 1991 में रुपये का औसतन 20 प्रतिशत अवमूल्यन कर दिया। इसका उद्देश्य निर्यात प्रोत्साहन, आयात प्रतिस्थापन तथा पूंजी की अंतर्वाह की गति को तीव्र करना था।
- निर्यातों को प्रोत्साहित करने के लिए चालू खाते में भारतीय रुपये की पूर्ण परिवर्तनीयता कर दी गयी है।
- विदेशी व्यापार नीति दीर्घकाल अथवा पांच वर्ष (1992–97) के लिए घोषित की गयी। इसकी मुख्य विशेषता इसकी उदारता है।
- नई आयात–निर्यात नीति, 2002–07 की घोषणा की गयी जिसकी प्रमुख विशेशताएं निम्न हैं– कुछेक संवेदनशील उत्पादों को छोड़कर शेष सभी उत्पादों के निर्यातों पर से मात्रात्मक प्रतिबंधों की समाप्ति, प्रसंस्कृत फल व सब्जियों, पोल्ट्री व डेयरी उत्पादों तथा गेहूं व चावल उत्पादों को ट्रांसपोर्ट सब्सिडी, कृषिगत निर्यातों को विशेश प्रोत्साहन, 'विशेश आर्थिक क्षेत्रों' में रियायतों में वृद्धि। ऐसे क्षेत्रों में समुद्रपारीय बैंकिंग के तुल्य सुविधाएं। एक्सपोर्ट प्रमोशन कैपिटल गुड्स व ड्यूटी एंटाइटेलमेंट पासबुक योजनाएं अधिक आकर्षक बनायी गयीं, कॉटेज सेक्टर व हैंडिक्राफ्ट्स पर विशेश फोकस, 'औद्योगिक क्लस्टर्स' से निर्यात सम्वर्द्धन हेतु अतिरिक्त सुविधाएं।

5-1-2-3- ubZ jkt dk"kh; uhfr

भारत में आर्थिक सुधार कार्यक्रमों का एक प्रमुख लक्ष्य राजकोषीय घाटा जो कि 1990–91 में सकल घरेलू उत्पाद का 8.5 प्रतिशत को कम करके 4 प्रतिशत करना है। इसके लिए विभिन्न उपाय किये गये, जैसे– सार्वजनिक व्यय पर नियंत्रण, करों में वृद्धि, सार्वजनिक उपक्रमों का विनिवेश व सार्वजनिक क्षेत्र के उत्पादन कीमतों में वृद्धि।

सरकार ने राजकोषीय अनुशासन एवं राजस्व–प्रापित के सघन प्रयास के कारण वर्ष 1994–95 में राजकोषीय घाटे को सकल राष्ट्रीय उत्पाद के 6 प्रतिशत तक नियंत्रित किया जा सका। वर्ष 1995–96 तथा 1996–97 में राजकोषीय घाटा जीडीपी का क्रमशः 4.1 प्रतिशत तथ 4.0 प्रतिशत रहा। 1997–98 तथा 1998–99 में यह घाटा क्रमशः बढ़कर 4.7 प्रतिशत तथा 5.1 प्रतिशत हो गया। 1999–2000 में राजकोषीय घाटा जीडीपी का 5.4 प्रतिशत हो गया। 2000–2001 तथा 2001–2002 दोनों वर्षों में यह घाटा 5.7 प्रतिशत रहा। 2002–03 के बजट प्रस्तावों में यह घाटा जीडीपी का 5.3 प्रतिशत अनुमानित है। सरकार ने राजा चैलेया समिति के प्रतिवेदन के आधार पर दीर्घकालीन राजकोषीय नीति की घोषणा की जिसमें निम्नलिखित सुधार किये गये हैं– कर प्रणाली को अधिक वैज्ञानिक तथा युक्तिपूर्ण बना दिया गया है। आयकर की अधिकतम दर को 50 प्रतिशत से कम करके 30 प्रतिशत कर दिया गया है। विदेशी कम्पनियों के लाभ कर को कम कर दिया गया है। आयात–निर्यात कर को 250 प्रतिशत से कम करके 50 प्रतिशत कर दिया गया है। कई वस्तुओं पर उत्पादन कर कम किया गया है। आर्थिक सहायता को कम कर दिया गया है। सरकार

सार्वजनिक व्यय को कम करने के लिए विशेश प्रयत्नशील है। राज्य सरकारें अपने उद्यमों को विशेश रूप से विकसित करेंगी। बिजली बोर्डों तथा यातायात निगमों के घाटे को कम किया जा रहा है।

5-1-2-4- ubZ ekfnd uhfr

सरकार ने मौद्रिक सुधार के लिए नरसिंहम कमेटी की नियुक्ति की थी। इस कमेटी की मुख्य सिफारिशें निम्न हैं। इनके आधार पर सरकार ने महत्त्वपूर्ण वित्तीय सुधार किये हैं–

- ब्याज दरों का स्वतंत्र निर्धारण– ब्याज दरों का निर्धारण रिजर्व बैंक को नहीं करना चाहिए बल्कि इसका निर्धारण स्वतंत्रतापूर्वक बाजार शक्तियों द्वारा किया जाना चाहिए। सन् 1993 तक जोखिम भारित परिसम्पत्तियों के सम्बन्ध में न्यूनतम 4 प्रतिशत पूंजी पर्याप्तता अनुपात प्राप्त किया जाना चाहिए।
- तरलता अनुपात में कमी– इस समिति के अनुसार कानूनी चल निधि अनुपात को 38.5 प्रतिशत से कम करके 25 प्रतिशत कर दिया गया है। इसी प्रकार आरक्षित नकदी निधि को अपने वर्तमान उच्च स्तर से धीरे–धीरे कम किया जा रहा है।
- प्रत्यक्ष ऋण कार्यक्रमों की समाप्ति– इस समिति के अनुसार प्रत्यक्ष ऋण कार्यक्रमों को धीरे–धीरे समाप्त किया जाये तथा प्राथमिक क्षेत्र को पुनः परिभाषित किया जाये।
- बैंकिंग प्रणाली की पुनर्संरचना– बैंकिंग प्रणाली की पुनर्संरचना की जानी चाहिए।
- बैंकों को अधिक स्वतंत्रता– अलग–अलग बैंकों को अधिकारियों की भर्ती के लिए स्वतंत्रता दी जाये। बैंकों का निरीक्षण आंतरिक निरीक्षणों की रिपोर्टों के आधार पर किया जाये।
- बैंकों की लेखा प्रणाली में सुधार– सभी बैंकों को आय मान्यता तथा ऋणों के सम्बन्ध में एक जैसी लेखा प्रणाली अपनानी चाहिए। बैंकों को अपनी बैलेन्स शीट इस प्रकार तैयार करनी चाहिए कि उससे बैंक की आर्थिक स्थिति का सही तथा पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो सके।

5-1-2-5- ubZ fuos'k uhfr

1991 की आर्थिक नीति के अंतर्गत विदेशी निवेश नीति का उदारीकरण करने के लिए निम्नलिखित कदम उठाये गये–

- यदि विदेशी कम्पनियां भारत में संयुक्त उद्यमों का पूर्ण स्वामित्व प्राप्त करना चाहती हैं या पूर्ण स्वामित्व वाली सहायक कम्पनियां स्थापित करना चाहती हैं तो उन्हें इसके लिए पूर्ण स्वतंत्रता होगी।
- एक अनिवासी भारतीय द्वारा दूसरे अनिवासी भारतीय को किये गये शेयरों के हस्तान्तरण पर से नियंत्रण हटा दिये गये हैं।
- विदेशी, निवेशक बाजार कीमतों पर इक्विटी का अनिवेश कर सकते हैं। इस प्रकार जो धन प्राप्त होगा, उसे अपने देश भेज सकते हैं।
- आधारित संरचना, जैसे– सड़कों, बिजली, कम्यूनिकेशन्स आदि के विकास के लिए किये जाने वाले विदेशी निवेश पर कई प्रकार की रियायतें तथा सुविधाएं दी गयी हैं। बिजलीघरों में 100 प्रतिशत विदेशी इक्विटी की अनुमति दी गयी है।
- नये बीमा कानून के अनुसार, निजी क्षेत्र की बीमा कम्पनियों की शेयर पूंजी में 26 प्रतिशत विदेशी निवेश की इजाजत दी गयी है।
- पूंजीगत खाते में रुपये की पूर्ण परिवर्तनीयता का प्रयत्न किया जा रहा है।
- फेरा कानून में संशोधन करके फेरा कम्पनियों को कई सुविधाएं दी गई हैं।

- विदेशी निवेश की स्वीकृति के लिए एकल खिड़की व्यवस्था करने के लिए विदेशी निवेश प्रोत्साहन बोर्ड की स्थापना की गयी है।
- अनिवासी भारतीयों को निर्यात गृहों, व्यापार गृहों, अस्पतालों, निर्यात प्रेरक इकाइयों, होटलों आदि में 100 प्रतिशत करने की इजाजत वित्त के विश्व व्यापीकरण के लिए प्रमुख रूप से सुविधाएं दी गयी हैं।

5-1-3 Hkkjr esa mnkjhdj.k uhfr–

भारत में उदारीकरण नीति का अध्ययन दो शीर्षकों में कर सकते हैं–

5-1-3-1 uje mnkjhd.k uhfr ¼1985 ls 1991½

भूतपूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी द्वारा सत्ता संभालने के साथ सन् 1985 से ही उदारीकरण का युग प्रारंभ हुआ। उदारीकरण के क्रम में किये गये प्रमुख परिवर्तन निम्न प्रकार थे–

- मार्च 1985 में सरकार ने 25 बड़े श्रेणी के उद्योगों को लाइसेंस से मुक्त करने की घोषणा की।
- एम.आर.टी.पी और फेरा के अंतर्गत आने वाले 22 उद्योगों को लाइसेंस देने की आवश्यकता से मुक्ति दी गयी और एम.आर.टी.पी. कम्पनी की पूंजी सीमा 20 करोड़ से 100 करोड़ रुपये कर दी गयी।
- जून 1985 में 82 औषधियों एवं उससे सम्बन्धित औषधीय फार्मूलों को भी लाइसेंस–मुक्त कर दिया गया।
- छोटे उद्योगों की उन्नति के लिए पूंजी सीमा 20 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 35 करोड़ रुपये कर दी गयी। सहायक उद्योगों के लिए यह सीमा 45 करोड़ रुपये कर दी गयी।
- 100 प्रतिशत निर्यात–उन्मुख यूनिटों की लाइसेंसिंग को पूर्णतः समाप्त कर दिया गया।
- 1985–91 की अवधि के दौरान उदारीकरण का यह क्रम जारी रहा। औद्योगिक विस्तार व आधुनिकीकरण के वास्ते सभी इकाइयों को विभिन्न प्रकार से प्रोत्साहन व छूटें दी गयीं परंतु हमें आशातीत सफलता नहीं मिली। यह आवश्यक समझा गया कि औद्योगिक नीति के फ्रेम वर्क में थोड़े–बहुत परिवर्तन करके निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसके लिए यह आवश्यक समझा गया कि हमारी आर्थिक नीतियों और औद्योगिक नीतियों में मूलभूत परिवर्तन किये जायें। इसी पृष्ठभूमि में जुलाई 1991 में नई आर्थिक नीति का शुभारम्भ किया गया।

5-1-3-2 xgu mnkjhdj.k uhfr ¼1991 dk ckn dh vof/k½

1991 के दशक के प्रारंभ में नरसिंह राव सरकार के आगमन के साथ ही नई औद्योगिक, व्यापारिक, वित्तीय, मौद्रिक इत्यादि क्षेत्रों में उदारीकरण का प्रसार किया गया। अंतर्राष्ट्रीय बाजारों में प्रतिस्पर्धा बढ़ाने, भारतीय अर्थव्यवस्था को विश्व अर्थव्यवस्था से जोड़ने और देश की अर्थव्यवस्था को निजीकरण की ओर मोड़ने की दिशा में अनेक कदम उठाये गये जिनका अध्ययन निम्न शीर्षकों के अंतर्गत कर सकते हैं–

- नई औद्योगिक नीति
- नई व्यापार नीति
- नई राजकोषीय नीति
- नई मौद्रिक नीति

भारत सरकार द्वारा आर्थिक सुधारों के अंतर्गत औद्योगिक क्षेत्र में अपनायी गयी उदारीकरण की नीतियों के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों में इसके सकारात्मक परिणाम उभरने लगे हैं।

5-2 futhdj.k

वर्तमान समय में लोक क्षेत्र का निजीकरण अत्यन्त बहुचर्चित विषय है। निजीकरण का अर्थ अनेक प्रकार से व्यक्त किया जाता है। संकुचित दृष्टि से निजीकरण का अभिप्राय सार्वजनिक स्वामित्व के अंतर्गत कार्यरत उद्योगों में निजी स्वामित्व के प्रवेश से लगाया जाता है। विस्तृत दृष्टि से निजी स्वामित्व के अतिरिक्त सार्वजनिक उद्योगों में निजी प्रबंध एवं नियंत्रण के प्रवेश से लगाया जाता है, निजीकरण की उपर्युक्त दोनों विचारधाराओं का अध्ययन करने के पश्चात् यही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है कि निजीकरण को विस्तृत रूप में ही देखा जाना चाहिये। यह भी संभव है कि सार्वजनिक क्षेत्र से निजीक्षेत्र को सम्पत्ति के अधिकारों का हस्तान्तरण बिना विक्रय के ही हो जाये। तकनीकी दृष्टि से इसे अविनियम कहा जा सकता है जिसका आशय यह है कि जो क्षेत्र अब तक सार्वजनिक क्षेत्र के लिए आरक्षित थे उनमें अब निजी क्षेत्र के प्रवेश की अनुमति दे दी जायेगी। अन्य स्पष्ट शब्दों में निजीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अंतर्गत एक नवीन औद्योगिक संस्कृति का विकास होता है– सार्वजनिक क्षेत्र से निजी क्षेत्र की तरफ कदम बढ़ाया जाना। आर्थिक सुधारों के संदर्भ में निजीकरण का अर्थ है सार्वजनिक क्षेत्र के लिए सुरक्षित उद्योगों में से अधिक उद्योगों को निजी क्षेत्र के लिए खोलना। इसके अंतर्गत वर्तमान सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों को पूरी तरह या उसके एक हिस्से को निजी क्षेत्र को बेच दिया जाता है।''निजीकरण वह सामान्य प्रक्रिया है जिसके द्वारा निजी क्षेत्र किसी सरकारी उद्यम का स्वामी बन जाता है अथवा उसका प्रबंध करता है।''

निजीकरण की आवश्यकता मुख्य रूप से सार्वजनिक क्षेत्र के अकुशल होने के कारण अनुभव की गई। भारत के सार्वजनिक क्षेत्र के अधिकतर उद्यम हानिवहन उठा रहे थे। इसका मुख्य कारण यह था कि सार्वजनिक क्षेत्र के प्रबंधकों को निर्णय लेने की स्वतंत्रता बहुत कम होती है। इस क्षेत्र के उद्यमों से सम्बन्धित अधिकतर निर्णय मंत्रियों द्वारा लिये जाते हैं जो निर्णय लेते समय अपने राजनीतिक हितों का अधिक ध्यान रखते हैं। इसके फलस्वरूप निर्णय लेने में अनावश्यक विलम्ब होता है, उत्पादन क्षमता का पूरा प्रयोग संभव नहीं होता है। प्रबंधक पूरी जिम्मेदारी से कार्य नहीं करते इसलिए उत्पादकता कम हो जाती है। ये तत्त्व सार्वजनिक क्षेत्र को अकुशल बना रहे थे। निजीकरण के फलस्वरूप अर्थव्यवस्था की कुशलता में वृद्धि होगी, प्रतियोगिता बढ़ेगी उत्पादन की गुणवत्ता तथा विविधता में वृद्धि होगी। इसका उपभोक्ताओं को विशेश रूप से लाभ होगा।

5-2-1 futhdj.k dh rdZ

भारत में स्वतंत्रता के शीघ्र पश्चात् तथा आर्थिक नियोजन के प्रारंभिक चरण में भारी उद्योगों के लिए काफी बड़ी मात्रा में निवेश की आवश्यकता अनुभव की गयी। अतः आधारभूत तथा भारी उद्योगों स्थापना सार्वजनिक क्षेत्र में की गई। समाजवादी समाज की स्थापना के सर्वथा अनुकूल था। निजी क्षेत्र के पास भारी तथा आधारभूत उद्योगों के विकास हेतु विशेशज्ञता का भी नितान्त अभाव था। इसके अतिरिक्त तत्कालीन परिस्थितियों में निजी उद्यमों के पास विशाल वित्तीय साधन तथा धैर्य का भी नितान्त अभाव था। अर्थशास्त्रियों तथा राजनीतिज्ञों द्वारा सार्वजनिक क्षेत्र के विस्तार तथा विकास के सम्बन्ध में एक स्वर में यह आवाज बुलन्द थी कि केवल सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार ही राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था का ऊंचाइयों तक ले जाने में सक्षम है। तब से अब तक भारत में निजी क्षेत्र ने एक लंबी यात्रा पूर्ण कर ली है और अब वह राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में काफी बड़ी भूमिका निभाने में सक्षम हैं। किन्तु विगत कुछ वर्षों में गिरती हुयी लाभदायकता, गुणवत्ता में गिरावट, रूग्णता की प्रवृत्ति के कारण सार्वजनिक उपक्रमों का जो नवीन स्वरूप उभर कर सामने आया है उससे इन उद्योगों के भविष्य के सम्बन्ध में संदेह व्यक्त करता है।

जो लोग निजीकरण के पक्ष में तर्क देते हैं, उनका कहना है कि भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के ज्यादातर उद्यम घाटे में है, अकार्यकुशलता, जवाबदेही और स्वायत्तता की कमी से ग्रस्त हैं और वे काफी लम्बे समय से बीमार है। सार्वजनिक उद्यम, उनसे जो आशा की गई थी उन समस्याओं का समाधान प्रस्तुत नहीं कर सके हैं। इसकी बजाय, वे स्वयं ही समस्या बन गए हैं। इन सबके परिणामस्वरूप ही निजीकरण की

मांग उठी है, यह मांग इस विश्वास पर आधारित है कि शायद सार्वजनिक क्षेत्र को उसकी सब समस्याओं से छुटकारा दिला सकेगा।

5-2-2 futhdj.k dh mik;

विश्व के विभिन्न राष्ट्रों द्वारा अपनी राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था अथवा राष्ट्रीय परिस्थितियों के अनुकूल निजीकरण के विभिन्न उपाय अपनाये जाते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र के निजीकरण हेतु प्रमुखतः तीन उपाय अपनाये जाते हैं इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है–

5-2-2-1- LokfeRo lEcU/kh mik;

स्वामित्व सम्बन्धी उपायों के अंतर्गत सार्वजनिक उपक्रमों के स्वामित्व का हस्तान्तरण, पूर्णतया या आंशिक रूप में किया जाकर निजीकरण की प्रक्रिया पूरी की जाती है। जितने अधिक सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का स्वामित्व हस्तान्तरण किसी व्यक्ति, उद्यम या निगम क्षेत्र को किया जाता है उतनी ही अधिक मात्रा में निजीकरण होगा। स्वामित्व हस्तान्तरण सम्बन्धी उपाय के निम्नलिखित रूप हो सकते हैं–

- पूर्ण अंतर्राष्ट्रीयकरण के अंतर्गत किसी सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम का स्वामित्व निजी क्षेत्र को शत प्रतिशत हस्तान्तरण हो जाता है।
- साझा उपक्रम का आशय सार्वजनिक उपक्रम के स्वामित्व का निजी क्षेत्र को आंशिक रूप से हस्तान्तरण है। यह आंशिक हस्तान्तरण अभिसीमा 25 से 50 प्रतिशत या इससे भी अधिक हो सकती है। वस्तुतः इस सीमा का निर्धारण उद्यम के स्वरूप तथा राजकीय नीति पर निर्भर करता है।
- परिसमापन सार्वजनिक उपक्रमों की परिसम्पत्तियों का किसी अन्य को विक्रय करने से है। सम्पत्ति प्राप्त करने वाला जो इन सम्पत्तियों को उसी उद्देश्य के लिए या अन्य किसी उद्देश्य के लिए प्रयोग करने हेतु स्वतंत्र होता है। सामान्यतः सम्पत्तियों के प्रयोग का निर्णय क्रेता की प्राथमिकता पर निर्भर करता है।
- प्रबन्ध क्रय सार्वजनिक उपक्रमों के निजीकरण का एक विशेश रूप है। इसके अंतर्गत कर्मचारियों को सम्पत्तियों का विक्रय प्रदान कर दिया जाता है। सम्पत्तियों को क्रय करने के लिए बैंकों इत्यादि से उचित ऋण प्रदान किये जाने की व्यवस्था रहती है। कर्मचारी उपक्रम की सम्पत्तियों का क्रय करके उपक्रम का संचालन करते हैं। उपक्रम को चलाने के लिए कर्मचारी सहकारी समिति भी स्थापित कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में कर्मचारी अपनी मजदूरी के अतिरिक्त स्वामित्व में हिस्सेदारी के हकदार बन जाते हैं।

5-2-2-2- lxBukRed mik;

संगठनात्मक उपायों के अंतर्गत सार्वजनिक उपक्रमों के निजीकरण को प्रोत्साहित करने की दृष्टि से उन पर स्थापित राजकीय नियंत्रण को शिथिल अथवा सीमित करने के लिए प्रयास किये जाते हैं। इन प्रयासों की क्रियान्विति निम्न रूपों में संभव है–

- नियंत्रक कम्पनी के अंतर्गत एक ऐसे प्रबंधकीय ढांचे का विकास किया जाता है जिसके अंतर्गत सरकार सार्वजनिक उपक्रमों के प्रबंध में अपना नियंत्रण हस्तक्षेप उच्च स्तर के निर्णयों तक सीमित कर देती है। इसके अतिरिक्त नियंत्रण कम्पनी ढांचे में कार्य कर रही कम्पनियों को बाजार शक्तियों की परिसीमा में निर्णय करने में पर्याप्त स्वायत्ता रहती है।
- पट्टे पर देना के अंतर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रम द्वारा उपक्रम का प्रबंध स्वयं के हाथों में ही सुरक्षित रखते हुए उसका कार्य संचालन किसी निजी बोली लगाने वाले को निश्चित समय के लिए हस्तान्तरित कर दिया जाता है। इसके अंतर्गत कोई बोली लगाने वाला एक निश्चित अवधि के लिए उपक्रम का कार्य संचालक बन जाता है। परन्तु उसे समझौते को अंतिम रूप देने से पूर्व राज्य

सरकार को एक हलफनामा देना पड़ता है कि वह उपक्रम द्वारा जनित लाभ कि कितनी मात्रा को राज्य को हस्तान्तरित करेंगे। इसके अतिरिक्त बोलीकर्ता को उन उपायों के सम्बन्ध में भी राज्य को आश्वस्त करना होगा जिन्हें वे उपक्रम के कार्य संचालन हेतु अपनायेंगे। सरकार बोली लगाने वाले द्वारा यदि सरकारी प्रत्याक्षा को पूरा नहीं किया जाता अथवा समझौते का उल्लंघन किया जाता है तो बोली को समाप्त कर उसे किसी दूसरे बोलीकर्ता को देने का अधिकार होगा।

- सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों को बाजार अनुशासन के अंतर्गत लाने के लिये यह आवश्यक है कि इन उपक्रमों का पुनर्गठन किया जाये। सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों का पुनर्गठन दो प्रकार से किया जा सकता है–
  - वित्तीय पुनर्गठन के अंतर्गत उपक्रम की संग्रहित हानि को समाप्त कर दिया जाता है और पूंजी संरचना को ऋण ईक्विटी अनुपात के साथ युक्ति संगत बना दिया जाता है।
  - सार्वजनिक उपक्रमों के बुनियादी पुनर्गठन हेतु उनकी वाणिज्यिक क्रियाओं को पुनः परिभाषित किया जाता है जो भविष्य में इस उद्यम द्वारा सम्पादित कि जायेगी। इसके अन्तर्गत कुछ इकाइयों का पुनर्गठन किया जाने से छोड़ा भी जा सकता है।

5-2-2-3- dk;Z lapkyu lEcU/kh mik;

कार्य संचालन सम्बन्धी उपायों की क्रियान्विति का उद्देश्य सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों की कुशलता में वृद्धि करना है। यह उसी स्थिति में किया जाना संभव होता है जब सार्वजनिक उपक्रम का पूर्व में अंतर्राष्ट्रीयकरण न कर दिया गया हो। इसके अंतर्गत निर्णय सम्बन्धी स्वायत्ता, कर्मचारियों के लिए प्रोत्साहन–जिसके अंतर्गत उपक्रम की कुशलता और उत्पादकता में वृद्धि हो, कुछ इनपुट का उपक्रम में निर्माण करने की बजाय उन्हें बाजार से क्रम करना या उन्हें ठेका प्रणाली द्वारा प्राप्त करना लाभ कर हो, उचित निवेश कसौटियों को विकसित करना, सार्वजनिक उपक्रमों की पूंजी बाजार से राशि गतिमान करने की स्वीकृति देना आदि सम्मिलित होते हैं। ये सभी उपाय सार्वजनिक उपक्रम पर सरकारी नियंत्रण कम करने के उद्देश्य से अपनाये जाते हैं।

निजीकरण के उपर्युक्त वर्णित उपाय का प्रमुख उद्देश्य यह है कि यदि निजीकरण का अर्थ केवल मात्र स्वामित्व हस्तान्तरण से है तो इस बात पर बल देना आवश्यकहै कि सार्वजनिक क्षेत्र का प्रतिबंधित नियंत्रण किसी स्वामित्व को सौंप दिया जाये चाहे ऐसा व्यक्ति के रूप में हो अथवा सहकारी समिति के रूप में। निजीकरण सांकतिक रूप में भी हो सकता है जिसके अंतर्गत विनिवेश की प्रक्रिया को अपनाया जाता है।

5-2-3 futhdj.k dh vko';drk

निजीकरण वर्तमान में विश्व आर्थिक परिदृश्य पर एक महत्त्वपूर्ण घटना है। विश्व के लगभग समस्त राष्ट्रों–विकसित तथा विकासशील द्वारा विनिवेश/निजीकरण की नीति को सहर्ष अपनाने में अपनी आस्था व्यक्त की गयी है। निजीकरण की आवश्यकता के पक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये जाते हैं–

- निजीकरण के औचित्य के पक्ष में अत्यन्त बुनियादी तर्क यह प्रस्तुत किया जाता है कि निजी स्वामित्व संसाधनों के बेहतर उपयोग तथा उनके और अधिक दक्ष आबंटन की दिशा में सदैव अग्रणी रहा है। जब यह विस्तृत रूप से अनुभव किया जाने लगा कि राज्य आर्थिक व्यवस्था की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने में अब सक्षम नहीं है तथा राज्य की अंशभागिता कम होनी अवश्यंभावी थी जब विश्व भर में बाजार अर्थव्यवस्था अधिक मजबूत हुई है। अतः यह अवधारणा की राज्य स्वयं व्यापार करेगा तथा राज्य सरकार द्वारा नागरिकों के आर्थिक जीवन पर सीधा व पूर्ण नियंत्रण बाजार व्यवस्था की तुलना में बेहतर होगा, धीरे–धीरे प्रायः लुप्त हो गयी।

- सार्वभौमिक स्तर पर निजीकरण की नीतियों को अपनाने का दूसरा महत्त्वपूर्ण कारण उच्च करों का बोझ उठाने, घाटे/मुद्रास्फीति के वित्त पोषण की अनुपालना करने और मुद्रा बाजार तथा निजी उद्यमशीलता के विकास में विश्व के अनेक राष्ट्रों की सरकारों की असमर्थता रही है।
- प्रौद्योगिकी तथा विश्व व्यापार संगठन की प्रतिबद्धताओं ने विश्व को एक सार्वभौमिक ग्राम में परिवर्तित कर दिया है। इस परिस्थिति में जब तक सार्वजनिक उद्योगों की तीव्र गति से पुनर्संरचना नहीं कर दी जाती तो उनका जीवित रहना संदिग्ध है। इन उपकरणों के स्वामित्व की प्रकृति के कारण सार्वजनिक उद्यमों की पुनर्संरचना तेज गति से नहीं की जा सकती। इस कारण भी निजीकरण के तर्क को बल मिला है। इसके अतिरिक्त विद्युत तथा दूरसंचार जैसे सार्वजनिक एकाधिकार पर नियंत्रण रखने के लिए अब ऐसी प्रौद्योगिकियां उपलब्ध हैं जहां उपभोक्ताओं के हित विनिमयन/प्रतिस्पर्धा द्वारा ही बेहतर संरक्षित हो सकते हैं। अतः यह तर्क अब अधिक युक्तिसंगत नहीं रह गया है कि उपभोक्ता के हितों का संरक्षण सुनिश्चित करने के लिए सार्वजनिक धन का निवेश आवश्यकहै।
- विनिवेश कार्यक्रम का उद्देश्य सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों की दक्षता में सुधार लाने से लेकर सार्वभौमिक क्षेत्र में प्रतिस्पर्धा हेतु भारतीय अर्थव्यवस्था को और अधिक गंजायमान स्वस्थ तथा पर्याप्त रूप से सुसज्जित करने के लिए समाज में आमूलचुल परिवर्तन लाना आवश्यकहै।

5-2-4 futhdj.k dk mís';

भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के निजीकरण के प्राथमिक उद्देश्य इस प्रकार हैं–

- सरकार के लिए अब यह आवश्यक हो गया है कि वह ''गैर सामरिक उद्यमों'' के नियंत्रण, प्रबंधन और उनके संचालन से स्वयं को हटा ले।
- गैर महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों लगी सार्वजनिक संसाधनों की बड़ी धनराशि को उन क्षेत्रों में लगाने के लिये अवमुक्त करना जो समाज की प्राथमिकता में सर्वोपरि है। जैसे सार्वजनिक स्वास्थ्य, परिवार कल्याण, प्राथमिक शिक्षा तथा सामाजिक और आवश्यक आधारभूत संरचना।
- अव्यवहार्य और गैर महत्त्वपूर्ण सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों को मात्र बनाये रखने हेतु दुर्लभ सार्वजनिक संसाधनों के उत्तरोत्तर बाह्य प्रवाह को रोकना सार्वजनिक ऋण के बोझ को कम करना जिसके एक बड़े भाग का प्रबंध सरकार द्वारा अब नहीं हो पा रहा है।
- वाणिज्यिक जोखिम जिस सार्वजनिक क्षेत्र में कर दाताओं का धन लगा हुआ है, को ऐसे निजी क्षेत्र में हस्तान्तरित करना जिसके सम्बन्ध में निजी क्षेत्र आगे आने के लिए उत्सुक और उसके योग्य है। वस्तुतः सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों में लगा धन जनसाधारण का पैसा है और सम्पूर्ण रूप से परिहार्य तथा अनावश्यक जोखिम में लगा हुआ है।

5-2-5 futhdj.k dk ykHk

निजीकरण से प्राप्त होने वाले संभावित लाभों का संक्षिप्त विवेचन निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है–

- विनिवेश, निजीकृत कम्पनियों को बाजार अनुशासन से अवगत कराएगा, जिसके परिणामस्वरूप वे और अधिक दक्ष बनने के लिए बाध्य होंगे, और वे अपने ही वित्तीय और आर्थिक बल पर जी सकेंगे। वे बाजार ताकतों का और तेजी से मुकाबला कर सकेंगे और अपनी वाणिज्यिक आवश्यकताओं की पूर्ति और अधिक व्यावसायिक तरीके से कर सकेंगे। विनिवेश से सरकारी क्षेत्र

के उद्यमों को सरकारी नियंत्रण से भी छुटकारा मिलेगा और इससे निजीकृत कंपनियों के निगमित शासन की शुरूआत होगी।

- विनिवेश के परिणामस्वरूप, निजीकृत कंपनियों के शेयरों की पेशकश छोटे निवेशकों और कर्मचारियों को करने के माध्यम से सम्पत्ति का व्यापक संभव हो पाएगा।
- विनिवेश का पूंजी बाजार पर लाभकारी प्रभाव होगा, चलायमान स्टाक में वृद्धि से बाजार में और पकड़ अधिक और मजबूत होगी निवेशकों को बाहर निकलने के सरल विकल्प मिलेंगे, मूल्यांकन और कीमत निर्धारण के लिए अधिक विशुद्ध नियम स्थापित करने में सहायता मिलेगी और निजीकृत कंपनियों द्वारा अपनी परियोजनाओं अथवा उनके भावी विस्तार के लिए निधियां जुटाने में सहायता मिलेगी।
- पूर्व के सार्वजनिक क्षेत्रों को उपयुक्त निजी निवेशकों के लिए खोल देने से आर्थिक गतिविधि में वृद्धि होगी और मध्यम से दीर्घवधि तक अर्थव्यवस्था, रोजगार और कर–राजस्व पर कुल मिलाकर लाभकारी प्रभाव पड़ेगा।
- दूर–संचार और पेट्रोलियम जैसे अनेक क्षेत्रों में, सार्वजनिक क्षेत्र का एकाधिकार समाप्त हो जाने से, अधिक विकल्पों और सस्ते और बेहतर गुणवत्ता वाले उत्पादों और सेवाओं द्वारा उपभोक्ताओं को राहत मिलेगी जैसा कि पहले से ही होना आरंभ हो गया है।

5-2-6 Hkkjrh; vFkZ;oLFkk esa futhdj.k dk iz;kl

भारत में अब इस विषय पर आम राय बनती जा रही है कि सरकार द्वारा वाणिज्यिक उपकरणों का संचालन किया जाना किसी भी दृष्टि से न्यायसंगत नहीं है। दुर्लभ वित्तीय कोषों का अभाव, अकुशल तथा हानि वहन करने वाले लोक उद्योगों का संचालन, लोक उद्योगों के कर्मचारियों में उत्तरदायित्व तथा जवाबदेयता के सम्बन्ध में शिथिल प्रवृत्ति आदि कुछ महत्त्वपूर्ण कारण है जो भारतीय अर्थव्यवस्था में निजीकरण के पक्षधर हैं। विगत वर्षों में भारत सरकार द्वारा मिश्रित अर्थव्यवस्था से निजी अर्थव्यवस्था की तरफ बढ़ने हेतु अनेक महत्त्वपूर्ण प्रयास किये गये हैं। इस दिशा में किये गये महत्त्वपूर्ण प्रयास निम्न हैं–

- औद्योगिक नीति प्रस्ताव 1956 में सम्पूर्ण औद्योगिक इकाईयों को तीन प्रमुख भागों में बांटा गया तथा 17 उद्योगों को लोक क्षेत्र में विकसित किये जाने हेतु निर्णय किया गया। अब इस संख्या में कटौती करके केवल चार उद्योगों को सार्वजनिक क्षेत्र के सुरक्षित रखा गया है। अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में विनियोग करने के लिए निजी पूंजी को निमंत्रित तथा आकर्षित किया गया है।
- निजीकरण की नीति के अंतर्गत यह व्यवस्था की गयी है कि सार्वजनिक क्षेत्र का महत्त्व केवल सुरक्षा तथा सामरिक महत्त्व के उद्योगों जैसे
  - आधारभूत वस्तुओं तथा सेवाएं प्रदान करने वाले उद्योग
  - खनन संसाधनों के विदोहन के सार्थक प्रयास
  - तकनीकी विकास
  - निजी क्षेत्र द्वारा उपेक्षित क्षेत्रों तथा सुरक्षा एवं युद्ध नीतिक उद्योगों के संचालन तक सीमित रखा जायेगा।
- लोक क्षेत्र के स्वामित्व पूंजी का विनिवेश– यह निर्णय किया गया है कि लोक उपक्रमों में सार्वजनिक स्वामित्व पूंजी की मात्रा को घटाकर 26 प्रतिशत कर दिया जायेगा। विनिवेश संभवतः भारत तथा विश्व के अन्य राष्ट्रों द्वारा अपनाया गया विनिवेश का सर्वथा प्रचलित स्वरूप है। किन्तु भारत में विगत 10 वर्षों में विनिवेश का जो प्रति वर्ष लक्ष्य निर्धारित किया गया है, उसमें सफलता प्राप्त नहीं हुई है।

- जिन लोक उद्योगों में सुधार के सभी प्रयास असफल हो गये हो तथा जिनके पुनर्जीवित होने की कोई संभावना नहीं है उन्हें बंद कर दिया जायेगा। अभी हाल ही में मारूति उद्योग लिमिटेड, आई.पी.सी.एल., आई.टी.डी.सी., बी.एस.एन.एल. आदि लोक उपक्रमों निजीकरण की प्रक्रिया के अंतर्गत लाया गया है। अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण तथा बड़े आकार के लोक उपक्रमों, जैसे एयर इंडिया, इण्डियन एयरलाईन्स, एस.सी.आई., एच.सी.एल. आदि में विनिवेश की योजनाओं को क्रियान्वित करना शेष है।
- भारतीय अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में निजी क्षेत्र को आमंत्रित किया गया है। विद्युत तथा ईंधन, परिवहन, संचार तथा सुरक्षा आदि कतिपय महत्त्वपूर्ण क्षेत्र हैं जिनमें निजी क्षेत्र को महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने हेतु आमंत्रित किया गया है।
- नवीन नीति इस बात की पक्षधर है कि विभिन्न प्रकार के नियंत्रण जैसे औद्योगिक लाइसेंसिंग, कदम–कदम पर सरकार से अनुमति प्राप्त करने का बन्धन तथा इंस्पेक्टर राज की समाप्ति की जानी चाहिए। इस तथ्य को महत्त्व प्रदान कर, केवल कुछ अपवादों को छोड़कर, अनिवार्य औद्योगिक लाईसेंसिंग को लगभग समाप्त कर दिया गया है। औद्यागिक प्रतिष्ठानों को अपने उत्पादन क्षमता के विस्तार तथा मांग अनुसूची के अनुसार समायोजित करने की सुविधा प्रदान की गयी है।
- एकाधिकार व्यवहार तथा प्रतिबंधात्मक गतिविधि अधिनियम में उल्लेखित तथा अनेक बड़े औद्योगिक प्रतिष्ठानों पर लागू लगभग सभी विनियोग नियंत्रण समाप्त कर दिये गये हैं। अब कोई भी उपक्रम तथा व्यावसायिक प्रतिष्ठान अर्थव्यवस्था के किसी भी क्षेत्र में अपनी गतिविधियां प्रारंभ करने हेतु स्वतंत्र है।
- यह निर्णय किया गया है कि बीमार औद्योगिक इकाइयों को आवश्यक कार्यवाही हेतु औद्योगिक तथा वित्तीय पुनःउद्धार बोर्ड के सुपुर्द किया जायेगा। ऐसी इकाईयां जिनके सुधार की संभावना समाप्त हो चुकी है उन्हें बंद कर दिया जायेगा।
- लोक उपक्रमों को व्यवसायिक आधार पर संचालित कर उनके कार्यकुशलता तथा उत्पादकता में वृद्धि की जायेगी। इन उपक्रमों के कर्मचारियों को श्रेष्ठ परिणामों की उपलब्धि हेतु प्रोत्साहित किया जायेगा तथा कार्य संचालन में स्वायत्ता प्रदान की जायेगी।

5-2-7 futhdj.k dh dfBukb;k

सार्वजनिक उपक्रमों के अनेक लाभ हैं। इस तथ्य से आज भी इंकार नहीं किया जा सकता कि सार्वजनिक क्षेत्र के निजी क्षेत्र की अपेक्षा अधिक आर्थिक सामाजिक लाभ है। भारत जैसे प्रजातांत्रिक समाज में निजीकरण के कई खतरे अथवा कठिनाइयां हैं। इनमें से कुछ प्रमुख इस प्रकार हैं–

- निजीकरण की प्रक्रिया की सबसे बड़ी कठिनाई यूनियन के माध्यम से श्रमिकों की ओर से होने वाले विरोध है। वे बड़े पैमाने पर छंटनी, अपनी पोजीशन खो जाना और काम के वातावरण में परिवर्तन जैसे बातों से आतंकित है।
- सरकार द्वारा विशुद्ध परिसंपत्तियों के किताबी मूल्य के आधार पर निर्णय लेकर कपटपूर्ण व्यवहार करने का भी खतरा है।
- यह संभव है कि निजीकरण द्वारा बड़े उद्योगों को लाभ पहुंचाने के लिए निगमीकरण को प्रोत्साहित किया जाए।
- निजीकरण प्रतियोगिता के बिना सार्वजनिक क्षेत्र के स्थान पर निजी क्षेत्र में अकार्यकुशल एकाधिकारी कंपनियों के रूप में ही परिवर्तित होकर रह जाएगा।

निजीकरण कार्यकुशलता औद्योगिक क्षेत्र की समस्याओं का एक मात्र उपाय नहीं है। उसके लिए तो समुचित आर्थिक वातावरण और कार्य–संस्कृति में आमूल चूल परिवर्तन होना भी आवश्यकहै। भारत में, निजीकरण को अर्थव्यवस्था की आज की समस्त समस्याओं की रामबाण औषधि नहीं माना जा सकता। इसे तो पूर्व निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने के एक सर्वोत्तम संभव माध्यम के रूप में ही देखना होगा।

5-3 o'oh dj.k

नई आर्थिक नीति में अपनाये हुए सुधारवादी उपायों की परिणति आज उदारीकरण एवं निजीकरण की सीमा से निकलकर अर्थव्यवस्था के वैश्वीकरण के रूप में परिलक्षित हो रही है। अर्थशास्त्रियों के अनुसार विश्व व्यापीकरण के चार अंग हैं–

- व्यापार–अवरोधकों को कम करना, ताकि वस्तुओं का विभिन्न देशों में बेरोकटोक आदान–प्रदान हो सके।
- ऐसी परिस्थिति कायम करना जिसमें विभिन्न राज्यों में पूंजी का स्वतंत्र रूप से प्रवाह हो सके।
- ऐसा वातावरण कायम करना कि टेक्नालॉजी का निर्बाध प्रवाह हो सके और
- अंतिम, परंतु विकासशील देशों की दृष्टि से कम महत्त्वपूर्ण नहीं, ऐसा वातावरण कायम करना जिसमें विश्व के विभिन्न देशों में श्रम का निर्बाध प्रवाह हो सके।

अतः ''वैश्वीकरण वह प्रक्रिया है जिसमें विश्व बाजारों के मध्य पारस्परिक निर्भरता उत्पन्न होती है और व्यापार देश की सीमाओं में प्रतिबंधित न रहकर विश्व व्यापार में निहित तुलनात्मक लागत लाभ दशाओं का विदोहन करने की दिशा में अग्रसर होता है।''

5-3-1 o'oh dj.k dh fo'ks'krk,a

- देश की अर्थव्यवस्था को विश्व की अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत किया जाता है अर्थात् आर्थिक क्रियाओं का राष्ट्रीय सीमा से आगे विस्तार किया जाता है।
- वस्तुओं, सेवाओं, पूंजी, तकनीकी तथा श्रम सम्बन्धी अंतर्राष्ट्रीय बाजारों का एकीकरण हो जाता है अर्थात् इनके आवागमन पर सभी प्रकार की रुकावट हटा ली जाती है।
- बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का विस्तार होता है।
- सरकार की राष्ट्रीय मैक्रो आर्थिक नीतियों का क्षेत्र कम हो जाता है।
- संक्षेप में, वैश्वीकरण राष्ट्रों की राजनीतिक सीमाओं के आर–पार आर्थिक लेन–देन की प्रक्रियाओं और उनके प्रबन्धन का प्रवाह है।

5-3-2 fo'o 0;kih dj.k dk ifjr dju oky ?kVd

5-3-2-1 rduhdh ifjorZu

विश्व व्यापीकरण को प्रोत्साहित करने में तकनीकी परिवर्तन की प्रमुख भूमिका रही है। वस्तुओं का कम लागत पर बनना तथा उन्नत किस्म का उत्पादन तकनीकी परिवर्तन से ही संभव हो सका है।

5-3-2-2 ifrLi/kkZ

पूंजीवादी अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख अंग प्रतिस्पर्धा है। प्रतिस्पर्धा के कारण ही कम्पनियों को विदेशों में नये बाजार ढूंढने की आवश्यकता हुई तथा इसी के फलस्वरूप ही उत्पादन तथा विक्रय की नयी विधियों का विकास हुआ है। विदेशी कम्पनी की प्रतिस्पर्धा के डर से ही घरेलू कम्पनियां भी विश्व परिप्रेक्ष्य में अपने को स्थापित करने लगी हैं।

5-3-2-3 mnkjoknh uhfr;k

विश्व व्यापीकरण के विकास का मुख्य कारण विभिन्न देशों द्वारा अपनायी गयी उदारवादी नीतियां हैं। इनके फलस्वरूप अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक लेन–देन पर लगी रोकों को हटा दिया गया है। विश्व अर्थव्यवस्था में कई तरह की रुकावटें दूर होने से वैश्वीकरण की प्रक्रिया के लिए रास्ता साफ हो गया। सबसे पहले व्यापार के क्षेत्र में खुलापन आया। इसके बाद विदेशी निवेश के प्रति उदारता बढ़ी। अंत में वित्तीय क्षेत्र में भी उदार नीतियां अपनायी जाने लगीं।

5-3-2-4 vesfjdk dk egk'kfDr dk :i esa mn;

विश्व व्यापीकरण की प्रक्रिया के लिए एक महाशक्ति का होना आवश्यक है जिसकी करेन्सी से अंतर्राष्ट्रीय बाजार का संचालन होता है। रूस के विघटन तथा पूंजीवाद की जीत ने अमेरिका को विश्व की महाशक्ति बना दिया है जिससे भी विश्व व्यापीकरण को प्रोत्साहन मिला है।

5-3-2-5 fodkl'khy vFkZ;oLFkkvksa dk vuqHko

विश्व व्यापीकरण की प्रक्रिया को अपनाने वाली विकासशील अर्थव्यवस्थाएं–जैसे– कोरिया, थाईलैण्ड, ताईवान, हाँगकाँग, सिंगापुर आदि आर्थिक दृष्टि से बहुत अधिक सफल रहीं। चीन भी वैश्वीकरण की प्रक्रिया को अपनाकर आर्थिक विकास की ऊँची दर प्राप्त करने में सफल रहा। वैश्वीकरण के इस सफल अनुभव ने भी भारत जैसे अन्य देशों को अपनी अर्थव्यवस्थाओं का वैश्वीकरण करने के लिए प्रोत्साहित किया है।

5-3-2-6 vU; dkjd

- विभिन्न देशों में उपलब्ध उपरि ढांचा, वितरण प्रणाली एवं विपणन दृष्टिकोण एक–समान रूप वाले होते जाते हैं।
- पूंजी बाजारों का सार्वभौमीकरण होता जा रहा है। प्रवाह करने वाली पूंजी की राशि में तेज गति से वृद्धि होती जा रही है जिसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय स्तर के पूंजी बाजार विश्व स्तर का स्वरूप धारण करते जा रहे हैं।
- माइक्रो इलेक्ट्रॉनिक्स अर्थात् कम्प्यूटर एवं सम्बद्ध तकनीक के विस्तार के परिणामस्वरूप सभी देशों में तकनीकी पुनर्रचना की प्रक्रिया लागू है।

5-3-3 o'ohdj.k dk iHkko

विश्व व्यापीकरण की नीति का अनुसरण करते हुए लगभग कई वर्ष हो रहे हैं। अतः अब यह उचित होगा कि इन नीतियों के अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले प्रभावों का विश्लेशण करें–

5-3-3-1- vuqdwy iHkko

- भारत का वस्तुओं एवं सेवाओं के विश्व निर्यात में भाग विश्व बैंक द्वारा उपलब्ध कराए गए आंकड़ों के अनुसार, विश्व निर्यात में भारत का भाग 1990 में 0.54 प्रतिशत था और यह बढ़कर 1999 में 0.67 प्रतिशत हो गया। परंतु जब इसकी तुलना चीन, दक्षिण कोरिया और मैक्सिको के साथ की जाती है, तो भारतीय उपलब्धि महत्त्वपूर्ण प्रतीत नहीं होती। 1990–99 के दौरान चीन का विश्व –निर्यात में भाग 1.86 प्रतिशत से बढ़कर 3.59 प्रतिशत हो गया। इसी प्रकार, दक्षिण कोरिया का भाग 1.95 से बढ़कर 2.66 प्रतिशत हो गया और मैक्सिको ने भी अपने भाग में बड़ी छलांग लगायी और यह 1.22 प्रतिशत से बढ़कर 2.51 प्रतिशत हो गया।
- बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने यथासंभव उच्च तकनीक का प्रयोग कर हमारे औद्योगिक उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि की है। आजकल ये कम्पनियां न सिर्फ उपभोक्ता वस्तु बल्कि अन्य आधारभूत परियोजनाओं में भी अपनी पूंजी लगा रही हैं। इनके आगमन से देश के औद्योगिक वातावरण में

एक स्वस्थ प्रतियोगी माहौल का निर्माण हुआ है जिससे वस्तुओं की गुणवत्ता में सुधार आया है। भारत ने अपने विकास को तीव्र गति प्रदान करने के लिए विदेशी पूंजी की जरूरत महसूस की। इस तरह जहां अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष एवं विश्व बैंक द्वारा प्रदत्त पूंजी से हमें विभिन्न विकास कार्यक्रमों को चलाने में मदद मिली है, वहीं प्रौद्योगिकीय सहयोग एवं उन्नत तकनीक ने भी हमारी अर्थव्यवस्था को काफी मदद पहुंचाई है।

- आयात उदारीकरण की प्रक्रिया के दौरान बहुत–से लोगों ने यह डर व्यक्त किया था कि इससे आयात व्यय में तेज वृद्धि होगी जिससे अर्थव्यवस्था कमजोर पड़ जायेगी परंतु उदारीकरण से वास्तव में हमारी आत्मनिर्भरता में वृद्धि हुई। जहां 1890 के दशक के उत्तरार्द्ध में निर्यात आय आयात व्यय के 60 प्रतिशत की भरपाई कर पाती थी वहां अब निर्यात आय, आयात व्यय के 90 प्रतिशत की भरपाई करती है।
- भारत में अपनाये गये उदारीकरण के दौर में विदेशी विनियोग प्रवाह में तेजी से प्रगति हुई। भारत में कुल विदेशी विनियोग प्रवाह वर्ष 1996–97 में तेजी से बढ़कर 6.00 बिलियन अमेरिकी डॉलर हो गया जो वर्ष 2002–03 में बढ़कर 4.555 बिलियन डॉलर हो गया।
- रुपये की विनिमय दर मजबूत व स्थिर बनी रही है जिसके कारण भारतीय अर्थव्यवस्था पर विदेशी निवेशकों का विश्व ास बढ़ा है। फलतः सरकारी व कानूनी माध्यमों से विदेशी विनिमय का आवागमन बढ़ा है, जबकि पहले गैर–कानून व हवाला माध्यमों से काफी लेन–देन होता था।
- विदेशी ऋण पर निर्भरता में कमी हुई है और मुद्रा स्फीति की दर भी नियंत्रित हुई है, विदेशी पूंजी निवेश बढ़ा है यद्यपि ब्राजील और चीन के मुकाबले में यह असत्य है।
- औद्योगिकी के स्तर का उन्नयन हुआ है और यह आशंका निराधार साबित हुई कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियां भारतीय अर्थव्यवस्था पर प्रभुत्व स्थापित कर लेंगी, भारतीय अर्थव्यवस्था के कुल निवेश में विदेशी पूंजी निवेश का हिस्सा मात्र 3 प्रतिशत है।
- विश्व व्यापी मंदी के बावजूद चीन को छोड़कर अन्य विकासशील देशों की तुलना में भारत में सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर अधिक है।

5-3-3-2 ifrdy iHkko

विश्वव्यापीकरण के जो अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहे हैं वे निम्न हैं–

- विश्व व्यापीकरण ने समान प्रतियोगिता को जन्म दिया है। यह प्रतियोगिता शक्तिशाली बहुराष्ट्रीय निगमों और कमजोर भारतीय उद्यमों के बीच होने के कारण भारतीय उद्यम समाप्त होते जा रहे हैं। पश्चिम बंगाल के एक संसद सदस्य ने कहा है, भारत के विश्व व्यापीकरण का अर्थ है– ''हाथियों के झुण्ड में एक चूहे का घुसना''। भारतीय उद्योग बहुराष्ट्रीय कम्पनियों से मुकाबला करने के स्थान पर उनके सामने हथियार उाल रहे हैं और अपने उद्योगों को उन्हें बेच रहे हैं। जैसे हल्के पेय थम्स अप, माजा, गोल्ड स्पॉट, लिम्का भारतीय उद्योगपतियों ने 120 करोड़ रुपए में कोका कोला को बेच दिया है। यह प्रक्रिया देश के लिए हानिकारक है। ऐसा अनुमान है कि अब तक लगभग पांच लाख लघु इकाइयां बंद हो चुकी हैं जिससे 25 लाख व्यक्ति बेरोजगार हो गये हैं।भारत में 20 हजार करोड़ रुपए की टिकाऊ वस्तुओं के उपभोक्ता बाजार में भी अशुभ संकेत मिलना प्रारंभ हो चुका है। ऐसा कहा जाता है इस क्षेत्र की भारतीय कम्पनियों का हिस्सा घटकर 35 प्रतिशत रह गया है। विदेशी कम्पनियों ने रंगीन टेलीविजन, फ्रिज, वाशिंग मशीन और इसी प्रकार के अन्य उत्पादों में अपना हिस्सा 65 प्रतिशत तक बढ़ा लिया है।संक्षेप में, विदेशी कम्पनियां अपेक्षाकृत कम कीमत अदा कर भारतीय बाजार पर कब्जा जमा रही हैं। इस प्रकार उदारीकरण का मुख्य उद्देश्य पूरा नहीं हुआ है। प्रत्यक्ष विदेशी निवेश से नवीनतम

प्रौद्योगिकी, प्रबंध कौशल, निर्यात वृद्धि आदि का जो आकलन किया गया था, वे खरे नहीं उतरे हैं बल्कि इससे कई क्षेत्रों में स्वदेशी उपकरण नष्ट हो गए हैं और उच्च प्रौद्योगिकी क्षेत्रों में विदेशी कम्पनियों ने बिना ज्यादा निवेश के ही बाजार पर सम्पूर्ण कब्जा कर लिया है।यही नहीं अधिकांश नवीन स्वीकृतियां जो विदेशियों को दी गई हैं उसका 52.82 प्रतिशत निवेश महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक, तमिलनाडु व दिल्ली राज्यों में उद्योग स्थापित करने के लिए है। इससे क्षेत्रीय असंतुलन को बढ़ावा मिल रहा है जो देशहित में नहीं है।

- बहुराष्ट्रीय कम्पनियां सुपर–प्राफिट को अपने मूल देश को निर्यात करती हैं लेकिन एक बात जिसकी अक्सर अवहेलना कर दी जाती है वह यह है कि बहुराष्ट्रीय कम्पनियां अपने मूल देशों से पूंजी लाकर हमारे यहां उद्योग लगाती हैं लेकिन भारत में हम इस संदर्भ में पाते हैं कि इन कम्पनियों ने अपने मूल देश से पैसे न उगाकर यहीं बाजारों से अपने पैसे वसूल किये हैं।
- ये बहुराष्ट्रीय कम्पनियां अपने कर्मचारियों को अधिक वेतन तथा सुविधाएं देकर न केवल आर्थिक असमानता को बढ़ा रही है बल्कि कार्य संस्कृति पर भी कुठाराघात कर रही हैं।आज इन बहुतराष्ट्रीय कम्पनियों की वजह से कर्मचारियों का ऐसा वर्ग पैदा हो गया है जो बेहतर वेतन एवं सुविधाओं के मुद्दे को लेकर आये दिन हड़ताल, प्रदर्शन, काम रोको आदि में लगे रहते हैं। इससे जहां हमारे अरबों रुपये का कोई मूल्य नहीं रहता, वहीं कार्य दिवसों में हानि की वजह से औद्यागिक उत्पादन भी प्रभावित हो रहा है।
- बहुराष्ट्रीय कम्पनियां उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन में ज्यादा लगी हैं क्योंकि इनका मुख्य उद्देश्य कम से कम समय में अधिक से अधिक लाभ कमाना है।
- नई तकनीकों के बदले पुरानी तकनीकें लाकर अपने भागीदारों से अधिक रायल्टी प्राप्त करती है।
- विदेशी मुद्रा की हेरा–फेरी करती हैं।
- विश्व व्यापीकरण के कारण हमारे यहां विदेशी पूंजी निवेश सभी क्षेत्रों एवं सभी उद्योगों में न होकर कुछ चुनिन्दा उद्योगों में ही हुआ है। इससे क्षेत्रीय असंतुलन पैदा हो गया है एवं लघु तथा कुटीर उद्योगों के अस्तित्व पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं।

5-3-4 o'oh dj.k ls lEc) dfBukb;k

विश्वव्यापीकरण की राह में आने वाली कठिनाइयों में से कुछेक का हम अग्रलिखित रूप में उल्लेख कर सकते हैं–

5-3-4-1 fon'kksa esa c<+rk gqvk lajf{k.koknh

हाल ही के वर्षों में अंतर्राष्ट्रीय आर्थिक परिवेश में महत्त्वपूर्ण गुणात्मक परिवर्तन देखने को आ रहे हैं। औद्योगिक देशों में जब तेज गति से विकास हो रहा था तो ये देश मुक्त व्यापार के प्रशंसक थे किंतु विगत कुछ वर्षों में जब से यहां विकास की गति धीमी पड़ गयी है, ये देश संरक्षण की नीति की आड़ लेने गये हैं। उदाहरण के लिए, अ. जब भारतीय स्कर्ट संयुक्त राज्य अमेरिका में अत्यन्त लोकप्रिय बनने लगे तो यह मिथ्या धारणा फैला दी गयी कि ये लहंगे ज्वलनशील पदार्थ से बनाये गये हैं। ब. हाल ही में यूरोपीय संघ के देशों ने भारतीय टेक्सटाइल निर्यात पर डम्पिंग–विरोधी शुल्क लगा दिया है। विकसित देशों, जिनमें विशेशकर संयुक्त राज्य अमेरिका उल्लेखनीय हैं, ने श्रम–मानदण्डों का मुद्दा उठाया, ताकि भारत से होने वाले कालीनों के निर्यात को कम किया जा सके।

5-3-4-2 {k=h; 0;kikj xVksa dh LFkkiuk

विश्व व्यापीकरण की आधारभूत मान्यता यह है कि सभी देशों में वस्तुओं, सेवाओं और पूंजी के प्रवाह पर किसी प्रकार का प्रतिबंध नहीं होगा किंतु इसके विपरीत सभी देश अपने आपको क्षेत्रीय व्यापार गुटों में बांधते जा रहे हैं और व्यापार गुटों को निर्यात तथा अंतर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा की क्षमता बढ़ाने की कुंजी मानते हैं। इस समय 15 से अधिक व्यापारिक गुट बने हुए हैं। इन गुटों की स्थापना से स्वतंत्र प्रतियोगिता की प्रक्रिया बंद हो जाती है।

5-3-4-3 rduhdh mUufr dk c<kok nsus dh vko';drk

विश्व व्यापीकरण के लिए आवश्यक है कि विकसित देश पूर्ण संकल्प और निष्ठा के साथ विकासशील देशों में प्रयोग आने वाली उत्पादन तकनीकों में क्रांतिकारी परिवर्तन लायें, ताकि विश्व व्यापीकरण का लाभ विकासशील देशों को भी मिले तथा विश्व व्यापीकरण की नीति टिकाऊ हो सके।

5-3-4-4 lhfer foÙkh; lk/ku

अंतर्राष्ट्रीय बाजार में वस्तु प्रतियोगिता कर सके, इसके लिए वस्तु की किस्म में सुधार व उत्पादन बढ़ाने के लिए बड़ी मात्रा में पूंजी की आवश्यकता होगी परंतु विकासशील देशों में पूंजी का अभाव है, फलतः इन देशों को वित्तीय संसाधन जुटाने के लिए विश्व बैंक व मुद्रा कोष आदि अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं के पास जाना पड़ता है जो अनुचित शर्तों पर वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराते हैं।

5-3-4-5 vuSfpr {k= esa iznw"k.k

विश्व व्यापीकरण नीति के तहत बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का प्रवेश अधिकाधिक उपभोक्ता क्षेत्र और सेवा क्षेत्र में हो रहा है जो उचित नहीं है। आर्थिक संरचना के विनियोग पर 16 से 18 प्रतिशत की प्रत्याय दर गारण्टी का आश्वासन भी अनुचित है। इसी प्रकार बीमा क्षेत्र को विदेशी कम्पनियों के लिए खोलने का स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि भारतीय बचत और भी कम होगी।

5-3-4-6 vU; leL;k,a

- उपयुक्त वातावरण की आवश्यकता– देश की अर्थव्यवस्था में संरचनात्मक सुधार पूर्ण रूप से नहीं हो सके हैं क्योंकि जिन देशों ने विश्व व्यापीकरण को अपनाया है, उन्होंने अपने यहां पूर्व में ही उसके लिए वातावरण तैयार किया है, साथ ही हमारे देश की स्वतंत्र बाजार की दिशा में गति भी धीमी रही है।
- प्रतिकूल स्थिति– अमेरिका भारत पर 'स्पेशल 301' या 'बौद्धिक सम्पना' अधिकार सम्बन्धी अवधारणा को स्वीकार करने के लिए दबाव डाल रहा है। ऐसी स्थिति में यदि हम विश्व व्यापीकरण को स्वीकार करते हैं ते हमारी अर्थव्यवस्था बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथों चली जायेगी तथा यदि अस्वीकार करते हैं तो भारत को विश्व व्यापीकरण में अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ेगा।
- श्रमिकों में भय– भारतीय श्रमिकों का मानना है कि देश में आधुनिक मशीनों की स्थापना से कम श्रमिकों की आवश्यकता होगी, साथ ही कारखानों में छंटनी होगी तथा वे प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित होंगे।

6- vH;kl i'u

fucU/kkRed i'u

1. पर्यावरण प्रबन्ध की अवधारणा को समझाते हुए इसकी अध्ययन विधि एवं विभिन्न उपागमों को स्पश्ट कीजिए।

y?kqÙkjkRed i'u

1. संविकास की संकल्पना को समझाइये।
2. संसाधनों के दोहन से पर्यावरण एवं प्रकृति पर पड़ने वाले प्रभावों की विवेचना कीजिए।

vfr y?kqÙkjkRed i'u

1. स्टॉकहोम सम्मेलन कम हुआ था–
   (a) 1972 (b) 1974
   (c) 1982 (d) 1976
2. भारत में पर्यावरण प्रबन्धन हेतु किस समिति के परामर्श से पर्यावरण विभाग पृथक रूप से गठित किया गया?
   (a) तिवारी समिति (b) मेहता समिति
   (c) कोठारी समिति (d) भार्मा समिति
3. पर्यावरण एवं वन मंत्रालय के कितने क्षेत्रीय कार्यालय हैं?
   (a) 8 (b) 9
   (c) 6 (d) 5
4. औद्योगिक नीति (1991) का प्रमुख उद्देश्य था–
   (a) संरक्षणवाद की समाप्ति (b) प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण
   (c) उदारीकरण को प्रोत्साहन (d) उपरोक्त सभी।
5. निजीकरण को और किस नाम से जाना जाता है?
   (a) उदारीकरण (b) विश्वव्यापीकरण
   (c) विनिवेशीकरण (d) उपरोक्त सभी।
6. ब्रुटलेण्ड प्रतिवेदन में सर्वप्रथम किस भाब्दावली का प्रयोग किया गया था?
   (a) सतत विकास (b) संतुलित विकास
   (c) समन्वित विकास (d) स्थायी विकास।
7. पर्यावरण का ..... पर्यावरण की पहचान से आता है।
8. ..... सीमित भाक्ति संसाधन है।
9. पृथ्वी पर ..... की विविधता संरक्षित है।
10. ..... और पारिस्थितिकी में घनिष्ठ सम्बन्ध है।